आदि न्याय ग्रन्थों के कर्त्ता धारा निवासी प्रभाचन्द्र ही जान पड़ते हैं। इस प्रशस्ति से ग्रन्थ रचना का काल 10-11 ई. के लगभग सिद्ध होता है। स्व. पं. महेन्द्रकुमार ने प्रमेयकमलमार्तण्ड और न्यायकुमुदचन्द्र की अपनी प्रस्तावनाओं में कहा है कि इनका रचयिता प्रभाचन्द्र ही उक्त टीकाओं के रचयिता हैं किन्तु अनेक कारणों से इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। उनमें से एक कारण है न्याय शास्त्र के ग्रन्थों की भाषा शैली बड़ी प्रखर और प्राञ्जल होना जो इस कथा-प्रबन्ध में उपलब्ध नहीं होती। किन्तु यह नियम नहीं कि एक ही कर्त्ता दो भिन्न विषयक ग्रन्थों को एक ही भाषा में लिखे। स्व. पं. महेन्द्रकुमारजी की 'अकलङ्क ग्रन्थत्रयी' की प्रस्तावना में आचार्य अकलङ्क देव के बारे में लिखा है कि तत्त्वार्थवार्तिक ग्रन्थ में जब आचार्य देव सैद्धान्तिक विषय पर अपनी कलम चलाते हैं तो भाषा सहज और समझने योग्य होती है किन्तु जब वही आचार्य न्याय के विषय पर लिखते हैं तो वह भाषा दुरवगाह हो जाती है, इससे उस विषय के लेखक अलग-अलग हैं यह सन्देह करना समुचित नहीं है। साथ ही इस कथा प्रबन्ध के दोनों परिच्छेदों के अन्त में ग्रन्थकर्त्ता ने दोनों बार यह पद्य दिया है-

सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः।
कल्याणकालेऽथजिनेश्वराणां सुरेन्द्रदन्तीव विराजतेऽसौ॥

यह पद्य रचना कर ग्रन्थ कर्त्ता ने स्वयं यह महसूस कर लिपिबद्ध किया है कि हमने जिन पदों से इस ग्रन्थ में वाक्य रचना की है, वह सुकोमल अर्थात् सरल है और सर्वजनों को सुख से ज्ञान में आने वाली है।

इस प्रकार ग्रन्थकर्ता के सम्बन्ध में विशेष जिज्ञासु पं. जुगलकिशोर मुख्तार जी तथा अन्य विपश्चितों की प्रस्तावना का तथा इतिहास का अध्ययन कर इस विषय में निर्णय लें। इसके बाद का एक अन्य कथाकोश का संग्रह रामचन्द्र मुमुक्षु ने 'पुण्यास्रव कथाकोश' के नाम से किया। इसके बाद नेमिदत्त कृत 'आराधना कथा कोश' के नाम से किया। 6 वीं शताब्दी का है, जो प्रभाचन्द्र कृत कथाकोश का पद्य शैली में विस्तृत रूपान्तर है।

हमारे पास भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित डॉ. आ. ने. उपाध्ये के द्वारा सम्पादित एक मात्र मूल प्रति थी। जिससे इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद किया है। सम्पादक महोदय का परिश्रम स्तुत्य है, इसलिए उनके सम्पादकीय कार्य को ज्यों का त्यों इस ग्रन्थ में रखा है। यहाँ तक कि अंग्रेजी में लिखी उनकी प्रस्तावना भी इस ग्रन्थ में निबद्ध है। प्रस्तावना का हिन्दीसार, परिशिष्ट में दिये गये शब्द संग्रह, पाठान्तर आदि सभी 1974 ई0 में प्रकाशित प्रति से सुरक्षित रखे हैं ताकि किसी को भी इस ग्रन्थ को पढ़ते हुए पूर्व प्रकाशित कृति की कमी महसूस न हो। इस प्रकार मूलकृति के संरक्षण के साथ हिन्दी अनुवाद से संवर्धित यह कार्य जिनवाणी माँ को प्रसन्न करेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। पूज्य मुनि श्री अभयसागरजी की प्रेरणा एवं मुनि श्री अभिनन्दनसागरजी का सहयोग इस कार्य की पृष्ठभूमि है। परम उपकारी गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी की कृपा के बिना मैं कुछ भी नहीं कर सकता। ऐसे गुरुवर को त्रय भक्ति सहित नमोऽस्तु के साथ.....

अनुवादक

सिद्धोदय सिद्धक्षेत्र
मगसिर शुक्ला एकादशी
ई. सन् 1999

विषयक्रम

1.	सम्यक्त्व उद्योतनी कथा	2	
2.	ज्ञान उद्योतनी कथा	3	
3.	चारित्र उद्योतनी कथा	9	
4.	समन्तभद्र स्वामी की कथा	11	
5.	तप उद्योतनी कथा	15	
6.	निःशंकित अंग की कथा	21	
7.	निःकांक्षित अंग की कथा	25	
8.	निर्विचिकित्सा अंग की कथा	27	
9.	अमूढ़दृष्टि अंग की कथा	28	
10.	उपगूहन अंग की कथा	29	
11.	स्थितिकरण अंग की कथा	30	
12.	वात्सल्य अंग की कथा	32	
13.	प्रभावना अंग की कथा	35	
14.	नागदत्त मुनि की कथा	37	
15.	संगति का असर	39	
16.	दुर्जन संगति का प्रभाव	40	
17.	निर्विकार भाव	41	
18.	प्रायश्चित्त में कपट नहीं	42	
19.	तीव्र मिथ्यात्व का फल	42	
20.	दर्शन से भ्रष्ट ही भ्रष्ट है	43	
21.	श्रेणिक राजा की कथा	44	
22.	पद्मरथ राजा की कथा	46	
23.	णमोकार मंत्र महिमा	47	
24.	खण्ड श्लोक का स्वाध्याय	49	
25.	नमस्कार मंत्र महिमा	51	
26.	अहिंसाव्रत में चाण्डाल की कथा	52	
27.	झूठ बोलने में राजा वसु की कथा	53	
28.	श्रीभूति चोर की कथा	55	
29.	नीच कर्म निन्दनीय ही	56	
30.	कामासक्ति का दुष्परिणाम	57	
31.	कडारपिंग की कामान्धता	59	
32.	स्त्री की अस्थिरता	60	
33.	गोपवती की ईर्ष्या	62	
34.	वीरमती की दुष्टता	62	
35.	मुनि निन्दा का फल	63	
36.	संसार चित्रण	64	
37.	चारुदत्त की कथा	65	
38.	शकट मुनि की कथा	68	
39.	स्त्री संसर्ग का दुष्परिणाम	68	
40.	रुद्र पाराशर की कथा	69	
41.	सात्यकि और रुद्र की कथा	70	
42.	राज श्री की कथा	72	
43.	लौकिक ब्रह्म की कथा	73	
44.	परिग्रह ही भय का कारण है	74	

45. धन ही अनर्थ की जड़ है 74
46. धन विवेक हीन बना देता है 75
47. पिण्याक गन्ध की कथा 80
48. लुब्ध सेठ की कथा 82
49. वशिष्ठ मुनि की कथा 83
50. लक्ष्मीमति का मान 88
51. पुष्पदंता की मायाशल्य 89
52. मरीचि की मिथ्यात्व शल्य 89
53. घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत गंधमित्र की कथा 90
54. कर्णेन्द्रिय के वशीभूत गंधर्वदत्ता की कथा 90
55. जिह्वेन्द्रिय के वशीभूत राजा भीम की कथा 91
56. काम के वशीभूत चोर सुवेग की कथा 92
57. नागदत्ता की कथा 93
58. द्वीपायन मुनि की कथा 94
59. सगर चक्रवर्ती की कथा 95
60. माया का दुष्परिणाम 97
61. लोभ कषाय 97
62. परशुराम की कथा 98
63. सुकुमाल मुनि की कथा 99
64. सुकोशल मुनि की कथा 103
65. गजकुमार मुनि की कथा 105
66. सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा 106
67. पणिक मुनि की कथा 107
68. अवमोदर्य तप में प्रसिद्ध भद्रबाहु मुनि 107
69. उपसर्गविजयता 108
70. धर्मघोषमुनि की निर्दोष चर्या का प्रभाव 109
71. श्री दत्त मुनि की शीत परीषह विजयता 110
72. वृषभसेन मुनि की उष्ण परीषह विजयता 110
73. कार्तिकेय मुनि की कथा 111
74. अभयघोष मुनि की कथा 113
75. विद्युच्चरमुनि की दंशमशक परीषह विजयता 113
76. गुरुदत्तमुनि की कथा 115
77. चिलात पुत्र की कथा 116
78. धन्य मुनिराज की सहन शक्ति 118
79. निर्बाध आराधना 119
80. चाणक्य मुनि की कथा 119
81. आराधना का निर्वहण 121
82. शालिसिक्थमच्छ की लम्पटता 122
83. सुभौम चक्रवर्ती की कथा 122
84. अठारह नाते की कथा 123
85. सुभग राजा की कथा 125
86. सुदृष्टि सुनार की कथा 126
87. धर्म सिंह मुनि की कथा 126
88. वृषभसेन की कथा 127
89. यतिवृषभ आचार्य की कथा 128
90. शकटाल मुनि की आराधना 129

90 *1. सम्यक्त्व की आराधना 131
90 *2. आत्म निन्दा, गुण है चुनिन्दा 131
90 *3. आत्म गर्हा, तो निर्दोष रहा 132
90 *4. उग्र तप- केशलोंच 133
90 *5. ज्ञान शुद्धि 134
90 *6. (1) अकाल स्वाध्याय की कथा 134
90 *7. (2) विनय गुण की महत्ता 135
90 *8. (3) अवग्रह अर्थात् नियम लेना- स्वाध्याय का अंग है 136
90 *9. (4) श्रुत का बहुमान करो न कि अभिमान 137
90 *10. (5) गुरु का नाम मत छिपाओ 137
90 *11. (6) व्यञ्जनहीन श्रुतपठन का फल 138
90 *12. (7) अर्थहीन स्वाध्याय का दोष 139
90 *13. (8) व्यञ्जन और अर्थ हीनता की कथा 139
90 *14. (9) श्रीधरसेन आचार्य की कथा 140
90 *15. नागदत्तमुनि का वैराग्य 141
90 *16. परिग्रह कषाय का कारण है 142
90 *17. वैयावृत्य एक श्रेष्ठ तप 143
90 *18. दुर्जन संसर्ग का दोष 144
90 *19. गुणग्रहणता संगति से 145
90 *20. एक गुण की भी प्रशंसा करने की श्रीकृष्ण की कथा 147
90 *21. मनुष्य जन्म की दुर्लभता का
चोल्लक दृष्टान्त 148
2. पाशक दृष्टान्त 149
3. धान्य का दृष्टान्त 149
4. जुआरी का दृष्टान्त 150
5. रत्न का दृष्टान्त 150
6. स्वप्न का दृष्टान्त 150
7. चक्र का दृष्टान्त 151
8. कछुए का दृष्टान्त 151
9. जुआ का दृष्टान्त 152
10. परमाणु का कथानक 152
90 *22 संघश्री की कथा 152
90 *23 भावानुराग कथा 155
90 *24 प्रेमानुराग कथा 155
90 *25. जिनमतानुराग की कथा 156
90 *26. धर्मानुराग कथा 156
90 *27. जिनेन्द्र भक्ति 157
90 *28 दर्शन भ्रष्ट ही भ्रष्ट है 157
90 *29 सम्यग्दर्शन में दृढ़ता 158
90 *30 दर्शन आख्यान 159
90 *31. शुद्ध सम्यग्दर्शन तीर्थंकरत्व का कारण 160
90 * 32. जिनेन्द्र भक्ति-कामधेनु है 165

कथाकोशः

श्रीः

ॐ नमो वीतरागाय

प्रणम्य मोक्षप्रदमस्तदोषं प्रकृष्टपुण्यप्रभवं जिनेन्द्रम्।
वक्ष्येऽत्र भव्यप्रतिबोधनार्थं - माराधनासत्सुकथाप्रबन्धम्॥
सिद्धे जयप्पसिद्धे चउव्विहाराहणाफलं पत्ते।
वंदित्ता अरहंते वोच्छं आराहणा कमसो॥
उज्जोवणमुज्जवणं णिव्व्हणं[1] साहणं च णित्थरणं।
दंसणणाणचरित्तं तवाणमाराहणा भणिया॥

(भगवती आराधना 1-2)

उद्द्योतनमित्यादि-सम्यग्दर्शनादीनां स्वयं स्वीकृतानां लोके प्रकाशनमुद्द्योतनम्। उद्योगः सम्यग्दर्शनादीनां स्वयं स्वीकृतानां द्विनिमित्तमनालस्येनोद्यमनः। निर्वाहणं गृहीतानां सम्यग्दर्शनादीनां त्यागकारणोपनिपाते शतखण्डं व्रजतोऽपि यस्तदपरित्यागः। अपरिहारकत्वमित्यर्थः। साधनं तत्त्वार्थाद्यध्यापन-रागद्वेषविजयादिना सम्यग्दर्शनादीनां समग्रतासाधकत्वम्। निस्तरणं सम्यग्दर्शनादीनां निर्विघ्नतो जन्मपर्यन्तप्रापणम्।

मोक्ष प्रदान करने वाले, क्षुधादि अठारह दोषों से रहित, उत्कृष्ट पुण्य के फलस्वरूप उत्पन्न हुए ऐसे जिनेन्द्र देव को नमस्कार करके भव्य जीवों के प्रतिबोध के लिए आराधना के योग्य पूज्य, सज्जनों की कथा यहाँ मैं (ग्रन्थकार प्रभाचन्द्र आचार्य) कहूँगा।

जो जगत् में प्रसिद्ध हैं, चारों प्रकार की आराधना के फलों को प्राप्त कर चुके हैं, ऐसे सिद्धों और अर्हन्तों को नमस्कार करके क्रम से आराधना को कहूँगा।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तप के उद्योतन, उद्यवन, निर्वहन, साधन और निस्तरण को आराधना कहा है। (भगवती आराधना, 1-2)

स्वयं स्वीकृत किए, धारण किए सम्यग्दर्शन ज्ञानादिक का लोक में प्रकाशन करना **उद्योतन** कहलाता है। स्वयं धारण किए हुए सम्यग्दर्शनादि का अंतरंग बहिरंग दोनों निमित्तों से आलस्य रहित होकर **उद्योग** करना **उद्यमन** है। ग्रहण किए सम्यग्दर्शनादि का त्याग के कारण आ जाने पर, शरीर के सैकड़ों खण्ड हो जाने पर भी उनका त्याग नहीं करना, च्युत नहीं होना **निवर्हण** कहलाता है। तत्त्वार्थ आदि का अध्यापन कराना, सिखाना, रागद्वेष पर विजय आदि के द्वारा सम्यग्दर्शन आदि की पूर्णता की साधना करना **साधन** कहलाता है तथा सम्यग्दर्शन आदि को निर्विघ्न रूप से मरण पर्यन्त धारण करना **निस्तरण** है। अथवा दूसरे जन्म पर्यन्त तक ले जाना **निस्तरण** है।

1. णिव्वाहण

1. तत्र सम्यक्त्वोद्द्योतनकथा

यथा-मगधदेशे अहिच्छत्रनगरे राजा अवनिपालो महामण्डलेश्वरः पञ्चशतद्विजपण्डितैः परिवृतः सातिशयं राज्यं कुर्वाणस्तिष्ठति। द्विजाश्च सर्वेऽपि संध्याद्वये संध्यावन्दनां कृत्वा श्री पार्श्वनाथं च दृष्टवा निजनिजकर्मसु प्रवर्तन्ते। एकदा चारित्रभूषणमुनेः श्री पार्श्वनाथस्याग्रे देवागमेनापराह्णे देववन्दनां कुर्वतः पात्रकेसरिणा सह महापण्डिताः समस्तप्रधानाः संध्यावन्दनां कृत्वा श्रीपार्श्वनाथं द्रष्टुमागताः। देवागमस्तवं श्रुत्वा [पात्रकेसरी] मुनिं पृष्टवान्-भगवन्, अर्थं बुध्यसे। भगवतोक्तम्-नाहं बुध्ये। ततस्तेनोक्तम् - पुनः पठ। ततो भगवता विशिष्टपदविश्रामैर्देवागमस्तवो भणितः। पात्रकेसरिणश्च एकसंस्थत्वेनैकहेलयैव शब्दतोऽशेषदेवागमावगाहकत्व-संभवात् शनैः शनैस्तदर्थं चेतसि परिभावयतो दर्शनमोहक्षयोपशमवशादुत्पन्न तत्त्वार्थश्रद्धानस्य एतत्प्रतिपादितमेव जीवाजीववस्तुस्वरूपं परमार्थतो नान्यदिति गृहे गत्वा रात्रौ वस्तुस्वरूपं परामृशतोऽनुमानविषये संशयः संजातः। अत्र हि जीवादिवस्तुप्रमेयं प्रतिपादितम्। तत्त्वज्ञानं च प्रमाणमनुमानलक्षणम्। तत्कीदृशं जैनमते संभवतीत्येवं मुहुर्मुहुः संशयं कुर्वाणः पद्मावतीदेव्या आसनकम्पादागत्य भणितः-भो पात्रकेसरिन्, प्रातः श्रीपार्श्वनाथदर्शनादनुमान-लक्षणनिश्चयो भविष्यतीत्युक्त्वा श्रीपार्श्वनाथफणामण्डपे अनुमानलक्षणश्लोको लिखितः -

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

---

1. सम्यक्त्व उद्योतनी कथा

मगधदेश के अहिच्छत्र नगर में महामण्डलेश्वर राजा अवनिपाल 500 ब्राह्मण पण्डितों के साथ सातिशय राज्य करते हुए सुशोभित होते थे। सभी ब्राह्मण दोनों संध्याओं में संध्यावन्दना करके, श्री तीर्थंकर पार्श्वनाथ का दर्शन करके अपने-अपने कार्यों में संलग्न रहते थे। एक बार चारित्रभूषण नामक मुनि ने श्री पार्श्वनाथ भगवान् के समीप अपराह्न की देववन्दना करते हुए 'देवागम स्तोत्र' पढ़ा, तभी पात्रकेसरी के साथ सभी प्रधान महापण्डित संध्यावन्दना करके श्री पार्श्वनाथ के दर्शन करने के लिए आए। देवागम स्तवन को सुनकर पात्रकेसरी ने मुनि को पूछा हे भगवन्! इसका अर्थ बतलाइए। भगवान् मुनि ने कहा, मैं इसका अर्थ नहीं जानता हूँ। तब पात्रकेसरी ने कहा - कृपया आप पुनः पढ़ो। तब मुनि ने विशेष पदों पर रुक-रुक कर देवागम स्तवन पढ़ा। पात्रकेसरी को एक संस्थ में (एक बार में) सहज ही समस्त देवागम हृदयंगम होने से धीरे-धीरे उसका अर्थ भी हृदय में समा गया। दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न तत्त्वार्थ श्रद्धान से यह निश्चय किया कि इसमें प्रतिपादित जीव-अजीव आदि वस्तु स्वरूप ही परमार्थ है अन्य नहीं। इस प्रकार घर में जाकर रात्रि में वस्तु स्वरूप का विचार करते रहे तो उन्हें अनुमान के विषय में संशय उत्पन्न हुआ। यहाँ जीवादि वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन है, तत्त्वज्ञान ही यह प्रमाण है। यह प्रमाण अनुमान का लक्षण है। यह जैनमत में किस प्रकार संभव है, इस प्रकार बार-बार संशय करते हुए पद्मावती देवी का आसन कम्पायमान हुआ, देवी ने आकर कहा - हे पात्रकेसरी प्रातः श्री पार्श्वनाथ भगवान् के दर्शन से अनुमान के लक्षण के लक्षण का निश्चय होगा ऐसा कहकर श्री पार्श्वनाथ के फणमण्डप पर अनुमान के लक्षण का श्लोक लिखा -

अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्।
नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

इति देवतादर्शने संजाते जैनमते अतिशयेन रुचिस्तस्य संजाता। प्रातश्च देवं पश्यतः फणामण्डपेऽनुमान-लक्षणश्लोक दर्शनात्तल्लक्षणनिश्चये सति संजातहर्षः पुलकितशरीरोऽयमेव देवोऽयमेव धर्म इति दर्शनमोहक्षयोपशम - विशेषवशादुत्पन्न विशिष्टसम्यग्दर्शनो जिनोक्तं तत्त्वं चेतसि पुनः पुनश्चिरं परिभावयन् द्विजैर्भणितः-मीमांसार्थ एव तात्पर्यतश्चेतसि चिन्त्यताम्, किं जैनमतार्थचिन्तयेति। ततः पात्रकेसरिणोक्तम्-जैनमतमेव सर्वमतेभ्यः श्रेष्ठम्, अतो भवद्भिरपि मिथ्याभिनिवेशं परित्यज्य तत्रैव रतिः कर्तव्येति विवादे सति समस्तानपि तान् राज्ञोऽग्रे वादेन जित्वा जैनमतं समर्थ्यात्मनः सम्यक्त्वगुणः प्रकाशितः। अन्यमतनिराकरणप्रवणो जिनेन्द्रगुणसंस्तुतिस्तवश्च कृतः। तं च तथाभूतं महापण्डितं दृष्ट्वा अवनिपालादयो गृहीतसम्यक्त्वा जिनधर्म एव रताः संजाता इति।

2. अथ ज्ञानोद्द्योतनकथा

मान्याखेटनगरे राजा शुभतुङ्गो, मन्त्री पुरुषोत्तमनामको, भार्या पद्मावती, पुत्रावकलङ्कनिष्कलङ्कौ। एकदा नन्दीश्वराष्टम्यां पितृभ्यां रविगुप्ताचार्यपार्श्वेऽष्टदिनानि ब्रह्मचर्यं गृहीतम्। पुत्रयोरपि प्रणतोत्तमाङ्गयोः क्रीडया ब्रह्मचर्यं दापितम्। कतिपयदिनैर्विवाहोपक्रमसंप्रदानादिकं दृष्ट्वा पुत्राभ्यां पिता भणितः- तात, किमर्थोऽयं विवाहोपक्रमः क्रियते। पित्रोक्तम्-भवतोः परिणयनार्थम्। ननु तात, त्वया आवयोर्ब्रह्मचर्यं दापितम्, तत्किं विवाहेन। पित्रोक्तम् क्रीडया तद्भवतोर्मया दापितम्। ननु तात, धर्मे का क्रीडा। ननु नन्दीश्वराष्टदिनान्येव मया भवतोर्दापितम्,

---

अर्थात् - पक्ष धर्मत्व, सपक्ष सत्व और विपक्षात् व्यावृति रूप हेतु की त्रैरूप्यता से क्या? जब अन्यथानुपपन्नत्व हेतु ही समर्थ है और जहाँ अन्ययानुपपन्नत्व हेतु नहीं वहाँ उक्त तीन हेतुओं से क्या? इस प्रकार पहले तो रात्रि में देवी का दर्शन होने पर जैन मत में अतिशय रुचि प्रकट हुई तदुपरान्त प्रातः भगवान् के दर्शन करते हुए फणामण्डप पर अनुमान लक्षण वाले श्लोक के दर्शन से लक्षण का निश्चय हो जाने से शरीर पुलकित हुआ और मन में हर्ष हुआ। यह जिनेन्द्र देव ही सच्चे देव हैं, यह धर्म ही सच्चा धर्म है, इस प्रकार दर्शन मोहनीय के क्षयोपशम विशेष से उत्पन्न विशिष्ट सम्यग्दर्शन से जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुए तत्त्व को चित्त में बार-बार भाते रहे। पात्रकेसरी से ब्राह्मणों ने कहा मीमांसकों के प्रयोजनीय तात्पर्य का ही मन में चिन्तन करना चाहिए, जैन मत का आप चिन्तन क्यों करते हैं ? तब पात्रकेसरी ने कहा जैन मत ही सर्वमतों में सर्वश्रेष्ठ है। इसलिए आप लोगों को भी मिथ्या आसक्ति को त्याग कर इसी में रति करना चाहिए। इस प्रकार विवाद करने पर उन सभी पण्डितों को राजा के समक्ष वाद से जीतकर जैनमत का समर्थन किया और अपने सम्यक्त्व गुण को प्रकाशित किया तथा अन्यमत का निराकरण करने में प्रवीण ऐसे पात्रकेसरी ने जिनेन्द्र भगवान् के गुणों की संस्तुति, स्तवन किया। इस प्रकार पात्रकेसरी तथा सर्व महापण्डितों को जिनमत में अनुरक्त देखकर अवनिपाल राजा ने भी सम्यक्त्व धारण किया और उनकी भी जैनधर्म में श्रद्धा उत्पन्न हुई।

2. ज्ञान उद्योतनी कथा

मान्याखेट नगर के राजा शुभतुंग थे, उनका पुरुषोत्तम नाम का मन्त्री था। राजा शुभतुंग की पत्नी पद्मावती थी तथा उनके अकलंक और निष्कलंक नाम के दो पुत्र थे। एक बार नन्दीश्वर पर्व की अष्टाह्निका में माता-पिता ने रविगुप्त आचार्य के पास आठ दिन का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया। दोनों पुत्रों ने भी मस्तक झुकाकर नमस्कार करते हुए खेल-खेल में ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया। कुछ दिन उपरान्त विवाह का कार्यक्रम सम्बन्धी दानादिक को देखकर दोनों पुत्रों ने पिता से कहा - हे तात! यह विवाह का उपक्रम आप किसलिए कर रहे हैं?

न भवता भगवता वा तथाविवक्षितत्वात्। तत इह जन्मन्यावयोः परिणयने निवृत्तिरस्तीत्युक्त्वा सकलासद्व्यापारान्परिहृत्याशेषशास्त्राणि ताभ्यामधीतानि। बौद्धदर्शनपरिज्ञातुस्तथाभूतस्य कस्यचिन्मान्याखेटे अभावात्तत्परिज्ञानार्थमतीवाज्ञच्छात्ररूपं धृत्वा महाबोधिस्थाने महाबौद्धपरिज्ञातु र्धमाचार्यस्य पार्श्वे छात्रवृत्त्या स्थितौ स चोपरितनभूमौ[1] विजातीयं परिशोध्य वन्दकानां बौद्धव्याख्यानं करोति। तौ चाज्ञौ भूत्वा मातृकां पठन्तौ तदाकर्णयतः। अकलङ्कदेवश्च तयोर्मध्ये एकसंस्थो निःकलङ्को द्विसंस्थश्चिन्तयति। एवमेकदा तद्व्याख्यानयतस्तस्य दिग्नागाचार्येणानेकान्तं दूषयता पूर्वपक्षतया सप्तभङ्गीवाक्ये लिखितेऽशुद्धत्वात्परिज्ञानं न संभवति। ततो व्याख्यानं संवृत्य स व्यायामे गतः। अकलङ्कदेवेन च तद्वाक्यं शोधित्वा धृतम्। तेन चागत्य तद्वाक्यं शोधितं दृष्ट्वोक्तम्-कश्चिज्जैनो यथावज्जैनमतपरिज्ञाता वन्दकवेषधारी बौद्धमधीयानो धूर्तस्तिष्ठति। स परिशोध्य मार्यतामित्युक्त्वा शपथादिना सर्वेऽपि परिशोधिताः। पुनर्जिनप्रतिमोल्लङ्घनं कारिताः। अकलङ्कदेवेन प्रतिमोपरि सूत्रं प्रक्षिप्य सावरणेयमिति संकल्पं कृत्वा तदुल्लङ्घनं कृतम्। ततः कथमपि जैनमलक्षयता पुनः कांस्यभाजनानि बहूनि एकत्र गोण्यां निक्षिप्य एकैकस्य वन्दकस्य छात्रकस्य च शयनस्य समीपे एकैकमुपासकादिकं दत्वा तानि कांस्यभाजनानि दूरादुत्क्षिप्य निक्षिप्तानि। ततो रौद्रे महति तच्छब्दे समुत्थिते अकलङ्कनिःकलङ्कौ पञ्चनमस्कारं स्मरन्तावुत्थितौ। ततस्तौ बौद्धा [चार्य] समीपे [2] नीतौ। भणितं च-भो भो आदेशिन्नेतौ तौ धूर्तौ छात्रवेषधारिणौ जैनौ लब्धाविति

पिता ने कहा आप लोगों के परिणयन के लिए, किन्तु पिताजी आपने जीवनभर के लिए ब्रह्मचर्य दिलाया था फिर अब विवाह से क्या? पिता ने कहा आप लोगों को तो यूँ ही क्रीड़ा से दिलवाया था। लेकिन तात! धर्म में क्रीड़ा कैसी ? और नन्दीश्वर के आठ दिनों के लिए ही मुझे ब्रह्मचर्य दिया यह बात न तो आपने ही स्पष्ट विवक्षित की और न भगवान् मुनि ने! इसलिए इस जन्म में अब जीवन भर हम विवाह नहीं करेंगे, ऐसा कहकर सम्पूर्ण अप्रयोजनीय कार्यों को छोड़कर दोनों भाइयों ने समस्त शास्त्रों का अध्ययन किया। बौद्धदर्शन के ज्ञाता का मान्यखेट में अभाव था। बौद्धदर्शन का ज्ञान करने के लिए अत्यन्त अज्ञ छात्र का रूप धारण कर वे दोनों भाई महाबोधिस्थान में महाबौद्ध धर्माचार्य के निकट छात्र बनकर रहने लगे। वह धर्माचार्य उपरितन भूमि (उच्चासन)पर बैठकर विजातियों (अन्य धर्मावलंबियों) को परिशोधित कर केवल वन्दकों (बौद्ध धर्मावलंबी) के लिए बौद्ध धर्म का व्याख्यान करता। वे दोनों अज्ञानी बनकर वर्णमातृका को पढ़ते और उनका व्याख्यान सुनते थे। इस प्रकार एक बार दिग्नाग आचार्य व्याख्यान कर रहे थे। उन्होंने पूर्वपक्ष बनाकर अनेकान्त को दूषण देते हुए सप्तभंगी वाक्य लिख दिया किन्तु अशुद्ध होने से उसका सही ज्ञान संभव नहीं हुआ। तब व्याख्यान को रोककर वह व्यायाम करने चले गए। उसी समय अकलङ्क देव ने उनके वाक्यों को शुद्ध करके रख दिया। दिग्नाग ने आकर उन वाक्यों की शुद्धि देखकर कहा-कोई धूर्त जैन अच्छी तरह से जैन मत का ज्ञाता होते हुए भी भेष धारण कर बौद्धधर्म को पढ़ता हुआ यहाँ रुका है। उसे ढूँढकर मार देना चाहिए, ऐसा कहकर शपथ दिलाकर सभी को पूछा। फिर जिन प्रतिमा का उल्लंघन करवाया। अकलङ्क देव ने प्रतिमा के ऊपर धागा फेंककर 'यह सावरण है' इस प्रकार संकल्प करके उसको लांघ दिया। फिर किसी भी प्रकार से जैन की पहचान नहीं होने पर पुनः बहुत से कांसे के बर्तनों को इकट्ठा करके एक जूट के थैले में रखकर एक-एक भिक्षु और छात्र के शयन स्थान के निकट एक-एक उपासक आदि को बैठाकर उन कांसे के बर्तनों को दूर से फेंक कर गिराया। तब महान् भयंकर आवाज होने पर अकलङ्क, निकलङ्क पञ्च नमस्कार मन्त्र का स्मरण करते हुए उठ बैठे। फिर दोनों बौद्धाचार्य के समीप

1. सुच्चो, 2. बौद्धा तत्समीपे

श्रुत्वा तेनोक्तम्-सप्तमभूमावेतौ धृत्वा पश्चाद्रात्रौ मारयितव्याविति। ततस्तौ सप्तमभूमौ नीत्वा धृतौ। ततो निःकलङ्केनोक्तम्-भो अकलङ्कदेव, अस्माभिर्गुणानुपार्ज्य दर्शनस्योपकारः कश्चिदपि न कृतः। एवमेव मरणमायातमिति। एतच्छ्रुत्वा अकलङ्कदेवेनोक्तम्-मा विसूरय। जीवनोपायोऽद्यैको विद्यते। इदं छत्रं हस्तेन धृत्वा आत्मानं प्रक्षिप्यावां गृहीतवातं छत्रं गत्वा यत्र भूमौ लगिष्यति ततो निर्गत्य यास्याव इति पर्यालोच्य रात्रावेतत्सर्वं कृत्वा निर्गत्य गतौ। अर्धरात्रे गते मारणार्थं यावत्तावन्वेषितौ तावन्न दृष्टौ। अथ उपरि वाटिकायां पत्तने चान्वेष्यमाणौ तौ न दृष्टौ। ततो निर्गताविति ज्ञात्वा तत्पृष्ठतोऽश्ववारा लग्नाः। उच्चलितधूलिरजो दृष्ट्वा तानागच्छतो ज्ञात्वा निःकलङ्केनोक्तम्-भो अकलङ्कदेव, त्वमेकसंस्थो महाप्राज्ञो दर्शनोपकारकरणार्थमत्र पद्मिनीषण्डमण्डिते सरोवरे प्रविश्यात्मानं रक्षय। मां मार्गे गच्छन्तं दृष्ट्वा मारयित्वा एते व्याघुटन्ति लग्नाः। इति तद्वचनादकलङ्कदेवो झटिति सरोवरे प्रविश्य पद्मिनीपत्रं मस्तकोपरि धृत्वा स्थितः। निःकलङ्कः शीघ्रं नश्यन् रजकेन कर्पटानि प्रक्षालयता उच्चलितधूलिरजो दृष्ट्वा क्षुभितचित्तेन पृष्टः। किमर्थं भवान्नश्यतीति। तेनोक्तम्-शत्रुबलं पश्यैतदागच्छति। तत्तु यं पश्यति तं मारयति। तद्भयादहं नश्यामीति श्रुत्वा सोऽपि तेनैव सह नष्टः। नश्यन्तौ तौ द्वौ धृत्वा मारयित्वा उत्तमाङ्गं गृहीत्वा च पृष्ठतो लग्ना व्याघुट्य गताः। ततो अकलङ्कदेवः सरोवरान्निर्गत्य गच्छन् कतिपयदिनैः कलिङ्गदेशे रत्नसंचयपुरं प्राप्तः। तत्र राजा हिमशीतलो, राज्ञी मदनसुन्दरी, स्वयंकारितमहाचैत्यालये जिनधर्मप्रभावनारता फाल्गुनाष्टम्यां रथयात्रां कारयन्ति, संघश्रीवन्दकेन विद्यादर्पात्तेन राज्ञोऽग्रे भणितम्। जिनस्य

लाये गए। उपासक ने कहा - आप आदेश दीजिए, छात्र भेष को धारण करने वाले दोनों जैन धूर्त यही हैं, जो पकड़े गए हैं। इस प्रकार सुनकर बौद्धाचार्य ने कहा - सप्तम भूमि (अर्थात् सातवें तहखाने) में इन दोनों को रखकर बाद में रात्रि में इन्हें मार देना है। इसलिए दोनों सप्तमभूमि में ले जाकर रखे गए। तब निःकलंक ने कहा - भो अकलङ्क देव! हम लोगों ने गुणों का उपार्जन करके दर्शन का उपकार कुछ भी नहीं किया है। इतने में यह मरण भी आ गया है। यह सुनकर अकलङ्क देव ने कहा - दुःखी मत होओ। अभी भी जीवन का एक उपाय है। इस छाते को हाथ में रखकर अपने को छिपाकर हम दोनों छत्र को ले जाकर जहाँ यह भूमि पर लगेगा वहाँ से निकलकर निकल जायेंगे। इस प्रकार विचार करके रात्रि में ही दोनों निकल गए। आधी रात होने पर मारने के लिए जब दोनों की खोज की गयी तो वह नहीं दिखे। फिर ऊपर वाटिका में, नगर में उन दोनों को खोजने पर भी नहीं देखा गया। वहाँ से ये दोनों निकल गए हैं, यह जानकर उनके पीछे घुड़सवार लग गए। उछलती हुई धूलि रज को देखकर और उनको आता जानकर निःकलंक ने कहा - आप एकसंस्थ हैं, महाप्रज्ञ हैं, जिनदर्शन का उपकार करने के लिए इस कमलों से युक्त सरोवर में प्रवेश कर अपनी रक्षा करो। मुझे मार्ग में जाता हुआ देखकर, मुझे मारकर ये लोग वापस लौट जायेंगे। इस प्रकार भाई के वचनों को मानकर अकलङ्क देव शीघ्र ही सरोवर में प्रवेश कर कमल पत्र को मस्तक के ऊपर रखकर बैठ गए। निःकलंक को शीघ्र दौड़ता देख एक धोबी ने कपड़ों को धोते हुए जब उछलती हुई रज देखी तो क्षुभित चित्त होकर पूछा - किसलिए आप दौड़ते हैं ? उसने कहा - शत्रु की सेना देखो, यह आ रही है। वह भी उसी के साथ दौड़ने लगा। दौड़ते हुए उन दोनों को पकड़कर उनके मस्तक को ग्रहण कर पीछे से पकड़कर वापस लौट आये। तब अकलङ्क देव सरोवर से निकलकर चलकर कुछ दिनों में कलिङ्ग देश में रत्नसंचयपुर नामक नगर में पहुँचे। उस नगर का राजा हिमशीतल था, जिसकी रानी का नाम मदनसुन्दरी था। जिनधर्म की प्रभावना में रत रानी ने स्वयं बनवाए हुए विशाल चैत्यालय में फाल्गुन की

रथयात्रा न कर्तव्या जिनदर्शनस्यैवासंभवादित्युक्त्वा मुनीनां पत्रं दत्तम्। ततो राज्ञोक्तम्आत्मीयं दर्शनं समर्थयित्वा रथयात्रा प्रिये कर्तव्या नान्यथेति। एतच्छ्रुत्वा राज्ञी उद्विग्ना संजाताभिमाना वसतिकायां गता। मुनयश्च पृष्टाः। किं क्वापि कश्चिदस्मद्दर्शने एतस्य प्रतिमल्लोऽस्ति, य इमं जित्वा मम मनोरथं पूरयतीति। मुनिभिरुक्तम्-दूरे मान्याखेटादावेतस्मादप्यधिका महापण्डिता जैनदर्शने सन्तीति। एतदाकर्ण्य 'राज्ञी उच्छीर्षके सर्पो योजनशते वैद्य' इत्युक्त्वा देवस्य विशेषपूजां कृत्वा राजकुलं परित्यज्य चैत्यालये प्रविश्य यदि संघश्रियो दर्पभङ्गात्पूर्वप्रवाहेण महोत्सवेन मदीया रथयात्रा भवति, तदा ममाहारादौ प्रवृत्तिर्नान्यथेत्युक्त्वा देवस्याग्रे पञ्चनमस्कारं जपन्ती कायोत्सर्गेण स्थिता। अर्धरात्र आसनकम्पात्समागत्य चक्रेश्वरी देवी, हे मदनसुन्दरि, मा किंचिदुद्वेगं कुरु, प्रातः संघश्रीदर्पविध्वंसकस्तववाञ्छितमनोरथपूरको जिनशासनप्रभावनाकारकोऽकलङ्कदेवो नाम दिव्यः पुरुषः आगच्छति लग्न इत्युक्त्वा गता। एतच्छ्रुत्वा राज्ञी संजातपरमानन्दहर्षात्पुलकितशरीरा परमभक्त्या देवस्तुतिं कृत्वा प्रातर्महाभिषेकं निर्वर्त्याकलङ्क-देवस्यान्वेषणार्थं चतुर्दिक्षु पुरुषाः प्रेषिताः। तत्र पूर्वस्यां दिशि ये गताः पुरुषास्तैरुद्यानवने अशोकवृक्षतले कतिपयच्छात्रैः परिवृतो नगरविश्रामं कुर्वन्नकलङ्कदेवो दृष्टः[1]। छात्रमेकं तन्नाम पृष्टवा गत्वा राज्ञ्याः कथितम्। ततो राज्ञी चतुर्विधसंघेन सहिता यानजंपानसमन्विताकलङ्कदेवास्याभिमुखा आगता। तेन दिव्यगन्धविलेपनैश्चार्चितेन दिव्यवस्त्रैः परिधापिते राज्ञी संघस्य क्षेमकुशलवार्तां पृष्टा। ततोऽश्रुपातं कुर्वाणया राज्ञ्योक्तम्-संघः क्षेमकुशलेन तिष्ठति। किंतु संघस्य महती म्लानता सांप्रतमत्र जातेत्युक्त्वा संघश्रीविलसितं सर्वं तस्य कथितम्। तदाकर्ण्याकलङ्कदेवः समुत्पन्नकोपो भणति-कियन्मात्रो वराकः संघश्रीर्मया सह सुगतोऽपि वादं कर्तुमसमर्थ इत्युक्त्वा संघश्रियः पत्रं दत्वा महोत्सवेन वसतिकायां प्रविष्टः। संघश्रिया च पत्रदर्शनात् क्षुभितचित्तेन पत्रं न भिन्नम्। हिमशीतलराज्ञाकलङ्कदेवो महागौरवेणाकार्य नीत्वा तेन सह वादं कारितः। संघश्रिया चोत्तरप्रत्युत्तरैर्वादं कुर्वताकलङ्कदेववाग्विभवं दृष्टवा आत्मनोऽशक्तिं प्रतिपाद्य ये केचन बौद्धपण्डिता देशान्तरे सन्ति ते सर्वेऽप्याकारिताः

अष्टाह्निका में रथ यात्रा महोत्सव को करवाया। संघ श्री वन्दक 'बौद्धाचार्य' ने अपनी विद्या के दर्प से मत्त होकर राजा से कहा कि यह जिनदर्शन असंभव है (अर्थात् जैनमत कोई मत नहीं) ऐसा कहकर उसने जिन मुनियों से वाद के लिए पत्र दिया और राजा से कहा कि रथ यात्रा महोत्सव नहीं करना। रानी के पास जाकर राजा ने कहा हे प्रिये! अपने जिनमत का समर्थन करके ही रथयात्रा करवाना उचित है, अन्यथा नहीं। ऐसा सुनकर रानी उद्विग्न हो उठी और अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए वसतिका में गयी। वहाँ जाकर मुनियों से पूछा - क्या अपने दर्शन में कहीं भी कोई भी ऐसा प्रतिवादी है, जो इन बौद्धों को जीतकर मेरा मनोरथ सफल कर सके। मुनियों ने कहा - बहुत दूर मान्याखेट में इस बौद्ध से भी अधिक महापण्डित जैनदर्शन के विद्वान् हैं। ऐसा सुनकर, सर्प तो सिर पर फुंकार रहा है और वैद्य सैकड़ों योजन दूर हैं, रानी कहकर देव की विशेष पूजा करके राजकुल को छोड़कर चैत्यालय में पहुँची। यदि संघश्री का दर्प भंग होने से पूर्व की तरह चले आ रहे महोत्सव के साथ मेरी रथयात्रा होगी तभी मैं आहार आदि को ग्रहण करूँगी अन्यथा नहीं। इस प्रकार देव के आगे पंच नमस्कार मंत्र का जाप करती हुई कायोत्सर्ग से स्थित हो गयी। अर्धरात्री में चक्रेश्वरी देवी का आसन कम्पायमान हुआ और उसने आकर कहा, हे मदनसुन्दरी! तुम उद्विग्न मत होओ। प्रातः संघश्री के दर्प को नाश करने वाले, जिनशासन के प्रभावक, अकलंक देव नाम के एक दिव्य पुरुष आ पहुँचेंगे। इस प्रकार कहकर वह देवी चली गयी। यह सुनकर

1. पृष्ट्वा

पूर्वसिद्धां च ताराभगवतीं रात्रावावतार्योक्तम्-देवि, अहमनेन सह वादं कर्तुमसमर्थः। ततस्त्वमिमं वादं कृत्वा जयेत्युक्ते तयोक्तम्-एवं भवतु सभायामन्तःपटेनाहं कुम्भेऽवतीर्यानेन सह वादं करिष्यामीति। ततः प्रभाते राज्ञोऽग्रे संघश्रियोक्तम्-अहम [न्तः] पटेनाद्यप्रभृति कस्यापि मुखमपश्यन्विचित्रपदवाक्यविन्यासैरुपन्यासं करिष्यामीत्युक्त्वा काण्डपटं दत्वा मध्ये बुद्धप्रतिमायास्ताराभगवत्याश्च पूजां कृत्वा ताराभगवतीरिता। सा कुम्भेऽवतीर्य दिव्यध्वनिना क्षणोपन्यासं कर्तुं लग्ना। अकलङ्कदेवोऽपि तदुपन्यासमन्तः पटेन क्षणभङ्गं शतखण्डं कृत्वा निराकृत्यानेकान्तात्मकं[1] सर्वं तत्त्वमनवद्यस्वपरपक्षसाधनदूषणवाक्यैः समर्थयितुं लग्नः। एवं षण्मासेषु गतेष्वेकदाकलङ्कदेवस्य रात्रौ चिन्तोत्पन्ना। मानुषमात्रो मया सहैतावन्ति दिनानि वादं करोतीति किमत्र कारणमिति पुनः पुनश्चेतसि वितर्कयतश्चक्रेश्वरीदेव्या प्रत्यक्षीभूयोक्तम्-भो अकलङ्कदेव, न भवता सह मानुषमात्रस्यैतावन्ति दिनानि वादविधाने सामर्थ्यमस्ति। तारा भगवती इयं भवता सह एतावन्ति दिनानि वादं करोति। अतः प्रातरुपन्यस्तं वाक्यं व्याघुट्य

रानी को परम हर्ष उत्पन्न हुआ। उसका शरीर हर्ष से रोमांचित हो उठा। परम भक्ति के साथ उसी समय देवस्तुति की और प्रातः जिनेन्द्रदेव का महाभिषेक करके अकलंकदेव को ढूँढने के लिए चारों दिशाओं में पुरुष भेज दिए। उनमें से जो आदमी पूरब दिशा में गए थे, उन्होंने उद्यान वन में कुछ छात्रों से घिरे हुए नगर विश्राम करते हुए अकलंक देव को देखा। उनमें से किसी एक छात्र से उन महात्मा का नाम पूछकर रानी के पास आये और सब हाल कह दिया। तब रानी चतुर्विध संघ के साथ 'वाहन पालकी' आदि सामग्री से युक्त हो अकलंक देव के सम्मुख आयी। रानी ने दिव्य गन्ध युक्त विलेपन से अर्चना की और दिव्य वस्त्र प्रदान किए तदुपरान्त रानी से संघ को क्षेम कुशलवार्ता पूछी। तब अश्रुपात करती हुई रानी ने कहा - संघ तो क्षेम कुशल से है किन्तु संघ का आज घोर अपमान हो रहा है, ऐसा कहकर रानी ने संघश्री का सब हाल कह दिया। जिसे सुनकर अकलंकदेव को क्रोध उत्पन्न हुआ और कहा - वह संघश्री बेचारी मेरे सामने किस गिनती में है, जब मेरे साथ सुगत (साक्षात् बुद्ध) भी वाद करने में असमर्थ हैं, ऐसा कहकर संघ श्री से वाद करने के लिए पत्र भेज दिया और महान् उत्सव के साथ वसतिका में प्रविष्ट हुए। पत्र देखने से क्षुभित चित्त संघश्री ने पत्र भिन्न नहीं किया अर्थात् उसे वाद के लिए तैयार होना ही पड़ा। हिमशीतल राजा ने अकलंक देव को महागौरव के साथ बुलाकर उस संघश्री के साथ वाद करवाया। संघश्री के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर वाद चलता रहा किन्तु अकलंकदेव के वाग् वैभव को देखकर अपने को असमर्थ पाया। तब संघश्री ने जितने भी बौद्ध पण्डित देश देशान्तर में थे, उन सबको बुलवाया। पहले से सिद्ध तारा भगवती (देवी) को रात्रि में अवतरित किया और कहा - हे देवी! मैं अकलंक के साथ वाद करने में असमर्थ हूँ, इसलिए तुम इस वाद को करके उसे जीतो ऐसा कहने पर देवी ने कहा, ऐसा ही होगा किन्तु मैं सभा के अन्दर परदे में रहकर कुम्भ में अवतरित होकर उसके साथ वाद करूँगी। सुबह होने पर संघश्री ने राजा से कहा - मैं परदे में रहकर किसी का मुख देखे बिना विचित्र पद-वाक्य-विन्यास के द्वारा वाद करूँगा। ऐसा कहकर उसने परदा लगाकर मध्य में बुद्ध प्रतिमा और तारादेवी की पूजा करके तारादेवी का आह्वान किया। वह देवी घड़े में अवतरित होकर अपनी दिव्यध्वनि से वाद-विवाद करने लगी। अकलंक देव ने भी उस देवी के प्रतिवाद को अपने अन्तः पट से अर्थात् दिव्यवाणी के द्वारा तुरन्त भंग करके, सैकड़ों खण्ड करके निराकरण किया तथा अनेकान्त रूप सर्व तत्त्वों का निर्दोष वाक्यों के द्वारा स्वपक्ष साधन और परपक्ष दूषण का समर्थन करने लगे। इस प्रकार वाद-विवाद करते हुए छह माह बीत जाने पर अकलंकदेव को रात्रि में चिन्ता उत्पन्न हुई। क्या कारण है कि एक मनुष्य मात्र

1. नेकातात्मं

पृच्छ्यतामेतस्याः पराजयो भवतीति। ततोऽकलङ्कदेवो देवतादर्शनात्संजातपरमोत्साहः सभामध्ये क्रीडार्थं मयानेन सहैतावन्ति दिनानि वादः कृतः। अद्य वादं जित्वा भोजनं कर्तव्यमिति प्रतिज्ञां कृत्वा वादं कर्तुं लग्नः। ताराभगवत्याश्चोपन्यासं कुर्वन्त्याः कीदृशं प्रागुक्तं तद्वाक्यं त्वयोपन्यस्तं कथयेत्युक्तमकलङ्कदेवेन। देवतावाण्याश्चैकत्वात्किंचिदप्युत्तरमब्रुवाणा प्रणश्य सा गता। ततोऽकलङ्कदेवेनोत्थाय काण्डपटं विदार्य ताराभगवत्यधिवासकुम्भं दृढपादप्रहारेण स्फोटयित्वा सुगतं च पादेन हत्वा मदनसुन्दर्याः समस्तभव्यानां चानन्दं जनयता गलगर्जं कृत्वा अयं वराकसंघश्रीः प्रथमदिन एव जितः। ताराभगवत्या च सह जैनमतज्ञानप्रभावोद्द्योतनार्थ मेतावन्ति दिनानि वादः कृतः। इत्युक्त्वा श्लोकः पठितः।

नाहंकारवशीकृतेन मनसा न द्वेषिणा केवलं
नैरात्म्यं प्रतिपाद्य नश्यति जनः कारुण्यबुद्ध्या मया।
राज्ञः श्रीहिमशीतलस्य सदसि प्रायो विदग्धात्मनो
बौद्धौघान् सकलान्विजित्य सुगतः पादेन विस्फालितः॥

एवंविधं च ज्ञानप्रभावं दृष्ट्वा हिमशीतलराजादयः सर्वेऽपि जिनधर्म एव रताः संपन्ना इति। एवमन्येनापि भव्येन ज्ञानोद्द्योतनादिकं कर्त्तव्यमिति।

मेरे साथ इतने दिनों से वाद करता है, ऐसा विचार बार-बार मन में ऊहापोह उत्पन्न करने लगा तब चक्रेश्वरी देवी प्रकट हुई और कहा, हे अकलंक देव! आपके साथ एक मनुष्य मात्र की इतने दिनों तक वाद-विवाद करने की सामर्थ्य नहीं। उस संघश्री के साथ तारादेवी इतने दिनों से वाद करती है, इसलिए प्रातः उसके कहे वाक्य का निराकरण कर उससे ही पूछना जिससे उसकी पराजय होगी। अकलंकदेव को देवी के दर्शन से परम उत्साह उत्पन्न हुआ। दूसरे दिन अकलंक देव ने सभा के मध्य में कहा - मेरा संघश्री के साथ इतने दिनों तक वाद हुआ वह तो इसके साथ क्रीड़ा के लिए था, किन्तु आज मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि इस वाद को जीतकर ही भोजन करूँगा और पुनः वाद करने लगे। तारा भगवती ने वाक्य का प्रतिपादन किया तो अकलंक देव ने कहा आपके द्वारा पहले कहा हुआ यह कथन किस प्रकार था पुनः कहो। देवी की वाणी एक बार ही होती है, इसलिए दुबारा कुछ भी न बोलती हुई वह देवी असफल हो गयी। तब अकलंकदेव ने उठकर परदे को फाड़कर तारादेवी के रहने वाले घड़े को तेज पैर की ठोकर से फोड़ दिया और सुगत (बौद्ध) को भी पाद से विध्वंस कर दिया। मदनसुन्दरी सहित समस्त भव्य जीवों को आनन्द उत्पन्न हुआ। अकलंक देव ने गर्जना करते हुए कहा यह बेचारी संघश्री को तो मैंने पहले दिन ही जीत लिया था। जैनमत का प्रभाव दिखाने के लिए और ज्ञान का उद्योतन करने के लिए मैंने इतने दिन तक वाद किया। यह कहकर अकलंक देव ने निम्न श्लोक पढ़ा -

बुद्धिमान पुरुष, महाराज हिमशीतल की सभा में मैंने सब बौद्धों को जीतकर, पैर से सुगत को ठुकराया, यह मैंने न तो अहंकार से वशीभूत होकर किया और न विद्वेष बुद्धि से किन्तु नैरात्म्य (नास्तिकता) का प्रतिपादन कर नष्ट हुए लोगों के प्रति करुणा बुद्धि रखकर मैंने ऐसा किया है।

इस प्रकार हिमशीतल राजा और अन्य लोग सम्यग्ज्ञान के प्रभाव को देखकर जैनधर्म में अनुरक्त हुए। इसलिए अन्य भव्य जीवों को भी सम्यग्ज्ञान का उद्योतन करना चाहिए।

3. अथ चारित्रोद्द्योतनाख्यानम्

यथा - भरतक्षेत्रे वीतशोकपुरे राजा अनन्तवीर्यो, राज्ञी सीता, पुत्रः सनत्कुमारश्चतुर्थश्चक्रवर्ती षट्खण्डपृथ्वीं प्रसाध्य नवनिधानचतुर्दशरत्नाद्युपेतः परमविभूत्या राज्यं कुर्वन्नास्ते। एतस्मिन्प्रस्तावे सौधर्मेन्द्रो निजसभायां पुरुषस्य रूपगुणव्यावर्णनां कुर्वाणो देवैः पृष्टः-देव, भरतक्षेत्रे किं कस्यापि विशिष्टं रूपं विद्यते न वा। इन्द्रेणोक्तम्-सनत्कुमारचक्रवर्तिनो यादृशं रूपं तादृशं देवानामपि न संभवतीत्येतच्छ्रुत्वा मणिमालिरत्नचूलदेवौ तद्रूपं द्रष्टुमायातौ। दृष्टं च मज्जनके प्रविष्टस्य चक्रवर्तिनः सर्वावयवगतं सहजमत्यद्भुतं चेतश्चमत्कारकारि दिव्यरूपम्। तद्दृष्ट्वा शिरःकम्पं कुर्वद्भ्यामहो देवानामपीदृशं रूपं न संभवतीत्युक्त्वा सिंहद्वारे प्रकटीभूय प्रतीहारो भणितः-भो प्रतीहार, चक्रवर्तिनः कथय, भवदीयं रूपं द्रष्टुं स्वर्गाद्देवावागताविति। एतदाकर्ण्य शृङ्गारं कृत्वा सिंहासने उपविश्याकारितौ देवौ। ताभ्यामागत्य तद्रूपं दृष्ट्वा विषादः कृतः। हा कष्टं, यादृशं प्राक्तनं मज्जनके प्रच्छन्नाभ्यामावाभ्यां दृष्टं रूपं न तादृशमिदानींतनमतोऽशाश्वतं सर्वमिति तच्छ्रुत्वा मण्डनकारिणान्यैश्च सेवकैरुक्तम्- न किंचित्तदानींतनाद्रूपादिदानींतनस्य रूपस्य वैलक्षण्यमस्माकं प्रतिभाति। एतदाकर्ण्य तद्वैलक्षण्यप्रतीत्यर्थं जलभृतं कलशं राज्ञोऽग्रे तेषां दर्शयित्वा पश्चात्तान्बहिः प्रेषयित्वा चक्रवर्तिनः पश्यतस्तृणशलाकया बिन्दुमेकं ततोऽपनीय तेषां कलशो दर्शितः। कीदृशः प्रागिदानीं च कलश इति च ते पृष्टाः। ततस्तैरुक्तम्-तादृशः एवायं कलशो जलपरिपूर्णो मनागप्यनीदृशो न भवतीति। एतच्छ्रुत्वा देवाभ्यामुक्तम्-भो राजन्, यथा जलबिन्दुरपगतोऽप्येतैर्न लक्ष्यते तथा भवद्रूपं मनाग्गतमपि न लक्ष्यते इति। ततश्चक्रवर्ती वैराग्यं गत्वा

---

3. चारित्र उद्योतनी कथा

भरत क्षेत्र में वीतशोकपुर में राजा अनन्तवीर्य राज्य करते थे। उनकी सीता नाम की महारानी थी। राजा के पुत्र चतुर्थ चक्रवर्ती सनत्कुमार थे, जो छह खण्ड पृथ्वी को अपने वश में करके नव निधि और चौदह रत्नों से युक्त हो परम विभूति के साथ राज्य करते हुए सुशोभित थे। इसी प्रसंग में सौधर्म इन्द्र अपनी सभा में पुरुष के रूप, गुण का वर्णन कर रहा था। देवों ने पूछा हे प्रभो! इस भरतक्षेत्र में क्या किसी का भी ऐसा विशिष्ट रूप है अथवा नहीं। इन्द्र ने कहा सनत्कुमार चक्रवर्ती का जैसा रूप है, वैसा देवताओं का भी संभव नहीं। यह सुनकर मणिमाल और रत्नचूल नाम के देव उनके रूप को देखने के लिए आये। उन्होंने चक्रवर्ती को क्रीड़ा सरोवर में डूबा हुआ देखा। चक्रवर्ती के सर्व अवयव सहज ही अति अद्भुत, चित्त को चमत्कार करने वाले दिव्य रूप थे। जिसे देखकर शिर को कम्पायमान करते हुए उन देवों को कहना पड़ा अहो! देवों का भी इस प्रकार का रूप संभव नहीं ऐसा कहकर सिंह द्वार पर असली रूप प्रकटकर उन्होंने पहरेदार से कहा - हे प्रतीहार! चक्रवर्ती से कहो, आपके रूप को देखने के लिए स्वर्ग से दो देव आये हैं। यह समाचार सुनकर चक्रवर्ती शृंगार करके सिंहासन पर विराजमान हुए और देवों को बुलाने के लिए कहा। दोनों देवताओं ने आकर जब चक्रवर्ती का रूप देखा तो खेद प्रकट किया- हा, कितने कष्ट की बात है कि जैसा रूप पहले पानी में प्रछन्न अवस्था में देखा, वैसा रूप इस समय नहीं है, ठीक ही है, यह शरीर नश्वर है। यह सब सुनकर पहले के रूप और इस समय के रूप में मुझे कोई अन्तर नहीं दिखता, इस प्रकार मण्डन करने वाले राजा के सेवकों ने देवों से कहा। यह सुनकर दोनों स्थितियों में अन्तर की प्रतीति के लिए एक जल से भरा हुआ कलशा सेवकों से राजा को दिखलाया तत्पश्चात् कलशा बाहर लाया गया और तृण की शलाका से एक बूँद कम करके पुनः राजा के पास भेजा। दोनों देवों ने राजा से पूछा क्या यह कलशा पहले

देवकुमारपुत्राय राज्यं दत्वा त्रिगुप्तमुनिपार्श्वे तपो गृहीत्वा उग्रोग्रतपः कुर्वतः पञ्चप्रकारं चारित्रमनुतिष्ठतो विरुद्धाहारसेवनात्सर्वस्मिन् शरीरे कण्डूप्रभृतयोऽनेकरोगाः समुत्पन्नाः। तथाप्यसौ शरीरेऽतिनिस्स्पृहत्वाच्छरीर-चिन्तामकुर्वन्नुत्तमं चारित्रमेवानु-तिष्ठति। सौधर्मेन्द्रश्च निजसभायां पञ्चप्रकारं चारित्रं व्याचक्षाणो मदनकेतुदेवेन पृष्टः-देव,भरतक्षेत्रे उक्तप्रकारचारित्रस्यानुष्ठाता किं कोऽप्यस्ति न वेति। ततस्तेनोक्तम्-सनत्कुमारचक्रवर्ती षट्खण्डपृथ्वीं त्यक्त्वा शरीरादावतिनिस्स्पृहो भूत्वा तदनुष्ठाता तिष्ठतीति। एतदाकर्ण्य मदनकेतुदेवेन चात्रागत्य महाटव्यामनेकव्याध्यभिभूतशरीरं सनत्कुमारमुनिं दुर्धरमनेकप्रकारं चारित्रमनुतिष्ठन्तमालोक्य शरीरादौ निःस्पृहत्वगुणं तदीयं परीक्षितुं वैद्यरूपं धृत्वा समस्तव्याधीन् स्फेटयित्वा नीरोगं दिव्यं शरीरं करोमीति मुहुर्मुहुर्ब्रुवाणो भगवतोऽग्रे पुनःपुनरितस्ततो गच्छन् भगवता पृष्टः-कस्त्वम्, किमर्थं चात्र निर्जनप्रदेशे फूत्कारं करोषीति। ततस्तेनोक्तम्-वैद्योऽहं भवतां समस्तव्याधिमपनीय सुवर्णशलाकासदृशं शरीरं करोमीति। भगवतोक्तम्-यदि त्वं व्याधिं स्फेटयसि तदा संसारव्याधिं मे स्फेटयेत्याकर्ण्य तेनोक्तम्-नाहं तत्स्फेटने समर्थः, तत्रभवन्त एव समर्थाः। अहं तु शरीरव्याधि-मात्रस्फेटन एव समर्थ इति। भगवतोक्तम्-किमशुचौ निर्गुणे अशाश्वते शरीरे व्याधिस्फेटनेन। तत्स्फेटने हि न किंचिद्वैद्यान्वेषणेन निष्ठीवनसंपर्कमात्रेणापि तस्य स्फेटयितुं शक्यत्वादित्युक्त्वा निष्ठीवनसंस्पर्शमात्रेण

की तरह है या कुछ अन्तर है। तब चक्रवर्ती और सेवकों ने कहा - यह कलश तो पहले की तरह ही जल से परिपूर्ण है, किंचित् भी अन्तर नहीं है। यह सुनकर देवों ने कहा हे राजन्! जिस प्रकार एक जल की बूँद निकाल लेने पर आपको ज्ञात नहीं हुआ उसी प्रकार आपके रूप की कमी आपको ज्ञात नहीं होती। यह समझकर चक्रवर्ती को वैराग्य उत्पन्न हुआ और अपने पुत्र देवकुमार को राज्य देकर त्रिगुप्त मुनि के निकट तप को ग्रहण कर उग्र से उग्र तप करने लगे। वे सदा पाँच प्रकार के चरित्र का अनुष्ठान करने में संलग्न रहते। एक बार विरुद्ध आहार के सेवन से उनके शरीर के अंग-अंग में कोढ़ के अतिरिक्त और भी अनेक रोग उत्पन्न हो गए। फिर भी वे शरीर के प्रति अति निस्पृहता धारण करते हुए शरीर की चिन्ता न करते हुए चारित्र का अनुष्ठान करते थे। एक बार पुनः सौधर्म इन्द्र अपनी सभा में पाँच प्रकार के चारित्र का वर्णन कर रहे थे, तभी मदनकेतु देव ने पूछा - हे प्रभो! क्या इस भरतक्षेत्र में इस प्रकार के चारित्र का अनुष्ठान करने वाला कोई है या नहीं? तब सौधर्म इन्द्र ने कहा - सनत्कुमार चक्रवर्ती छह खण्ड पृथ्वी को छोड़कर शरीर आदि से अति निस्पृह होकर इस प्रकार के चारित्र का अनुष्ठान करते हुए सुशोभित हैं, यह बात सुनकर मदनकेतु देव जहाँ सनत्कुमार मुनि तपश्चर्या करते थे वहीं आ गया। उस महा अटवी में अनेक प्रकार की व्याधियों से भरे हुए शरीर को तथा अनेक प्रकार के दुर्धर चारित्र का अनुष्ठान करते हुए सनत्कुमार मुनि को देखा। उनके शरीर आदि के प्रति निस्पृह गुण की परीक्षा करने के लिए उस देव ने वैद्य का रूप धारण किया वह मुनि भगवन्त के इर्द गिर्द बार-बार आता और कहता मैं समस्त रोगों का नाश कर शरीर को दिव्य कर देता हूँ। तब भगवन्त देव ने पूछा - तुम कौन हो, किसलिए तुम इस निर्जन वन में बोलते हुए फिरते रहते हो। उस देव ने कहा - मैं वैद्य हूँ, मैं आपकी समस्त व्याधियाँ मिटाकर आपके शरीर को स्वर्ण शलाका के समान सुन्दर बना सकता हूँ। भगवन्त मुनि ने कहा - यदि तुम व्याधि नाश करते हो तो मेरी संसार व्याधि का नाश कर दो, यह सुनकर देव ने कहा - मैं इस व्याधि का नाश करने में समर्थ नहीं हूँ, इसके लिए तो आप ही समर्थ हैं। मैं तो केवल शरीर की व्याधि मात्र नाश करने में समर्थ हूँ। भगवन्त मुनि ने कहा - इस अपवित्र, गुणरहित, नाशवान शरीर से व्याधि दूर हो जाने से क्या? अरे भाई! इन व्याधियों के नाश के लिए किसी वैद्य को खोजने की आवश्यकता ही क्या? यह तो निष्ठीवन (थूक) के संपर्क मात्र से ही दूर हो सकती है, ऐसा

बहुव्याधिमपनीय सुवर्णशलाकातुल्यो बाहुस्तस्य दर्शितस्ततस्तेन मायामुपसंहृत्य प्रणम्य चोक्तम्-भगवन्यादृशं त्वदीयं शरीरादौ परमनिस्स्पृहत्वेन विशिष्टचारित्रानुष्ठानं निजसभायां सौधर्मेन्द्रेण व्यावर्णितं तादृशमेवेदमिहागत्य मया दृष्टमतो धन्यस्त्वम्, मनुष्यजन्म तवैव सफलमिति प्रशस्य प्रणम्य च मदनकेतुदेवः स्वर्गं गतः। सनत्कुमारमुनिस्तु परमवैराग्यात्पञ्चविधपरमचारित्रानुष्ठानेन चारित्रस्योद्द्योतनादिकं कृत्वा घातिकर्मक्षयं विधाय केवलमुत्पाद्य क्रमेणाघातिकर्मक्षयं कृत्वा मोक्षं गत इति।

4. समन्तभद्रस्वामिना च उभयोरुद्द्योतनं कृतमस्य कथा

दक्षिणकाञ्च्यां तर्कव्याकरणादिसमस्तशास्त्रव्याख्याता दुर्धरानेकानुष्ठानानुष्ठाता श्रीसमन्तभद्रस्वामी नाम महामुनिस्तीव्रतरदुःखप्रदप्रबलासद्वेद्यकर्मोदयात्समुत्पन्नभस्मकव्याधिना अहर्निशं संपीड्यमानश्चिन्तयति। अनेन व्याधिना पीड्यमाना वयं दर्शनस्योपकारं कर्तुमसमर्थाः। अतस्तदुपशमविधिः कश्चिदनुष्ठातव्यः। स च तदुपशमविधिः स्निग्धप्रवरप्रचुराहारोपयोगान्नान्यो भवितुमर्हतीति। तत्प्राप्तेश्चात्राभावात् यस्मिन्देशे यत्र स्थाने येन च लिङ्गेन तथाविधाहारप्राप्तिर्भवति तदाश्रयणीयमिति संप्रधार्य काञ्चीनगरीं परित्यज्य उत्तरापथाभिमुखो गच्छन् पुण्ड्रनगरे समायातः। तत्र च वन्दकानां बृहद्विहारे महासत्रशालां दृष्ट्वा अत्र मदीयभस्मकव्याधे-रुपशमो भविष्यतीति मत्वा वन्दकलिङ्गं धृतम्। तत्रापि तद्व्याध्युपशमहेतुभूतविशिष्टतराहारासंपत्तेस्ततो निर्गत्योत्तरापथाभिमुखो नानानगरग्रामान् पर्यटन् दशपुरनगरं प्राप्तः। तत्र च भगवतां महामठं विशिष्टदातृभिः परमभक्त्या प्रतिदिनं

कहकर महाराज ने थूक के सम्पर्क मात्र से बहुत रोगों को दूरकर स्वर्ण के समान चमकती हुई बाहु को दिखाया। यह देखकर उस देव ने अपने मायावी शरीर को पलटा और प्रणाम कर कहा - हे भगवन्! जैसा सौधर्म इन्द्र ने अपनी सभा में आपके विशिष्ट चारित्र अनुष्ठान, आपका शरीर के प्रति अत्यन्त निस्पृह भाव का वर्णन किया ठीक वैसा ही मैंने यहाँ आकर देखा। हे प्रभो! आप धन्य हैं। आपका ही मनुष्य जन्म सफल है। इस प्रकार बड़ी भक्ति के साथ भगवन्त मुनि को प्रणाम कर, वह मदनकेतु देव स्वर्ग चला गया। इधर सनत्कुमार मुनि ने परम वैराग्य को धारण करने से, पंच प्रकार के परम चारित्र का अनुष्ठान करने से चारित्र का प्रकाशन करके घाति कर्म का क्षय कर केवलज्ञान को प्राप्त किया तदुपरान्त क्रम से अघाति कर्मों का भी क्षय किया और मोक्ष गति को प्राप्त हुए।

4. समन्तभद्रस्वामी की कथा (जिन्होंने सम्यग्दर्शन एवं सम्यग्ज्ञान दोनों का उद्योतन किया।)

दक्षिण प्रान्त में काँची नगरी में तर्क, व्याकरण आदि समस्त शास्त्रों के व्याख्याता, अनेक प्रकार के दुर्धर चारित्र अनुष्ठान के अनुष्ठाता महामुनि श्री समन्तभद्रस्वामी थे। तीव्रतर घोर दुःख को देने वाली असाता वेदनीय कर्म के उदय से उन्हें भस्मक व्याधि नाम का रोग उत्पन्न हो गया। जिसकी पीड़ा से पीड़ित हो, वे दिन-रात चिन्तन करते कि इस व्याधि से पीड़ित होने के कारण मैं जिनदर्शन की सेवा करने में असमर्थ हूँ, इसलिए इस रोग के उपशम के लिए कुछ उपाय करना चाहिए। इस रोग की उपशम विधि तो स्निग्ध (चिक्कण), पौष्टिक, प्रचुर मात्रा में आहार ही है, अन्य कुछ नहीं। ऐसे आहार की प्राप्ति का यहाँ पर अभाव है। जिस देश में, जिस स्थान में, जिस किसी भी लिंग को अपनाकर ऐसे आहार की प्राप्ति होगी, उस आहार को मैं ग्रहण करूँगा, ऐसा मन में विचार कर काँची नगरी को छोड़ दिया और उत्तरापथ की ओर चल दिए, चलते हुए वे पुण्ड्र नगर में आये। वहाँ बौद्धों की बृहद् विहार में महादानशाला को देखकर मन में विचार किया कि यहाँ मेरी भस्मकव्याधि का उपशमन हो सकेगा ऐसा सोचकर बौद्ध भेष धारण कर लिया। वहाँ पर भी उस रोग के अनुकूल विशिष्ट अधिक आहार न मिलने पर वहाँ से निकलकर उत्तरापथ की ओर अनेक नगरों और ग्रामों में घूमते हुए दशपुर नगर पहुँचे। वहाँ पर वैष्णव भगवंतों के महामठ को देखा जहाँ विशिष्ट दाता लोग प्रतिदिन उत्कृष्ट भक्ति से विशिष्ट पुष्ट आहार

संपादितविशिष्टमृष्टाहारोप- भोक्तृदिव्यानेकभगवल्लिङ्गं समाकुलं दृष्ट्वा वन्दकलिङ्गं परित्यज्य भगवल्लिङ्गं धृतम्। तत्रापि भस्मकव्याध्युपशमविधायकस्य प्रचुरतरविशिष्टाहारासंप्राप्तेस्ततोऽपि निर्गत्य नानादिग्देशनगर ग्रामादीन्पर्यटन् वाणारस्यां गतः। तत्र च कुलघोषोपेतं[1] योगिलिङ्गं धृत्वा वाणारस्यां मध्ये पर्यटता शिवकोटि-महाराजाधिराजेन कारितं दिव्यशिवायतनं प्रचुरतराष्टादशभक्ष्यभोजननैवेद्यसमन्वितं दृष्ट्वा चिन्तितम्। अत्रास्मदीयभस्मक व्याधेरुपशमो भविष्यतीति। एतस्मिन्प्रस्तावे देवस्य पूजाविधानं कृत्वा नैवेद्यं बहिःक्षिप्यमाणं दृष्ट्वा हसित्वा भणितम्- किमत्र कस्यापि सामर्थ्यं नास्ति येन देवमत्रावतार्य राज्ञा परमभक्त्या संपादितं दिव्याहारं भोजयतीति। एतदाकर्ण्य तत्रत्यलोकैर्भणितम्- किं भवतो देवतामवतार्य भोजयितुं सामर्थ्यमस्ति येनेदं वदति भवान्। योगिना चोक्तमस्त्येव। ततस्तत्रत्यलोकै राज्ञः कथितम्- देव योगिनैकेन भवदीयदेवस्य पूजाविसर्जनसमये दिव्यं नैवेद्यं बहिः क्षिप्यमाणं दृष्ट्वा भणितम्- देवमहमत्रावतार्य एवंविधं दिव्याहारं भोजयामीति। एतदाकर्ण्य राजा संजातकौतुको दिव्यां रसवतीं दधिदुग्धघृतघटशतैः सहितां प्रचुरखण्डशर्कराइक्षुरसादिसमन्वितां गृहीत्वा समायातः। ततो योगी भणितः - भोजयतु भगवान् देवम्। एवं करोमीत्युक्त्वा तेन समस्तां रसवतीमन्तः प्रविश्य सर्वमन्तः परिशोध्य द्वारं दत्वा शीघ्रं तत्क्षणादेव भुक्त्वा द्वारमुद्घाट्य भणितम्-रसवतीभाजनानि बहिर्निःसार्यतामिति। ततो राज्ञो महत्याश्चर्ये सम्पन्ने प्रतिदिनमभिनवाम-धिकामधिकां विशिष्टां रसवतीं कारयित्वा प्रेषयत्यसौ। ततः

का दान करते। दान लेने वाले दिव्य अनेक भगवत् लिंग के साधु थे। यह देखकर उन्होंने बौद्ध भेष का त्याग कर वह भगवत् लिंग धारण कर लिया, वहाँ पर भी भस्मक व्याधि का उपशम हो सके, ऐसा विशिष्ट प्रचुर मात्रा में आहार उपलब्ध न हो सका। इसलिए वहाँ से निकलकर अनेक दिशाओं में अनेक देश, नगर, ग्राम आदि में भ्रमण कर वाराणसी आ पहुँचे। वहाँ कुलघोष से सहित योगी लिंग को धारण कर घूमने लगे। शिवकोटि महाराज ने शिव का एक विशाल मन्दिर बनवाया था। वह मन्दिर बहुत सुन्दर था। वहाँ उन्होंने प्रचुर मात्रा में अठारह प्रकार के भक्ष्य भोजन को नैवेद्य से युक्त देखा और विचार किया कि यहाँ मेरे रोग का उपशमन अवश्य होगा। यह सोच ही रहे थे कि कुछ लोग शिव की पूजा विधान करके बाहर आये और नैवेद्य को बाहर रख दिया, यह देखकर समन्तभद्र स्वामी हँसने लगे और बोले - क्या आप में से किसी के पास भी इतनी सामर्थ्य नहीं कि राजा के द्वारा परम भक्ति से भेजा हुआ आहार देवता को यहाँ अवतरित कर खिला सकें। यह सुनकर उपस्थित लोगों ने कहा - क्या आप देवता का आह्वान कर उसे भोजन करा सकते हैं? जैसा कि आप कहते हैं। योगी भेषधारी समन्तभद्र स्वामी ने कहा - हाँ, मैं ऐसा कर सकता हूँ। तब उन लोगों ने राजा को कहा कि हे प्रभो! आपके महादेव की पूजा विसर्जन के उपरान्त दिव्य नैवेद्य को जब हम लोग बाहर रख रहे थे तो उसे देखकर एक योगी ने कहा - मैं देव को यहाँ उतार कर यह सम्पूर्ण सुन्दर भोजन उसी को करा सकता हूँ। यह सुनकर राजा को कौतुक उत्पन्न हुआ।

दिव्य रसवान, दधि, दूध, घी के सैकड़ों घड़ों के साथ-साथ प्रचुर खण्ड, शक्कर, इक्षु रस आदि को लेकर वह राजा शिवमन्दिर आ पहुँचा। तब योगी से कहा - भगवान् देव को भोजन कराओ। अभी कराता हूँ, ऐसा कहकर समस्त रसवान पदार्थों को अन्दर ले जाकर, ठीक तरह से अन्दर से मन्दिर को देखकर, दरवाजा लगाकर, बहुत शीघ्र भोजन कर द्वार को खोल कर बाहर आ गए और कहा सभी बर्तनों को बाहर ले आओ जिससे राजा को महान् आश्चर्य उत्पन्न हुआ, जिससे वह प्रतिदिन और अधिक रसवान भोजन बनवाकर भेज देता। ऐसा करते हुए क्रमशः छह मास बीत गए, जिससे रोग का उपशम हो गया तथा आहार ज्यों का त्यों रखा रहा तब उन लोगों ने कहा हे योगीन्द्र! यह रसवान अन्न क्यों इसी प्रकार रखा है? तब योगी ने कहा भगवान् अब

1. कुलघोशे

षण्मासैर्भस्मकव्याधैः क्रमेणोपशमे संजाते प्रकृते आहारे स्थिते रसवती समस्ता तथैवोद्धियते। ततस्तत्रत्यलोकै र्भणितम्। भो भो योगीन्द्र, किमिति रसवती तथैवोद्धियते। तेनोक्तम्- भगवानिदानीं तृप्तस्तेन स्तोकमेव भुङ्क्ते। एतत्सर्वं तत्रत्यलोकै राज्ञो निवेदितम्। राज्ञा च निर्माल्येन प्रच्छाद्य प्रनालप्रदेशे धूर्तो माणवको धृतः। तेन च स योगी द्वारं दत्वा स्वयमेव भुञ्जानो दृष्टः। कथितं च राज्ञः। देव, योगी न किंचिद्देवमवतार्य भोजयति किंतु द्वारं दत्वा स्वयमेव भुङ्क्ते। इति एतदाकर्ण्य राज्ञा रुष्टेन [भणितम्]- भो योगिन्, मृषावादी त्वम्। न किंचिद्देवमवतार्य भोजयसि। किंतु द्वारं दत्वा स्वमेव भुङ्क्षे। देवस्य नमस्कारं च किमिति न करोषीति। एतदाकर्ण्य योगिनोक्तम्- मदीयनमस्कारमसौ सोढुं न शक्नोति। यो हि वीतरागोऽष्टादशदोषविवर्जितः स एव मदीयनमस्कारं सोढुं शक्नोति तेनाहमस्मै नमस्कारं न करोमि। यदि करोमि तदा स्फुटत्यसौ देवः। एतच्छ्रुत्वा राज्ञोक्तम्- यदि स्फुटत्यसौ तदा स्फुटतु कुरु नमस्कारम्। त्वदीयं सामर्थ्यं पश्यामः। ततो योगिनोक्तम्-प्रभाते सामर्थ्यमात्मीयं भवता दर्शयिष्यामः। ततो राज्ञा एवमस्त्वित्युक्त्वा योगिनं देवगृहमध्ये प्रक्षिप्य शतगुणपरिपाट्या सुभटैः हस्तिघटादिभिश्च देवगृहे महता यत्नेन रक्षितः। योगिनश्च अतिरभसान्मया अपरिभाव्योक्तं न विद्मः किमप्यत्र भविष्यतीत्याकुलितान्तःकरणस्य चिन्तयतो रात्रिप्रहरद्वये शासनदेवता अम्बिका आसनकम्पात्समागत्य प्रत्यक्षीभूता। ततस्तयोक्तम्- भगवन्मा चित्तमाकुलितं कुरु। यत्त्वयोक्तं तत्सर्वं 'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले' इत्यादिकं चतुर्विंशतितीर्थंकरदेवानां स्तुतिं कुर्वतः तत्संस्फुरिष्यतीत्युक्त्वा भगवन्तं समुद्धीर्य अदृश्या संजाता। भगवांश्च देवतादर्शनात्संजातपरमसंतोषश् चतुर्विंशतितीर्थकृतां स्तुतिं कृत्वा समुल्लसितचित्तो विकसितवदनकमलः परमानन्देन स्थितः। प्रभाते च राज्ञा

तृप्त हो गए इसलिए थोड़ा ही खाते हैं। यह सर्व वृत्तान्त उन लोगों ने जाकर राजा को बताया। राजा ने प्रनाल स्थान में (अर्थात् जहाँ से महादेव के अभिषेक का जल निकलता है वहाँ) एक धूर्त बालक को निर्माल्य द्रव्य से ढककर रख दिया। जब योगी ने दरवाजा लगाकर स्वयमेव ही भोजन किया तो उस बालक ने देख लिया और राजा से सब कह सुनाया कि हे प्रभो! वह योगी किसी देवता को उतारकर भोजन नहीं कराता किन्तु दरवाजा लगाकर स्वयं ही खाता है। इस प्रकार सब वृत्तान्त सुनकर राजा क्रोध से आग बबूला हो गया और योगी से बोला कि तुम झूठे हो, तुम किसी देवता को बुलाकर भोजन नहीं कराते किन्तु स्वयं दरवाजा लगाकर खाते हो। तुम देवता को नमस्कार भी नहीं करते, आखिर ऐसा क्यों ? यह सुनकर योगी ने कहा मेरा नमस्कार यह देव सहन नहीं कर सकता, जो वीतराग हो, अठारह दोषों से रहित हो, वह ही मेरा नमस्कार सहन करने में समर्थ हैं, इसलिए मैं इनको नमस्कार नहीं करता। यदि करता हूँ तो यह देव खण्ड-खण्ड हो जाएगा। यह सुनकर राजा ने कहा - यदि यह मूर्ति फटे तो फट जाये किन्तु तुम नमस्कार करो। मैं तुम्हारे सामर्थ्य को देखता हूँ। तब योगी ने कहा - कल सुबह मैं आपको अपनी सामर्थ्य दिखाऊँगा। ठीक है, ऐसा कहकर राजा ने योगी को देवगृह के बीच में रख दिया और मन्दिर में एक के बाद एक सैकड़ों योद्धाओं और हाथियों की टोली से बड़े यत्न के साथ सुरक्षित किया। मैंने बहुत शीघ्र ही बिना सोचे विचारे ऐसा कह डाला, मैं नहीं जानता कि अब क्या होगा? इस प्रकार की चिन्ता से योगी का अन्तःकरण व्याकुल था, तभी रात्रि के दूसरे पहर में शासन देवी अम्बिका का आसन कम्पायमान हुआ और वह आकर प्रकट हुई। शासन देवी ने कहा भगवन्! चित्त को व्याकुल मत करो। आपने जैसा कहा वैसा ही होगा। 'स्वयंभुवा भूत हितेन भूतले' इत्यादि चतुर्विंशति तीर्थंकर देवों की स्तुति करते हुए वह मूर्ति फट जायेगी, ऐसा कहकर योगी समन्तभद्र को चिन्ता से मुक्त कराके वह अदृश्य हो गयी।

देवी के दर्शन से उन्हें परम संतोष हुआ और चतुर्विंशति तीर्थंकर की स्तुति तैयार की जिससे उनका चित्त

कौतूहलेन समस्तलोकसहितेन आगत्य देवगृहद्वारमुद्घाट्य योगी बहिराकारितः। आगच्छंश्च प्रहृष्टचित्तो विकसितवदनकमलः प्रभाभारसमन्वितो महाप्रतापवांश्च दृष्टः। ततो राज्ञा चिन्तितम्- योगिनो अद्यापूर्वा मूर्तिर्वर्तते। ध्रुवं निर्वाहयिष्यति आत्मीयां प्रतिज्ञामिति। ततो राज्ञा भणितम्- भो भो योगीन्द्र, कुरु देवस्य नमस्कारं, पश्यामस्त्वदीयं सामर्थ्यमिति। ततो भगवता 'स्वयंभुवा भूतहितेन भूतले' इत्यादिका स्तुतिः कर्तुमारब्धा। तां च कुर्वतो अष्टमतीर्थकरस्य श्रीचन्द्रप्रभदेवस्य 'तमस्तमोऽरेरिव रश्मिभिन्नम्' इति स्तुतिवचनमुच्चारयतः स्फुटितं लिङ्गं निर्गता चतुर्मुखप्रतिमा जयकारश्च महान्संपन्नः। ततो राज्ञः सकललोकानां च महत्याश्चर्ये संजाते राज्ञोक्तम्- भो योगिन्, अत्यद्भुतसामार्थ्यसमन्वितो अव्यक्तलिङ्गिकः कस्त्वमिति। ततो भगवतोक्तम्-

काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं मलमलिनतनुर्लाम्बुशे पाण्डुपिण्डः
पुण्ड्रोड्रे शाक्यभिक्षुर्दशपुरनगरे मृष्टभोजी परिव्राट्।
वाणारस्यामभूवं शशधरधवलः पाण्डुराङ्गस्तपस्वी
राजन् यस्यास्ति शक्तिः स वदतु पुरतो जैननिर्ग्रन्थवादी॥ 1॥

और अधिक उल्लसित हो गया तथा मुख कमल खिल गया और वह परम आनन्द में स्थित हो गए। जब सुबह हुई। राजा कौतूहल के साथ सभी प्रजा जनों के साथ आया। देवगृह के द्वार को खोला और योगी को बाहर लाया गया। योगी को लाते हुए योगी का चित्त प्रसन्न था, योगी का मुख कमल सा विकसित था और शरीर प्रभायुक्त था, महा प्रताप झलक रहा था जिसे देखकर राजा को चिन्ता हुई योगी का शरीर आज तो और अपूर्वता लिए हुए है इससे स्पष्ट है कि यह अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह अवश्य करेंगे। इसलिए राजा ने कहा - हे योगीन्द्र! देवता को नमस्कार करो, मैं तुम्हारी सामर्थ्य को देखूँगा। तब भगवन् ने 'स्वयं भुवा भूत-हितेन भूतले' को आदि करके स्तुति करना प्रारम्भ किया। स्तुति करते हुए अष्टम तीर्थंकर श्री चन्द्रप्रभ भगवान् की स्तुति की तब 'तमस्तमोऽरेरिव रश्मि भिन्नम्', इस प्रकार स्तुति वचन का उच्चारण करते हुए वह शिव का लिंग फट गया और चार मुख की प्रतिमा निकल पड़ी। जय-जयकार होने लगी जिससे राजा और समस्त प्रजा को महान् आश्चर्य उत्पन्न हुआ। राजा ने कहा हे योगिन्! आप अद्भुत सामर्थ्य से युक्त हैं किन्तु आपका लिंग अव्यक्त है, आप कौन हैं? तब भगवन् ने कहा -

''मैं काँची में नग्न (दिगम्बर) साधु होकर रहा, लाम्बुश में मल से मलिन शरीर को पीत श्वेत बनाकर रहा, पुण्ड्र नगर में शाक्य भिक्षु, दशपुर नगर में मिष्ठभोजी परिव्राजक और वाराणसी में चन्द्रमा के समान सफेद और पीला सफेद शरीर बना तपस्वी बन कर रहा। राजन्! जिसकी शक्ति हो वह मेरे सामने आकर वाद करे, मैं जैन निर्ग्रन्थवादी हूँ।''

पहले मैंने पाटलिपुत्र नगर में भेरी बजाई इसके बाद मालव, सिन्धु, ठक्क देश, काञ्चीपुर में और वैदिश में वाद भेरी बजाई। तदुपरान्त करहाटक में बहुत बड़े-बड़े विद्वानों के साथ लोहा लिया, हे राजन्! मैं वाद करने

पूर्वं पाटलिपुत्रमध्यनगरे भेरी मया ताडिता
पश्चान्मालवसिन्धुठक्क विषये काञ्चीपुरे वैदुषे [वैदिशे]।
प्राप्तोऽहं करहाटकं बहुभटैर्विद्योत्कटैः संकटं
वादार्थी विचराम्यहं नरपतेः शार्दूलवत्क्रीडितम्॥ 2॥

इत्युक्त्वा कुलघोषवेषं परित्यज्य निर्ग्रन्थजैनलिङ्गं लघुपिच्छिकासमन्वितं प्रकाश्य एकान्तवादिनः सर्वाननेकान्तवादेन विनिर्जित्य जिनशासनप्रभावना कृता। अत्र च कुदेवानां नमस्काराकरणात्सम्यग्दर्शनमुद्द्योतितम्। सकलैकान्तवादिनिराकरणात्सम्यग्ज्ञानमिति। एतन्महाश्चर्यं दृष्ट्वा शिवकोटिमहाराजस्य अन्येषां च तत्रत्यलोकानां जैनदर्शने महती श्रद्धा परमविवेकः [च]संपन्नः। चारित्रमोहक्षयोपशमविशेषवशाच्च परमवैराग्यसंपत्तौ राज्यं परित्यज्य तपो गृहीत्वा सकलश्रुतमवगाह्य लोहाचार्यविरचितां चतुरशीतिसहस्रसंख्यामाराधनां मन्द-मत्यल्पायुःप्राण्याशयवशाद्ग्रन्थतः संक्षिप्य अर्थतोऽर्हे लिङ्गे इत्यादिचत्वारिंशत्सूत्रैः परिपूर्णामर्धतृतीयसहस्रसंख्यां मूलाराधनां कृतवानिति।।

5. अथ तपउद्द्योतकथा

यथा जम्बूद्वीपेऽपरविदेहे गन्धमालिनीविषये वीतशोकपुरे राजा वैजयन्तो, राज्ञी भव्यश्रीः, पुत्रौ संजयन्तजयन्तौ। एकदा वैजयन्तः पट्टहस्तिनो विद्युत्पातान्मरणमालोक्य वैराग्यं गत्वा पुत्राभ्यां राज्यं ददानस्ताभ्यां

के लिए शार्दूल के समान क्रीड़ा करता हुआ विचरण करता रहता हूँ। ऐसा कहकर उन्होंने कुल घोष वेष को छोड़कर निर्ग्रन्थ जैनलिंग को धारण कर लिया और लघु पिच्छिका से युक्त हो गए। इस प्रकार समस्त एकान्त वादियों को अनेकान्तवाद से जीतकर जिनशासन की प्रभावना की। यहाँ पर कुदेवों को नमस्कार नहीं करने से सम्यग्दर्शन को प्रकाशित किया और समस्त एकान्तवादियों का निराकरण कर सम्यग्ज्ञान का उद्योतन किया। इस प्रकार समन्तभद्र स्वामी द्वारा किए गए अद्भुत आश्चर्य को देखकर शिवकोटि महाराज को, प्रजाजनों को और उपस्थित लोगों को जैनदर्शन में महती श्रद्धा और परम विवेक उत्पन्न हुआ। शिवकोटि ने चारित्रमोह के क्षयोपशम विशेष से और परम वैराग्य सम्पत्ति से युक्त होने के कारण राज्य को छोड़कर तप को ग्रहण कर सकल श्रुत में अवगाहन कर लिया। लोहाचार्य के द्वारा विरचित चौरासी हजार श्लोक प्रमाण आराधना ग्रन्थ को मन्दबुद्धि, अल्पायु वाले प्राणियों पर अनुग्रह के आशय से ग्रन्थ को संक्षिप्त किया। अर्थ रूप से अर्ह, लिङ्ग इत्यादि चालीस सूत्रों (अध्यायों) में परिपूर्ण कर साढ़े तीन हजार श्लोक संख्या में मूलाराधना ग्रन्थ को तैयार किया।

5. तप उद्योतनी कथा,

जम्बूद्वीप में अपर (पश्चिम) विदेह में गन्धमालिनी देश में वीतशोकपुर में राजा वैजयन्त राज्य करता था। जिसकी रानी भव्यश्री थी। उनके दो पुत्र संजयन्त और जयन्त थे। एक बार राजा वैजयन्त का प्रधान हाथी बिजली के गिरने से मर गया, जिसे देखकर राजा को वैराग्य हो गया, जब राजा ने अपने दोनों पुत्रों को राज्य देना चाहा तो पुत्रों ने कहा – हे तात्! यदि यह राजपाट करना है तो फिर आप इसे क्यों त्यागते हो, इसलिए हम लोग भी इस त्यागे हुए राज्य को आजीवन ग्रहण नहीं करेंगे, ऐसा कहकर वैजयन्त नाम वाले संजयन्त के पुत्र के लिए

भणितः– तात, यदीदं सुन्दरं भवति तदा त्वया किमिति त्यज्यते। ततस्त्याज्यस्य राज्यस्यावयोर्विधाननिवृत्तिरस्तीत्युक्ते संजयन्तपुत्राय वैजयन्तनाम्ने राज्यं दत्वा त्रिभिरपि तपो गृहीतम्। पित्रा च विशिष्टं तपः कुर्वता घातिकर्मक्षयं कृत्वा केवलमुत्पादितम्। देवागमने जाते धरणेन्द्ररूपं विभूतिं च पश्यता जयन्तमुनिना निदानबन्धः कृतः। ईदृशं रूपं विभूतिश्च तपोमाहात्म्यान्मे भूयादिति। ततः कतिपयदिनैर्निदानवशाद्धरणेन्द्रो जातः। संजयन्तमुनिश्च दुर्धरतपसा पक्षमासोपवासादिना क्षुत्पिपासादिपरीषहैरातापनादिकायक्लेशेन क्षीणशरीरो महाटव्यामेकदा सूर्यप्रतिमायोगेन स्थितः। एतस्मिन्प्रस्तावे विद्युद्दंष्ट्रनाम्नो विद्याधरस्य मुनेरुपरि गच्छतो विमानं स्खलितम्। ततस्तेन विमानस्खलने किं कारणमिति संचिन्त्याधो अवलोकयता मुनिर्दृष्टः। तद्दर्शनात्संजातकोपेन मुनेरनेकप्रकार–उपसर्गे कृतेऽपि मुनिर्ध्यानान्न चलितः। ततो अतीव रुष्टेन विद्यासमर्थेनोच्चाल्य भरतक्षेत्रपूर्वदिग्विभागे सिंहवती करवती चामीकरवती कुसुमवती चन्द्रवेगा चेति पञ्चनदीसंगमे प्रक्षिप्तः। तद्देशवर्तिनश्च लोकाः सर्वेऽप्याकार्य भणिताः। अयं च राक्षसो भवतो भक्षयितुमायात इति मत्वा मार्यताम्। ततस्तैर्मिलित्वा दण्डपाषाणादिभिः कुट्यमानोऽपि शत्रुमित्रसमचित्तेन दुःसहोपसर्गं जित्वा घातिकर्मक्षयं च कृत्वा केवलमुत्पाद्य शेषकर्मक्षयं च कृत्वा मोक्षं गतः। निर्वाणपूजार्थं देवागमने जाते यो जयन्तमुनिर्धरणेन्द्रो जातस्तेनागतेन निजबन्धुशरीरं दृष्ट्वा मदीयबन्धोरेतैरुपसर्गः

राज्य देकर तीनों (पिता और दोनों पुत्र) ने तप ग्रहण कर लिया। पिता ने विशिष्ट तप करते हुए घातिया कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। उनके केवलज्ञान के अतिशय के लिए देवों का आगमन हुआ, तभी धरणेन्द्र की विभूति को देखकर जयन्त मुनि ने निदान बन्ध कर लिया कि मेरे तप के माहात्म्य से मुझको भी इसी धरणेन्द्र की सी विभूति प्राप्त हो, जिससे कुछ दिनों बाद मरणोपरान्त निदान के वश से वह धरणेन्द्र पद को प्राप्त हुआ। उधर संजयन्त मुनि पक्ष, मास आदि के उपवास द्वारा दुर्धर तप करते क्षुधा, पिपासा आदि परीषहों को सहते हुए आतापन आदि काय को क्लेश देने वाले तप करते जिससे उनका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। एक बार वे महा अटवी में सूर्य की ओर मुख करके प्रतिमायोग से स्थित थे। उसी समय विद्युद्दंष्ट्र नाम का विद्याधर विमान में मुनि के ऊपर से निकला तो विमान रुक गया। तब उसने सोचा कि विमान के रुकने का कारण क्या है? जब उसने नीचे देखा तो एक मुनि दिखाई पड़े। मुनि को देखकर उसे क्रोध उत्पन्न हुआ, जिससे वह उनके ऊपर अनेक प्रकार के उपसर्ग करने लगा किन्तु उपसर्ग करने पर भी मुनि ध्यान से चलायमान नहीं हुए। मुनि के अचल रहने से विद्याधर का क्रोध और बढ़ गया। उस क्रोध के कारण उसने विद्या बल से मुनि को उठाकर भरतक्षेत्र की पूर्व दिशा में सिंहवती, करवती, चामीकरवती, कुसुमवती और चन्द्रवेगा इन पाँच नदियों के संगम में डाल दिया। उसने देश के वासी सभी लोगों को बुलाकर कहा यह तो राक्षस है। आप सबको खाने के लिए आया है, अतः इसे मारना चाहिए। जिससे उन सबने मिलकर डण्डा, पत्थर आदि के द्वारा मुनि की खूब पिटाई की। इतना उपसर्ग होने पर भी शत्रु–मित्र में समभाव धारण करते हुए मुनि ने दुःसह उपसर्ग को जीत लिया और घातिया कर्म का क्षय कर केवलज्ञान उत्पन्न किया। तदुपरान्त शेष कर्मों का भी क्षय करके मोक्ष को प्राप्त हुए। जब निर्वाण पूजा के लिए देवों का आगमन हुआ तो जो जयन्त मुनि धरणेन्द्र हुए थे, वो भी आये, उन्होंने जब अपने भाई का शरीर देखा तो मेरे भाई पर उपसर्ग किया गया है, यह जानकर उसने क्रुद्ध होकर सभी लोगों को नागपाश से बाँध दिया। उन सब लोगों ने कहा – हे देव! हम लोग कुछ नहीं जानते यह सब विद्युद्दंष्ट्र ने किया है। यह सुनकर धरणेन्द्र ने कुपित हो नागपाश से उस विद्याधर को बाँधकर समुद्र में फेंक दिया और मारने लगा, यह देख दिवाकर नाम के

कृत इति ज्ञात्वा कुपितेन सर्वे लोका नागपाशैर्बद्धाः। तैश्चोक्तम्-देव वयं न किंचिज्जानीम एतत्सर्वं विद्युद्वंष्ट्र-विजृम्भितमित्याकर्ण्य कुपितो नागपाशेन तं बद्ध्वा समुद्रे निक्षिप्य मारयन् धरणेन्द्रोऽपि दिवाकरदेवनाम्ना महर्द्धिकदेवेन भणितः-किमनेन वराकेण मारितेन। चत्वारि भवान्तराणि। पूर्ववैरविरोधादनेनायं मारितः। धरणेन्द्रेणोक्तम्-पूर्ववैरविरोधमनयोर्मे कथय। ततो दिवाकरदेवः प्राह-जम्बूद्वीपभरतक्षेत्रे सिंहपुरनगरे राजा सिंहसेनो, राज्ञी रामदत्ता, मन्त्री श्रीभूतिः, सुघोषश्च। पद्मखण्डनगरे श्रेष्ठी सुमित्रो, भार्या सुमित्रा, पुत्रः [समुद्रदत्तः]। समुद्रदत्तो वाणिज्येन सिंहपुरे गतोऽनर्घ्यपञ्चरत्नानि श्रीभूतिमन्त्रिणः पार्श्वे धृत्वा परतीरं गतः। आगच्छतः स्फुटिते प्रोहणे निर्धनेन तेनागत्य रत्नानि श्रीभूतिर्याचितो रत्नलोभाद्ग्रहिलोऽयमित्युक्त्वा स्थितः। यत्कुर्वतः षण्मासेषु गतेषु रामदत्ताराज्ञ्या द्यूते श्रीभूतेर्मुद्रिकायज्ञोपवीते जिते। ततस्ते एवं साभिज्ञाने कृत्वा श्रीभूतिभार्यायाः श्रीदत्तायाः पार्श्वादानीय बहुरत्नमध्ये प्रक्षिप्य समुद्रदत्तस्य दर्शितानि। तेन चात्मीयेषु परिज्ञाय गृहीतेषु चोरनिग्रहेण श्रीभूतिर्निगृहीतो, मृत्वा भाण्डागारे सर्पो जातः। समुद्रदत्तश्च सुधर्माचार्यपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः। सुमित्रा च तन्माता तदीयार्तेन मृत्वा व्याघ्री जाता। तया च स मुनिर्भक्षितो मृत्वा सिंहसेनराज्ञः सिंहचन्द्रनामा पुत्रो जातः। सिंहसेनराजा च भाण्डागारं द्रष्टुमागतः श्रीभूतिचरसर्पेण भक्षितो मृत्वा शल्लकीवने हस्ती जातस्तेन सुघोषमन्त्रिणा च प्रभुमरणात्संजातकोपेन मन्त्राज्ञासामर्थ्यात्सर्पाकृष्टिं कृत्वा सर्वे सर्पा भणिताः। अग्निकुण्डे प्रवेशं कृत्वा

महर्द्धिक देव ने उनसे कहा - क्यों बेचारे को मारते हो। चार भव पहले के पूर्व वैर के विरोध से इसने उन संजयन्त को मारा है। तब धरणेन्द्र ने कहा पूर्व का वैर विरोध इन दोनों का किस प्रकार का है, मुझे बताओ। दिवाकर देव ने कहा - इसी जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र में एक सिंहपुर नामक नगर में राजा सिंहसेन था, जिसकी रानी रामदत्ता थी, राजा के मंत्री श्रीभूति और सुघोष थे तथा पद्मखण्ड नगर में सुमित्र नाम का श्रेष्ठी था, जिसकी पत्नी सुमित्रा थी और पुत्र समुद्रदत्त था। एक बार समुद्रदत्त व्यापार के लिए सिंहपुर गया तो अपने बहुमूल्य पाँच रत्नों को श्रीभूति मंत्री के पास रखकर परदेश चला गया। जब वह वापस आ रहा था तभी जहाज फट गया और वह निर्धन हो गया। समुद्रदत्त ने आकर श्रीभूति से अपने रत्न माँगे। रत्न के लोभ में यह पागल हो गया है, ऐसा कहते हुए छह मास बीत जाने पर रामदत्ता रानी ने द्यूत खेल में श्रीभूति की मुद्रिका और यज्ञोपवीत को जीत लिया। यह मुद्रिका उन्हीं की है, इस प्रकार पहचान करके श्रीभूति की पत्नी श्रीदत्ता ने रत्न दे दिए उनके पास से रत्न लाकर इनको और अधिक रत्नों के बीच में रख दिया तदुपरान्त समुद्रदत्त को दिखाया। उसने अपने रत्नों को जानकर ग्रहण कर लिया जिससे चोर पकड़ लिया और श्रीभूति को कारागार में डाल दिया गया। वह श्रीभूति मरकर भण्डार गृह में सर्प हुआ। समुद्रदत्त सुधर्माचार्य के पास जाकर धर्म ग्रहण कर मुनि हो गए। समुद्रदत्त की माता सुमित्रा, पुत्र के दुःख से मरकर व्याघ्री हुई। उस व्याघ्री ने एक बार मुनि का भक्षण कर लिया जिससे वह मुनि (समुद्रदत्त) मरकर उन्हीं सिंहसेन राजा के सिंहचन्द्र नाम का पुत्र हुआ। एक बार सिंहसेन राजा भाण्डागार देखने आये तो श्रीभूति का जीव जो सर्प हुआ था, उसने राजा को काट लिया। राजा मरकर शल्लकी वन में हाथी हुआ। अपने स्वामी का मरण हो जाने से सुघोष मन्त्री को क्रोध उत्पन्न हुआ। उसने अपनी मंत्र की आज्ञा के सामर्थ्य से सर्पों को निकट बुलाकर, सबसे कहा कि अग्निकुण्ड में प्रवेश करो, जिन्होंने यह अपराध नहीं किया, वे इस अग्निकुण्ड से निकल जायेंगे। ऐसा करने पर जो सर्प अपराध रहित थे, वे सब अग्निकुण्ड से निकल गए। श्रीभूति का जीव जो सर्प बना, उसने अपराध किया था, इसलिए वह रुका रहा। तब मंत्री ने उससे कहा - तू.या तो विष को छोड़ दे या अग्नि में प्रवेश कर। मैं अगन्धन कुल में उत्पन्न हुआ हूँ इसलिए विष नहीं छोडूँगा। इस क्रोध से वह अग्नि में

अकृतापराधा गच्छन्तु। तं कृत्वा येऽकृतापराधास्ते सर्वे गताः। कृतापराधे श्रीभूतिचरसर्पे स्थिते ततः सुघोषमन्त्रिणोक्तम्-विषं मुच्यतामग्निप्रवेशो वा क्रियतामिति। अगन्धनकुलोद्भूतोऽहं न विषं मुञ्चामीति तथा अग्निप्रवेशः कृतो मृत्वा शल्लकीवने कुर्कुटसर्पो जातः। रामदत्तया राज्ञ्या च निजपतिवियोगात्कनकश्रीक्षान्तिकापार्श्वे तपो गृहीतम्। सिंहचन्द्रेणापि निजपितृदुःखात्पूर्णचन्द्रस्य लघुभ्रातुः राज्यं दत्वा सुव्रतमुनेः पार्श्वे तपो गृहीतं च तपोमाहात्म्यान्मनःपर्ययज्ञानी चारणश्च जातः। रामदत्तया च तं तथाविधं मुनिं दृष्ट्वा प्रणम्य चोक्तम्-भगवन्मदीय एव कुक्षिर्धन्यो येन त्वं धृतोऽसीत्युक्त्वा मुने, पूर्णचन्द्रस्त्वदीयो भ्राता कदा धर्मं ग्रहीष्यतीति। भगवानाह- पश्य मातः संसारवैचित्र्यम्। सिंहसेनो राजा सर्पदष्टो मृत्वा शल्लकीवने हस्ती जातो मां दृष्ट्वा स मारयितुं धावन्मया भणितः। भो सिंहसेनराजन्नहं सिंहचन्द्रः पूर्वं तव प्राणवल्लभः पुत्रोऽभूवमिदानीं मारयसि लग्न इत्युक्ते जातिस्मरो जातो मम पादमूले प्रणम्याश्रुपातं कुर्वाणः स्थितः। केसरवतीनदीतीरे मया च विशिष्टं धर्मश्रवणं कृत्वा सम्यक्त्वं ग्राहितोऽणुव्रतानि च दत्तानि प्रतिपालयन् प्राशुकमाहारं पानीयं च गृह्णन्नवमोदर्यादिना कृशशरीरः केसरवतीनदीतीरे कर्दमे निमग्नः श्रीभूतिचरकुक्कुटसर्पेण तत्कुम्भस्थलारोहणं कृत्वा स खाद्यमानः संन्यासं कृत्वा पञ्चनमस्कारान् स्मरन्मृतः सहस्रारे श्रीधरनामा देवो जातः। कुर्कुटसर्पश्च पङ्कप्रभानरके गतः। हस्तिनो दन्तौ मुक्ताफलानि च सार्थवाहधनमित्रस्य वनराजभिल्लेन दत्तानि, तेन पूर्णचन्द्रराजस्य नीत्वा समर्पितानि। तेन दन्ताभ्यां निजपल्यङ्कस्य

प्रवेश कर गया और मरकर शल्लकी वन में कुक्कुट सर्प हुआ। उधर रामदत्ता रानी ने निज पति के वियोग से कनकश्री क्षान्तिका के पास तप ग्रहण कर लिया। सिंहचन्द्र ने भी अपने पिता के वियोग से दुखी होकर पूर्णचंद्र लघु भ्राता को राज्य देकर सुव्रत मुनि के पास तप ग्रहण किया। सिंहचन्द्र को तप के माहात्म्य से मनःपर्ययज्ञान और चारणऋद्धि उत्पन्न हुई। रामदत्ता रानी (जो कि आर्यिका हो गयी थी) ने अपने पुत्र को इस प्रकार मनःपर्यय ज्ञान का धारक मुनि देखा तो नमस्कार कर कहा - हे भगवन् ! मेरी कोख धन्य हो गयी जिसने आप जैसे पुत्र को धारण किया ऐसा कहकर पुनः पूछा - हे मुने! पूर्णचन्द्र आपका भाई है। वह कब धर्म को ग्रहण करेगा। तब भगवान् ने कहा - माता; संसार की विचित्रता तो देखो। सिंहसेन राजा सर्प के काटने से मरकर शल्लकी वन में हाथी हुए। वह मुझे देखकर मारने के लिए दौड़ा तब मैंने कहा - हे सिंहसेन राजन्! मैं सिंहचन्द्र हूँ, पूर्व जन्म में मैं आपका प्राणों से भी प्यारा पुत्र था, अब आप मुझे मारना चाहते हैं। ऐसा कहने पर हाथी को जातिस्मरण हो आया और मेरे पादमूल में प्रणाम कर बैठ गया। आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। केसरवती नदी के किनारे मेरे द्वारा विशिष्ट धर्म श्रवण करके उसने सम्यक्त्व ग्रहण कर लिया और अणुव्रतों का पालन करने लगा। अणुव्रत पालन करते हुए वह प्रासुक आहार तथा पानी ग्रहण करता, जिससे उसका शरीर अवमौदर्य आदि के कारण कृश हो गया। एक बार वह उसी केसरवती नदी के किनारे कीचड़ में फँस गया। श्रीभूति का जीव जो कुक्कुट सर्प हुआ था, वह हाथी के कुम्भस्थल पर चढ़कर खाने लगा। हाथी संन्यास धारण कर पंचनमस्कार मंत्र का स्मरण करता हुआ मरण को प्राप्त हुआ और सहस्रार स्वर्ग में श्रीधर नाम का देव हुआ। कुक्कुट सर्प मरकर पंकप्रभा नरक में गया। उस हाथी के दाँत और मुक्ताफल (मोती) वनराज भील ने साहूकार धनमित्र को दे दिए। उस साहूकार ने दाँतों और मोती को पूर्णचन्द्र राजा को समर्पित कर दिए राजा ने तो अपने दाँतों से तो पलंग के पाये बनवाये और मुक्ताफल से अपनी रानी के लिए हार बनवाया। इस प्रकार यह संसार की स्थिति जानकर पूर्णचन्द्र से कहो, जिससे वह जिनधर्म ग्रहण कर ले, ऐसा कहने पर माता अपने स्वामी की दुःख परम्परा को सुनकर हृदय से रोती हुई गद्गद् वचनों के अश्रुपात करती हुई अपने पुत्र के पास गयी। पूर्णचन्द्र ने अपनी माता को देखकर

पादाः कारिताः मुक्ताफलैर्निजराज्ञीहारः कारितः। एवंविधां संसारस्थितिं मातः पूर्णचन्द्रस्य गत्वा कथय येनासौ जिनधर्मं गृह्णातीत्युक्ते निजनाथस्य दुःखपरंपरां श्रुत्वा गद्गरितहृदया गद्गदवचना अश्रुपातं कुर्वती निजपुत्रपार्श्वे गता। पूर्णचन्द्रस्य निजमातरं दृष्ट्वा पल्यङ्कादुत्थाय प्रणामं कुर्वतो मात्रा सर्वं कथितम्-यथा त्वत्पिता सर्पदष्टो मृत्वा हस्ती जातः। सर्पोऽपि मृत्वा कुर्कुटसर्पो जातः। तेन च स हस्ती कर्दमे निमग्नः पुनर्मारितः। तदीयदन्तौ मुक्ताफलानि चानीय धनमित्रश्रेष्ठिना ते समर्पितानि। एते पल्यङ्कपादास्तदीयदन्तमयाः। अयं च हारस्तदीयमुक्ता-फलमय इत्याकर्ण्योत्पन्नदुःखसंजातशोकः पल्यङ्कपादमालिङ्ग्य फूत्कारं कृत्वा शिरो विहन्य तेन समस्तान्तःपुरेण परिजनेन च रोदनं कृतम्। पुष्पधूपैः पूजां कृत्वा मुक्ताफलानां पल्यङ्कपादानां च संस्कारः कृतः। पूर्णचन्द्रोऽप्युत्पन्न-वैराग्यो विशिष्टं सागारधर्मं प्रतिपाल्य महाशुक्रे देवो जातः। रामदत्तार्यिकापि तत्रैव देवो जातः। सिंहचन्द्रोऽप्युग्रोग्रं तपः कृत्वा उपरिमग्रैवेयके देवो जातः। जम्बूद्वीपे भरते विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां धरणितिलकपुरेऽतिवेगो राजा, राज्ञी सुलक्ष्मणा, रामदत्ताचरो देवस्तयोः पुत्री श्रीधरानामा जाता। अलकानगर्यां विद्याधराधिपतेरादर्शकनाम्नः सा दत्ता। पूर्णचन्द्रः स्वर्गादवतीर्य श्रीधरायाः पुत्री यशोधरा जाता। सा सूर्याभपुरे, सुरावर्तराजस्य दत्ता। सिंहसेनराजापि गजो भूत्वा यो देवो जातः स तयोः पुत्रो रश्मिवेगनामा जातः। कतिपयदिनैस्तस्मै राज्यं दत्वा सुरावर्तराजो मुनिर्जातो यशोधराप्यार्यिका जाता श्रीधरापि पुत्रीस्नेहादार्यिका जाता। रश्मिवेगोऽप्येकदा सिद्धकूटचैत्यालये वन्दनाभक्त्यर्थं गतस्तत्र हरिचन्द्रभट्टारकपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः। स एकदा वनगुहायां कायोत्सर्गेण स्थितो

पलंग से उठकर प्रणाम किया, तब माता ने सर्व वृत्तान्त कह सुनाया कि तुम्हारा पिता सर्प के काटने से हाथी हुआ तथा वह मरकर कुक्कुट सर्प हुआ। उस सर्प ने हाथी को कीचड़ में फँस जाने से पुनः मार डाला। उस हाथी के मोती दाँत ही धनमित्र सेठ ने लाकर समर्पित किए। ये पलंग के पाये उन्हीं दाँतों के बने हैं और यह हार उन्हीं मोतियों का बना है, अपने पिता की इस प्रकार कहानी सुनकर पूर्णचन्द्र को बहुत दुःख हुआ और शोक मग्न हो गया। वह पलंग के पायों का आलिंगन कर जोर-जोर से चिल्लाने लगा तथा शिर पटकने लगा। जिससे सभी अन्तःपुर के तथा परिवार के लोग भी रोने लगे। तदुपरान्त पलंग के पायों की और मोतियों की पुष्प, धूप आदि से पूजा करके उनका संस्कार कर दिया। पूर्णचन्द्र को भी वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने सागारधर्म का परिपालन कर महाशुक्र स्वर्ग में देव पर्याय प्राप्त की। रामदत्ता आर्यिका भी उसी स्वर्ग में देव हुई। उधर सिंहचन्द्र मुनि घोर से घोर तप करके उपरिम ग्रैवेयक में देव हुए। जम्बूद्वीप में भरतक्षेत्र में विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में धरणितिलकपुर का राजा अतिवेग था, जिसकी रानी सुलक्ष्मणा थी। रामदत्ता आर्यिका जो कि देव हुई थी, वह राजा के श्रीधर नाम की पुत्री हुई। अलकानगरी में आदर्शक नाम के विद्याधर अधिपति को वह पुत्री दे दी गयी। पूर्णचन्द्र स्वर्ग से अवतरित होकर श्रीधरा रानी की पुत्री यशोधरा हुई। वह यशोधरा सूर्याभपुर में सुरावर्त राजा को दी गयी। सिंहसेन राजा भी हाथी होकर देव हुआ था, वह उन्हीं दोनों का रश्मिवेग नाम का पुत्र हुआ। कुछ दिनों बाद सुरावर्त राजा रश्मिवेग को राज्य सौंपकर मुनि हो गए और यशोधरा भी आर्यिका हो गयी, श्रीधरा भी पुत्र के स्नेह से आर्यिका हुई। एक बार रश्मिवेग सिद्धकूट चैत्यालय में वन्दना भक्ति करने के लिए गए। वहाँ हरिश्चन्द्र भट्टारक के समीप धर्म को सुनकर मुनि हुए। एक बार वे वन की गुफा में कायोत्सर्ग से स्थित थे, उनका शरीर दुर्धर तप के अनुष्ठान से अत्यन्त कृश हो गया था। यशोधरा और श्रीधरा आर्यिकाओं ने जब मुनि को देखा तो यशोधरा पुत्र स्नेह से तथा श्रीधरा दौहित्र (पुत्री का पुत्र) के स्नेह से भक्ति वश मुनि के समीप बैठ गयी। उसी समय जो कुक्कुट सर्प मरकर नरक गया था, वह उसी वन में भयंकर अजगर हुआ। वह अजगर अपनी विष अग्नि से जंगल को जलाता हुआ,

दुर्धरतपोऽनुष्ठानेनातीव कृशशरीरो यशोधराश्रीधरार्यिकाभ्यां दृष्टः। पुत्रदौहित्रस्नेहाद्भक्तिवशाच्च तत्समीपे ते उपविष्टे। एतस्मिन्प्रस्तावे यः कुक्कुटसर्पो मृत्वा नरके गतः स तत्र वने महानजगरो जातो विषाग्निना काननं प्रज्वालयन्तं रौद्रं फूत्कारं मुञ्चन्तं गुहाभिमुखमागच्छन्तं तं दृष्ट्वा संन्यासं गृहीत्वा ते अपि कायोत्सर्गेण स्थिते। तेन चागत्य मुनिस्ते च भक्षिते च मृत्वा कापिष्ठस्वर्गे रश्मिवेगो मुनिरादित्यप्रभो नाम देवो जातः। श्रीधरा चन्द्रचूलदेवो यशोधरा रत्नचूलदेवस्तत्रैव जातः। अजगरश्चतुर्थनरके गतः। चक्रपुरे राजा अपराजितो, राज्ञी सुन्दरी, सिंहचन्द्र उपरिमग्रैवेयकादवतीर्य तयोः पुत्रश्चक्रायुधनामा जातः। तस्मै राज्यं दत्वा अपराजितो मुनिर्जातः। तस्य राज्यं कुर्वतश्चित्रमाला राज्ञी कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य आदित्यप्रभदेवो वज्रायुधनामा पुत्रो जातः। भूतिलकनगरे राजा आदित्यप्रभो, राज्ञी प्रियकारिणी कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य चन्द्रचूलदेवो रत्नमाला पुत्री तयोर्जाता। वज्रायुधेन परिणीता। रत्नचूलदेवः कापिष्ठस्वर्गादवतीर्य रत्नायुधनामा तस्याः पुत्रो जातः। तस्मै राज्यं दत्वा वज्रायुधोऽपि निजपितुरपराजितस्य पादमूले मुनिर्जातः। रत्नायुधोऽपि कतिपयदिनैर्मुनिर्जातो रत्नमालया पुत्रस्नेहात्तपो गृहीतम्। तपः कृत्वा माता पुत्रश्चाच्युते देवो जातः [देवौ जातौ]। अजगरः पङ्कप्रभानरकान्निःसृत्य दारुणनाम्नो भिल्लस्य मृगी-भार्यायामतिदारुणनामा पुत्रो जातः। तेन च प्रियङ्गुपर्वते कायोत्सर्गेण स्थितो बाणेन विद्धो वज्रायुधमुनिर्मारितः सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नः। अतिदारुणभिल्लोऽपि मृत्वा सप्तमनरकं गतः। धातकीषण्डे पूर्वविदेहे गन्धिलाविषये अवध्यानगर्यां राजा अर्हद्दासो, राज्ञी जिनदत्ता सुव्रता च, रत्नमालदेवोऽच्युतादागत्य सुव्रतायां विजयो नामा

रौद्र फूंकार छोड़ता हुआ, उस गुफा के अभिमुख आ गया, जिसे देखकर संन्यास ग्रहण कर वे दोनों आर्यिका भी कायोत्सर्ग से स्थित हो गयी। उस अजगर ने आकर मुनि तथा दोनों आर्यिका का भक्षण कर लिया। जिससे रश्मिवेग मुनि मरकर कापिष्ठ स्वर्ग में आदित्यप्रभ नाम के देव हुए। श्रीधरा उसी स्वर्ग में चन्द्रचूल देव तथा यशोधरा रत्नचूल देव हुई। अजगर मरकर चतुर्थ नरक में गया। चक्रपुर नगर का राजा अपराजित था। उनकी सुन्दरी रानी थी। सिंहचन्द्र का जीव उपरिम ग्रैवेयक से अवतरित होकर उनके चक्रायुध नाम के पुत्र हुए। अपराजित राजा पुत्र के लिए राज्य देकर मुनि हो गए। चक्रायुध के राज्य करते हुए चित्रमाला रानी से कापिष्ठ स्वर्ग से अवतीर्ण होकर आदित्यप्रभ देव वज्रायुध नाम का पुत्र हुआ। भूतिलक नगर के राजा आदित्यप्रभ थे, उनकी रानी प्रियकारिणी थी। कापिष्ठ स्वर्ग से अवतरित होकर चन्द्रचूल रत्नमाला नाम की उन दोनों की पुत्री हुई। रत्नमाला का विवाह वज्रायुध से हुआ। रत्नचूल देव कापिष्ठ स्वर्ग से अवतरित होकर रत्नायुध नाम का वज्रायुध का पुत्र हुआ। वज्रायुध रत्नायुध को राज्य देकर अपने पिता मुनि अपराजित के पादमूल में मुनि हो गए। रत्नायुध भी कुछ दिनों के बाद मुनि हुए। रत्नमाला ने पुत्र के स्नेह से तप ग्रहण कर लिया। तप करके माता और पुत्र दोनों अच्युत स्वर्ग में देव हुए। अजगर पंकप्रभा नरक से निकल कर दारुण नामक भील एवं मृगी पत्नी के अतिदारुण नाम का पुत्र हुआ। उस अतिदारुण भील ने प्रियंगु पर्वत पर कायोत्सर्ग से स्थित वज्रायुध मुनि को बाण से भेद कर मार दिया। मुनि मरकर सर्वार्थ सिद्धि में उत्पन्न हुए। अतिदारुण भील भी मरकर सप्तम नरक में गया। धातकीखण्ड के पूर्व विदेह में गन्धिला देश की अवध्या नगरी में राजा अर्हद्दास था, जिसकी दो रानियाँ जिनदत्ता और सुव्रता थीं। रत्नमाला देव अच्युत स्वर्ग से आकर सुव्रता रानी के विजय नाम का बलभद्र पुत्र हुआ। रत्नायुध देव भी अच्युत स्वर्ग से आकर जिनदत्ता रानी के विभीषण नाम का पुत्र हुआ, जो वासुदेव था। विभीषण (मरण कर) शर्करा प्रभा नरक में गया और विजय, लान्तव स्वर्ग में उत्पन्न हो, मैं आदित्याभ देव हुआ। जम्बूद्वीप में ऐरावत क्षेत्र में अवध्या नगर का राजा श्रीवर्मा था, रानी सीमा थी, विभीषण इन दोनों के लक्ष्मीधाम नाम का पुत्र

बलभद्रः पुत्रो जातः। रत्नायुधेदेवोऽप्यच्युतादागत्य जिनदत्तायां विभीषणो नाम वासुदेवः पुत्रो जातः। विभीषणः शर्कराप्रभायां गतः। विजयो लान्तवेऽहमादित्याभो देवो जातः। जम्बूद्वीपे ऐरावतेऽवध्यायां राजा श्रीवर्मो, राज्ञी सीमा, विभीषणस्तयोर्लक्ष्मीधामनामा पुत्रो जातो मया संबोधितः। तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो जातः। वज्रायुधः सर्वार्थसिद्धेश्च्युत्वा संजयन्तमुनिर्जातः। ब्रह्मस्वर्गाच्च्युत्वा जयन्तमुनिर्निदानाद्धरणेन्द्रो जातः। अतिदारुणभिल्लोऽपि नरकान्निःसृत्य बहुदुःखानि सहमानस्तिर्यग्योनौ परिभ्रम्य ऐरावतक्षेत्रे वेगवतीनदीतीरे भूतरमणकानने गोशृङ्गतापसेन शङ्खिनीतापस्यां हरिणशृङ्गनामा पुत्रो जातः। पञ्चाग्निसाधनादिकं कृत्वा मृत्वा नभस्तलवल्लभपुरे राजा वज्रदंष्ट्रो राज्ञी विद्युत्प्रभा तयोः पुत्रो विद्युद्दंष्ट्रनामा जातः। तेन पूर्ववैरविरोधात्कृतोपसर्गः संजयन्तमुनिस्तपस उद्द्योतनादिकं कृत्वा मोक्षं गतः। एवंविधां संसारस्थितिं ज्ञात्वास्योपरि कोपं परित्यज्य नागपाशबन्धनं मुच्यताम्। एतदाकर्ण्य धरणेन्द्रेणोक्तम्-भो आदित्याभ, यद्यपि मुच्यते लग्नोऽयं तथाप्यस्य महामुनेरुपसर्गकारिणो दर्पशातनः शापो दीयते। अस्य कुले विद्यासिद्धिः पुरुषाणां माभूत्, स्त्रीणां तु संजयन्तप्रतिमाग्रे आराधनं कुर्वाणानां स्यादिति।

6. सम्यक्त्वमध्ये प्रथम-अङ्गस्य कथा

इहैव भरतक्षेत्रे भूमितिलकनगरे नरपालो नाम राजा, गुणमाला महादेवी, श्रेष्ठी सुनन्दो, भार्या सुनन्दा। अनयोः सप्तमः पुत्रो धन्वन्तरिः तथा तस्यैव पुरोहितः सोमशर्मा, भार्या अग्निला, तयोः सप्तमः पुत्रो विश्वानुलोमनामा। तौ द्वावपि बाल्यवयसौ सप्तव्यसनाभिभूतौ बहुशः परद्रव्यं हृतवन्तौ। अतो अन्यदा राज्ञा निजदेशान्निस्सारितौ।

हुआ। मैंने (आदित्याभदेव ने) इस पुत्र को सम्बोधित किया, जिससे तप करके यह ब्रह्मस्वर्ग में देव हुआ। वज्रायुध सर्वार्थसिद्धि से च्युत होकर संजयन्त मुनि हुए। ब्रह्मस्वर्ग से च्युत होकर जयन्त मुनि निदान करने से धरणेन्द्र हुए। अतिदारुण भील भी नरक से निकलकर बहुत दुःखों को सहन करता हुआ। तिर्यञ्च योनि में परिभ्रमण करके ऐरावत क्षेत्र में वेगवती नदी के किनारे भूतरमण जंगल में गोशृंग तापस के शंखिनी तापसी से हरिणशृंग नाम का पुत्र हुआ। पंचाग्नि तप आदि करके मरण प्राप्त कर नभस्थल वल्लभपुर के राजा वज्रदंष्ट्र की रानी विद्युत्प्रभा से विद्युदंष्ट्र नाम का पुत्र हुआ। इसने ही पूर्व वैर के विरोध से उपसर्ग किया और संजयन्त मुनि तप का उद्योतन आदि करके मोक्ष गए। इस प्रकार तुम संसार की स्थिति को जानकर इस विद्युद्दंष्ट्र के प्रति क्रोध छोड़कर इसको नागपाश के बन्धन से मुक्त करो। यह सर्व वृत्तान्त सुनकर धरणेन्द्र ने कहा - भो आदित्याभ! (दिवाकर देव!) यद्यपि मैं इसे छोड़ देता हूँ फिर भी महामुनि पर उपसर्ग करने से इसके दर्प का नाश करने के लिए मैं इसे शाप देता हूँ कि इसके कुल में पुरुषों को विद्या सिद्धि नहीं हो किन्तु स्त्रियों को विद्या सिद्धि संजयन्त प्रतिमा के सम्मुख आराधना करने से हो।

6. सम्यक्त्व के प्रथम अंग की कथा

इसी भरतक्षेत्र में भूमितिलक नगर में राजा नरपाल था, उनकी महादेवी गुणमाला थी। उसी राज्य में एक सेठ सुनन्द था, जिसकी पत्नी सुनन्दा थी, इनका सातवाँ पुत्र धनवन्तरि था। राजा सोमशर्मा पुरोहित था, उसकी पत्नी अग्निला थी, इनके सप्तम पुत्र का नाम विश्वानुलोम था। ये दोनों ही पुत्र बाल्यावस्था में सप्तव्यसन में लिप्त हो गए, जिससे कई बार इन दोनों ने पर द्रव्य का हरण किया। इसलिए एक बार राजा ने अपने देश से इन दोनों को बाहर निकाल दिया। कुरुजांगल देश में हस्तिनागपुर में वीर, अतिवीर राजा राज्य करते थे, वहाँ ये दोनों पहुँच गए। एक बार अपराह्न बेला में राजा का नीलगिरि नाम का हाथी जो कि निरंकुश था, उसे आते देख जिनालय की

ततः कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे वीरमतिवीरनरेश्वरराज्ये कृतवन्तौ स्थितिम्। एकदापराह्णवेलायां नीलगिरिनाम्नो राजकुञ्जराद् निरङ्कुशात् सम्मुखमागच्छतो व्यावृत्य मण्डितजिनालये प्रविष्टौ। तत्र श्रीधर्माचार्यं दूरतो विलोक्य सूरिमभिमुखं गच्छन्तं धन्वन्तरिं निवार्य पटखण्डगाढपिहितकर्णकुहरो विश्वानुलोमो निद्रामकार्षीत्। धन्वन्तरिस्तु सूरिं धर्मो[र्ममु]पदिशन्तमाकर्ण्योपासकलोकमवग्रहान् गृह्णन्तमवलोक्य चोपशान्ताशुभसंचयः श्रीधर्माचार्य-चरणाम्भोजयुगं नमस्कृत्य नियममग्रहीत्। खलतिविलोकनात् प्रातर्मया भोक्तव्यमिति व्रतेन कुम्भकारात्प्राप्तो निधिम्। तथा पायसपूर्णपिष्टरथपरिहारात् विगतविषमविषानुषङ्गितमरणसंनिधिः। अकलिताभिधानानोकह-फलाकवलनात् वञ्चितफलोपजनितक्षयसंगतिः। रभसान्न किमपि कार्यमाचर्यमिति स्वीकृतनियमस्यैकदा नटनर्तनावलोकनादर्धरात्रे निजगृहमनुसृत्य मन्दमन्दमुद्घाटितकपाटसंपुटः निजजनन्या पुरुषवेषया गाढाश्लिष्टां मानसेष्टां भार्यां निद्रावशामवलोक्य झटिति साञ्जसम् उत्खातखड्गः स्वचेतसि यावदनुचिन्तयति प्रहारय, खड्गं पुनः पुनरुत्क्षिपति तावन्निशितासिधाराविकर्तितसिक्यस्थलीपतनादुन्निद्रयोस्तयोः स्वरं ययौ। धन्वन्तरिरिति जातवैराग्यः व्रतातिशयं प्रशंसन् यद्यहमिमं नियममद्य नाकार्षीदि [र्षमि]मां जननीं प्रियकलत्रं च निहत्य महापापायशसां निधिः स्यामिति संपन्ननिर्वेदो ज्ञातिजनं यथायथमवस्थाप्य श्रीधर्माचार्यादेशात् धरणिभूषणपर्वतोपकण्ठे वरधर्माचार्यपादमूले दीक्षां गृहीत्वा तापनयोगस्थितो यावदास्ते स्म तावत्परिजनात्परिज्ञातप्रव्रजनवृत्तान्तो मन्मित्रस्य धन्वन्तरेर्या गतिः

भीड़ को हटाते हुए दोनों जिनालय में प्रवेश कर गए। वहाँ जिनालय में दूर से ही श्रीधर्म आचार्य को देख धन्वन्तरि आचार्य के पास आने लगा, विश्वानुलोम ने धन्वन्तरि को जाने से रोका और स्वयं अपने कानों में रुई भरकर सो गया, किन्तु धन्वन्तरि श्रीधर्म आचार्य के उपदेश सुनता रहा, उपासक लोग कुछ नियम ग्रहण कर चले जाते जिसे देखकर धन्वन्तरि के संचित अशुभ उपशान्त हुए। धन्वन्तरि ने श्रीधर्म आचार्य के चरण कमलों को नमस्कार कर नियम ग्रहण कर लिया। गंजे सिर वाले व्यक्ति का दर्शन करके प्रातः भोजन करूँगा, इस नियम के ग्रहण करने से उसे कुम्भकार से बहुत निधि प्राप्त हुई। दूध से बने आटे के पुतले का त्याग का नियम लेने धन्वन्तरि विषम विष के कारण होने वाले मरण से बच गया। अपरिचित वृक्ष के फल को नहीं खाना, इस व्रत के ग्रहण करने से वह फल खाने से होने वाली मृत्यु से बच गया। एक बार धन्वन्तरि ने नियम लिया कि शीघ्र ही किसी कार्य को नहीं करूँगा। धन्वन्तरि की माँ अर्धरात्रि में नटनृत्य को देखकर अपने घर में आयी और धीरे-धीरे दरवाजा खोलकर सो गयी। माँ पुरुष की पोषाक पहने थी। अपनी पत्नी को गाढ़ निद्रा में पुरुष के साथ सोता देखकर धन्वन्तरि ने शीघ्र ही तलवार खींच ली। अपने मन में फिर उसने नियम का स्मरण किया और बार-बार तलवार को प्रहार के लिए खींचता, तलवार तीक्ष्ण धार वाली थी। सहसा धरती पर तलवार गिर गयी, जिससे उन दोनों की निद्रा भंग हो गयी और देखकर चिल्लाने लगी। इस प्रकार अपनी माँ के साथ पत्नी को देख धन्वन्तरि को वैराग्य हो गया। वह व्रत के अतिशय की प्रशंसा करते हुए सोचने लगा कि यदि हम यह नियम आज नहीं लेते तो मैं अपनी माँ और प्रिय पत्नी की हत्या से महापाप और अपयश की निधि का भागी होता। वह वैराग्य से भर गया, अपने परिवारजनों की यथोचित व्यवस्था कर श्रीधर्म आचार्य के आदेश से धरणीभूषण पर्वत के निकट वरधर्म आचार्य के पादमूल में उसने दीक्षा ग्रहण कर ली और आतापन योग धारण कर स्थित हो गया। जब विश्वानुलोम को परिवार वालों से धन्वन्तरि की दीक्षा का वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो उसने प्रतिज्ञा की कि जो गति धनवन्तरि की हुई वही मेरी होगी। विश्वानुलोम धन्वन्तरी के पास गया और बड़े स्नेह के साथ बोला - हे मित्र! हम लोग बहुत समय बाद मिले हैं, क्या तुम मुझे गले नहीं लगाओगे, क्या तुम अपनी कोमल वाणी से मेरे साथ

सा ममापीति प्रतिज्ञापरो विश्वानुलोमः तत्रागत्य भो वयस्य चिरान्मिलितोऽसि किमिति न मां गाढमाश्लिष्यसि किमिति नातिकोमलया गिरालापयसीत्यादिसस्नेहमाभाष्य निजशरीरेऽपि निःस्पृहे धन्वन्तरियतीश्वरे प्रकुप्य सहस्रजटस्य जटिनोऽन्तिके शतजटाभिधानो विश्वानुलोमो बभूव। धन्वन्तरिरप्यातापनयोगान्ते तस्य समीपमुपगत्य विश्वानुलोमो जिनधर्ममजानन् किमिति दुश्चरित्रे प्रवृत्तः संजातः स्वमितो विमुच्येमं दुर्मार्गं सहैव जिनोक्तं सन्मार्गमाश्रयाव इति बहुशः प्रतिबोध्यमानं कोपावेशाद्विहितमूकभावं परिहृत्य सद्गुरूपदिष्टरत्नत्रयमाराध्य कालेनाच्युतस्वर्गेऽमितप्रभो नाम महर्द्धिकदेवोऽवातरत्। विश्वानुलोमोऽपि जीवितान्ते विपद्य व्यन्तरेषु विद्युत्प्रभाभिधो वाहनदेवो बभूव। अथैकदा नन्दीश्वरयात्रां कृत्वा गच्छतीन्द्रेऽमितप्रभो भवान्तरस्नेहोत्कण्ठितमना विद्युत्प्रभमवलोक्यावधिबोधं प्रयुज्यावगतवृत्तान्तो मित्र किं स्मरसि जन्मान्तरोदन्तमित्यवोचत्। वयस्य अहं स्मरामि, परं मया स्वल्पं तपः कृतं मन्मतेऽपि विशिष्टानुष्ठानं तन्निष्ठा जमदग्न्यादयः स्वतोऽप्यधिकाः सन्ति सम्यक्त्वातीचारा इत्यादिशङ्कादयो हि सम्यक्त्वस्य दोषाः निश्शङ्कितत्वादयस्तु गुणाः।

तत्र शङ्कितनिश्शङ्कितयोरेकैव कथा–धन्वन्तरिविश्वानुलोमौ स्वकृतकर्मवशादमितप्रभविद्युत्प्रभौ देवौ संजातौ। तौ चान्योन्यस्य धर्मपरीक्षणार्थमत्रायातौ। ततो जमदग्निस्ताभ्यां तपसश्चालितः। मगधदेशे राजगृहनगरे जिनदत्तश्रेष्ठी स्वीकृतोपवासः कृष्णचतुर्दश्यां रात्रौ श्मशाने कायोत्सर्गेण स्थितो दृष्टः। ततोऽमितप्रभदेवेनोक्तम्–

बात नहीं करोगे? धन्वन्तरि यतीश्वर अपने शरीर में भी निस्पृही थे। विश्वनुलोम इस प्रकार संवाद करके कुपित हो गया और हजार जटाधारी जटी के पास जाकर शतजटाधारी हो गया। धन्वन्तरि आतापन योगपूर्ण करके विश्वानुलोम के समीप गए, अरे विश्वानुलोम! तुम जिनधर्म को नहीं जानते इसलिए तुमने इस प्रकार के दुश्चारित्र में प्रवृत्ति की, यह सब छोड़ो और इस दुर्यार्ग का भी त्याग करो। जिनेन्द्र भगवान् द्वारा कहे हुए सन्मार्ग का ही आश्रय लो इस प्रकार बहुत बार समझाया, पर वह क्रोध से मूक भाव धारण किए रहा। धन्वन्तरि उसे छोड़कर चला गया। अपने सद्गुरु द्वारा बताये हुए रत्नत्रय की आराधना कर मरण प्राप्त कर अच्युत स्वर्ग में अमितप्रभ नाम के महर्द्धिक देव हुए। विश्वानुलोम भी जीवन के अन्त में मरण कर व्यन्तरों में विद्युतप्रभ नाम का वाहन देव हुआ। एक बार नंदीश्वर की यात्रा करके जाते हुए अमितप्रभ ने विद्युतप्रभ को देखा, भवान्तर के स्नेह से उत्कंठित होकर अवधिज्ञान लगाकर विद्युतप्रभ का सारा वृत्तान्त जान लिया और कहा मित्र! क्या तुम्हें याद है, मैंने जन्मांतर में तुमसे इस प्रकार कहा था, हाँ मुझे याद है, मैंने बहुत थोड़ा तप किया था, मेरे मत में भी जमदग्नि आदि मुझसे भी अधिक तप करने वाले हैं और वे हमेशा विशिष्ट अनुष्ठान करने में संलग्न रहते हैं।

सम्यक्त्व के अतिचार कहे हैं। उनमें शंका आदि करना सम्यक्त्व का दोष है किन्तु निःशंकित आदि गुण हैं। शंकित और निःशंकित का एक ही कथा में वर्णन है।

धन्वन्तरि और विश्वानुलोम स्वयं किए हुए कर्म के फल से अमितप्रभ और विद्युतप्रभ देव हुए। ये दोनों ही एक दूसरे के धर्म की परीक्षा के लिए पृथ्वी पर आये। उनमें जमदग्नि दोनों के द्वारा तप से चलायमान हो गया। मगधदेश में राजगृह नगरी में जिनदत्त श्रेष्ठी रहता था। जिनदत्त उपवास स्वीकार करके कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को रात्रि के समय श्मशान में कायोत्सर्ग से स्थित थे, उन्हें देखकर अमितप्रभ देव ने कहा – मेरे मुनिगण तो दूर रहे इस गृहस्थ को ही ध्यान से चलायमान करो। तब विद्युतप्रभ देव ने अनेक प्रकार के उपसर्ग किए किन्तु जिनदत्त ध्यान से विचलित नहीं हुए तब सुबह मायाजाल को हटाकर और प्रसन्न होकर देव ने जिनदत्त को आकाशगामिनी

दूरे तिष्ठन्तु मदीया मुनयोऽमुं गृहस्थं ध्यानाच्चालयेति। ततो विद्युत्प्रभदेवेनानेकधा कृतोपसर्गोऽपि न चलितो ध्यानात्ततः प्रभाते मायामुपसंहृत्य प्रशस्य च आकाशगामिनी विद्या दत्ता। तवेयं सिद्धा, अन्यस्य च नमस्कारविधिना सिध्यतीति। ततः स सानन्देनाकृत्रिमचैत्यालये सदैव पूजाकरणार्थं गमनं करोति। सोमदत्तपुष्पबटुकेन चैकदा जिनदत्तश्रेष्ठी पृष्टः-क्व भवान् प्रातरेवोत्थाय व्रजतीति। तेन चोक्तमकृत्रिमचैत्यालयं वन्दनाभक्तिं कर्तुं व्रजामि, मम इत्थं विद्यालाभः संजात इति कथितम्। तेनोक्तम्-मम विद्यां देहि, येन त्वया सह पुष्पादिकं गृहीत्वा वन्दनाभक्तिं करोमि। ततः श्रेष्ठिना तस्योपदेशो दत्तः। तेन च कृष्णचतुर्दश्यां श्मशानवटवृक्षपूर्वशाखायामष्टोत्तरशतपादं च दर्भसिक्यं बन्धयित्वा तस्य तले तीक्ष्णसर्वशस्त्राण्यूर्ध्वमुखानि धृत्वा गन्धपुष्पादिकं दत्वा सिक्यमध्ये प्रविश्य षष्ठोपवासेन पञ्चनमस्कारानुच्चार्य क्षुरिकयैकैकपादं छिन्दताधो जाज्वल्यमानप्रहरणसमूहमालोक्य भीतेन संचिन्तितम्। यदि श्रेष्ठिनो वचनमसत्यं भवति तदा मरणं भवतीति शङ्कितमनाः वारंवारं चटनोत्तरणं करोति। एतस्मिन्प्रस्तावे प्रजापालराज्ञः कनकाराज्ञीहारं दृष्ट्वा अञ्जनसुन्दरीविलासिन्या रात्रावागतोऽञ्जनचोरो भणितो-यदि मे कनकाया हारं ददासि तदा भर्ता त्वं नान्यथेति। ततो गत्वा रात्रौ हारं चोरयित्वा अञ्जनचोरोऽप्यागच्छन् हारोद्द्योतेन ज्ञात्वा अङ्गरक्षैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणो हारं त्यक्त्वा प्रणश्य गतो वटतले बटुकं दृष्ट्वा पृष्ट्वा तस्मान्मन्त्रं गृहीत्वा निःशङ्कितेन तेन विधिना एकवारेण सर्वं शिक्यं छिन्नं शस्त्रोपरि पतितः। सिद्धया विद्यया

विद्या दी। हे जिनदत्त! यह विद्या आपको सिद्ध हुई और दूसरे को नमस्कार विधि के द्वारा सिद्ध होगी। इस विद्या को पाकर जिनदत्त सदैव अकृत्रिम चैत्यालय में पूजा करने के लिए गमन करते। एक बार सोमदत्त पुष्पबटुक ने जिनदत्त सेठ से पूछा - आप प्रातः उठकर कहाँ जाते हैं? जिनदत्त ने कहा - मैं अकृत्रिम चैत्यालय की वन्दना भक्ति करने के लिए जाता हूँ, मुझे इस प्रकार की विद्या का लाभ हुआ है, इस प्रकार कहने पर सोमदत्त कहने लगा, मुझे भी यह विद्या दो जिससे मैं भी तुम्हारे साथ पुष्पादिक को लेकर वन्दना भक्ति करूँगा। तब सेठ ने विद्या सिद्धि की विधि सोमदत्त को बता दी। सोमदत्त ने कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को श्मशान में जाकर वट वृक्ष की पूर्व शाखा में कुश/घास के एक सौ आठ रस्सियों का छींका बाँधकर उसके नीचे सर्व प्रकार के नुकीले शस्त्रों को ऊर्ध्व मुख करके गाढ़ दिए। उन पर गन्ध, पुष्प आदि क्षेपण कर छींके के बीच में बैठ गया। दो उपवास का नियम ले पञ्च नमस्कार मंत्र का उच्चारण कर छुरी से एक-एक रस्सी को काटता जाता, तभी नीचे चमचमाते हुए अस्त्रों की धार का समूह देखकर भयभीत होकर सोचने लगा। यदि सेठ का वचन असत्य हुआ तो मृत्यु निश्चित है। इस प्रकार मन में शंका के कारण वह बार-बार छींके पर चढ़ता और उतरता। उधर अञ्जनसुन्दरी वेश्या ने प्रजापाल राजा की कनकारानी का हार देखा और रात्रि में अञ्जनचोर को अवगत कर कहा - यदि तुम मुझे कनकारानी का हार लाकर दोगे तो मैं तुम्हारी पत्नी बनूँगी, अन्यथा तुम मेरे पति नहीं। इसलिए अञ्जन ने रात्रि में जाकर हार चुरा लिया। अञ्जनचोर को जाते हुए हार की चमक से जान लिया। जब अञ्जनचोर ने देखा कि अंगरक्षकों और कोतवालों के द्वारा पकड़ा जाऊँगा तो हार को छोड़कर दौड़ा। वट वृक्ष के नीचे एक वटुक को देखकर उससे पूछताछ करके मन्त्र को ग्रहण कर निःशंकित होकर एक बार में ही उसी विधि से सर्व छींके को छिन्न-भिन्न कर शस्त्र के ऊपर गिर पड़ा। विद्या की सिद्धि हो गयी, विद्या ने कहा - मुझे आदेश दो, तब अञ्जन ने कहा मुझे जिनदत्त सेठ के पास ले चलो। तब विद्या ने सुदर्शन मेरु के चैत्यालय में जिनदत्त के सामने उसे ले जाकर रख दिया। अञ्जन ने पूर्व का सारा वृत्तान्त कहकर सेठ से कहा, जिस प्रकार आपके उपदेश से मुझे यह

भणितमादेशं देहीति। तेनोक्तम्-जिनदत्त-श्रेष्ठिपार्श्वे मां नयेति। ततः सुदर्शनमेरुचैत्यालये जिनदत्तस्याग्रे नीत्वा धृतः पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा तेन भणितम्-यथेयं सिद्ध विद्या भवदुपदेशेन तथा परलोकसिद्धावप्युपदेशं देहीति। ततश्चारणमुनि संनिधौ तपो गृहीत्वा कैलासे केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः।।

आकाङ्क्षिताख्यानकं यथा पिण्याकगन्धस्य, तत्त्वग्रे कथयिष्यते।

7. निःकाङ्क्षिताख्यानकथा

अङ्गदेशे चम्पानगर्यां राजा वसुवर्धनो, राज्ञी लक्ष्मीमती, श्रेष्ठी प्रियदत्तो, भार्या अङ्गवती, पुत्री अनन्तमती। नन्दीश्वराष्टम्यां श्रेष्ठिना धर्मकीर्त्याचार्यपादमूले अष्टदिनानि ब्रह्मचर्यं गृहीतं क्रीडया अनन्तमती च ग्राहिता। अन्यदा संप्रदानकाले अनन्तमत्योक्तम् तात मम त्वया ब्रह्मचर्यं दापितम्। तत्किं विवाहेन श्रेष्ठिनोक्तम्-क्रीडया मया ते ब्रह्मचर्यं दापितम्। ननु तात धर्मे व्रते च का क्रीडा। ननु पुत्रि नन्दीश्वराष्टदिनान्येव व्रतं तदा ते दत्तम्। न तथा भट्टारकैरप्यविवक्षितत्वादिति, इह जन्मनि परिणयने मम निवृत्तिरस्तीत्युक्त्वा सकलकलाविज्ञानशिक्षां कुर्वती स्थिता, यौवनभरे चैत्रे निजोद्याने आन्दोलयन्ती दक्षिणश्रेणिकिन्नरपुरविद्याधरराजेन कुण्डलमण्डितनाम्ना सुकेशीनिजभार्यया सह गगनतले गच्छता दृष्टा। किमनया विना जीवितेनेति संचिन्त्य भार्यां गृहे धृत्वा शीघ्रमागत्य विलपन्ती तेन सा नीता। आकाशे आगच्छन्तीं भार्यां दृष्ट्वा भीतेन पर्णलघ्व्या विद्यायाः समर्प्य महाटव्यां मुक्ता। तत्र च तां रुदन्तीमालोक्य भीमनाम्ना भिल्लराजेन निजपल्लिकां नीत्वा प्रधानराज्ञीपदं तव ददामि मामिच्छेति

विद्या सिद्ध हुई उसी प्रकार परलोक की विद्या सिद्ध हो, ऐसा उपदेश दो। तदुपरान्त अञ्जनचोर ने चारण मुनि के समीप जाकर तप ग्रहण किया और कैलाश पर्वत पर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष को प्राप्त किया।

आकांक्षित के सम्बन्ध में पिण्याकगन्ध की कथा है, उसे आगे कहेंगे। (देखें कथा 47)

7. निःकांक्षित अंग की कथा

अंग देश की चम्पानगरी में राजा वसुवर्धन थे, उनकी रानी लक्ष्मीमती थी। वहाँ प्रियदत्त नामक एक श्रेष्ठी रहता था, जिसकी सेठानी अंगवती थी। सेठ की पुत्री का नाम अनन्तमती था। नन्दीश्वर की अष्टमी में सेठ ने धर्मकीर्ति आचार्य के चरणों में आठ दिन का ब्रह्मचर्य ग्रहण किया। अनन्तमती को भी क्रीड़ा से (विनोद वश) व्रत दिलवा दिया। विवाह के अवसर पर अनन्तमती ने कहा - हे तात! आपने मुझे ब्रह्मचर्य दिलाया था। अब विवाह क्यों ? सेठ ने कहा - मैंने विनोद वश व्रत दिलवाया था, किन्तु तात! धर्म में और व्रत में कैसा विनोद ? बेटी, उस समय व्रत तो नन्दीश्वर के आठ दिनों के लिए ही दिलवाया था, पिताजी! महाराज ने भी मुझे इस प्रकार नहीं बताया कि व्रत कितने दिन का है, इसलिए इस जन्म में मैं विवाह नहीं करूँगी ऐसा कहकर वह सभी प्रकार की कला, विज्ञान की शिक्षा ग्रहण करती हुई रहने लगी। एक बार चैत्र के महीने में अपने सुन्दर बगीचे में वह झूला झूल रही थी। तभी दक्षिण श्रेणी के किन्नरपुर में विद्याधर राजाओं का स्वामी कुण्डलमण्डित ने अपनी सुकेशी पत्नी के साथ आकाश मार्ग से जाते हुए अनंतमती को देखा। इसके बिना मेरा जीवन ही क्या? इस प्रकार चिन्तन कर पत्नी को घर में पहुँचा कर शीघ्र ही आ गया और रोती हुई अनंतमती को ले गया। आकाश में अपनी पत्नी को आता देख भय से पर्ण लघु विद्या देकर अनंतमती को भयंकर वन में छोड़ दिया। वहाँ अनन्तमती को रोता देख भीम नामक भीलों का राजा उसे अपने स्थान पर ले गया, रात्रि में उससे कहा - मैं तुम्हें प्रधान रानी का पद दूँगा, मुझे स्वीकारो, अनन्तमती के न चाहते हुए भी वह भील उसे भोगने के लिए चला तभी अनन्तमती के व्रत के माहात्म्य से वन देवी ने भील को डाँटा और उपसर्ग किया। यह कोई देवी है, इस भय से भील ने वहाँ रहने वाले पुष्कर नाम के सार्थवाह (व्यापारी) को समर्पित कर दिया। सार्थवाह ने लोभ को दिखाकर उससे विवाह की

भणित्वा रात्रौ अनिच्छन्ती भोक्तुमारब्धा। व्रतमाहात्म्येन वनदेवतया तस्य ताडनाद्युपसर्गः कृतः। देवता काचिदियमिति भीतेन तेन आवासितसार्थस्य पुष्पकरनाम्नः सार्थवाहस्य समर्पिता। सार्थवाहो लोभं दर्शयित्वा परिणेतुकामो न वाञ्छितः। तेन चानीय अयोध्यायां कामसेनाकुट्टिन्याः समर्पिता। कथमपि वेश्या न जाता। ततः सिंहराजस्य दर्शिता। तेनैव च रात्रौ हठात्सेवितुमारब्धा। नगरदेवतया तद्व्रतमाहात्म्येन तस्योपसर्गः कृतः। तेन च भीतेन गृहान्निस्सारिता रुदन्ती सखेदा कमलश्रीक्षान्तिकया श्राविकेति मत्वा अतिगौरवेण धृता। अथानन्तमती-शोकविस्मरणार्थं प्रियदत्तश्रेष्ठी बहुसहायो वन्दनाभक्तिं कुर्वन्नयोध्यायां गतो निजश्यालकजिनदत्तश्रेष्ठिनो गृहे संध्यासमये प्रविष्टः। रात्रौ पुत्रीहरणवार्तां कथितवान्। प्रभाते तस्मिन्वन्दनाभक्तिं गते अतिगौरवितः प्राघूर्णकनिमित्तं रसवतीं कर्तुं गृहे च चतुष्कं दातुं कुशला कमलश्रीक्षान्तिकाया श्राविका जिनदत्तभार्यया आकारिता। सा च सर्वं कृत्वा वसतिकां गता। वन्दनाभक्तिं कृत्वा आगतेन प्रियदत्तश्रेष्ठिना चतुष्कमवलोक्य अनन्तमतीं स्मृत्वा गद्गरितहृदयेन गद्गदवचनेन अश्रुपातं कुर्वता भणितम्- यया गृहमण्डनं कृतं तां मे दर्शयेति। ततः सा ततो नीता, मेलापको जातो, जिनदत्तश्रेष्ठिना महोत्सवः कृतः। अनन्तमत्या चोक्तम्- तात, इदानीं मे तपो दापय, दृष्टमेकस्मिन्नेव भवे संसारवैचित्र्यमिति। ततः कमलश्रीक्षान्तिकापार्श्वे तपो गृहीत्वा बहुना कालेन विधिना मृत्वा सहस्रारे देवो जातः।।

विचिकित्साख्यानं यथा लक्ष्मीमत्यास्तथाग्रे कथयिष्यते।

इच्छा की किन्तु सफल नहीं हुआ तब उसने ले जाकर कामसेना वेश्या को समर्पित कर दिया।

जब अनन्तमती किसी प्रकार से भी वेश्या न हुई तो उस वेश्या ने अनन्तमती को सिंह राजा को दिखाया, उस राजा ने भी रात्रि में जबरदस्ती सेवन करने का उपक्रम किया, किन्तु अनन्तमती के व्रत के माहात्म्य से नगरदेवी ने राजा पर उपसर्ग किया। उस राजा ने देवी के भय से उसे गृह से निकाल दिया। रोती हुई खेद युक्त अनन्तमती कमलश्री क्षान्तिका (आर्यिका) के पास पहुँची, यह श्राविका है, ऐसा समझकर आर्यिका ने अति गौरव से उसे रख लिया। इधर अनन्तमती का पिता प्रियदत्त सेठ अनन्तमती के दुःख को विस्मरण करने के लिए वन्दना भक्ति करता हुआ दुःख को भुलाता। इस प्रकार वन्दना करते हुए वह अपने साले जिनदत्त सेठ के पास अयोध्या पहुँचा तथा जिनदत्त के घर संध्या समय में प्रविष्ट हुआ, रात्रि में उसने पुत्री के हरण की कथा बतायी। प्रातः वन्दना भक्ति करने को सेठजी चले गए तो अतिगौरव से पाहुने (की खुशामद) के लिए रसोई को करने तथा चौक पूरने के लिए जिनदत्त की पत्नी ने कमलश्री आर्यिका की कुशल श्राविका को घर में बुलाया। वह सब कुछ कर वसतिका में चली गई। वन्दना भक्ति कर जब प्रियदत्त सेठ आये तो चौक को देखकर अनन्तमती को याद कर अतिव्याकुल हृदय से गद्गद् वचनों से आँसू बहाते हुए कहा - किसने यह गृहमंडन किया है, उसे मुझे दिखाओ। तब सेठानी प्रियदत्त को वहाँ ले गयी, अनन्तमती का मिलाप हुआ। जिनदत्त सेठ ने महोत्सव किया, अनन्तमती ने पिता से कहा - हे तात! अब मुझे तप (आर्यिका दीक्षा) दिला दो। इस एक भव में ही मैंने संसार की विचित्रता को देख लिया। तदुपरान्त उसने उन्हीं कमलश्री आर्यिका के पास दीक्षा ग्रहण की बहुत समय बाद विधिपूर्वक मरण करके सहस्रार स्वर्ग में देव हुई।

विचिकित्सा (ग्लानि करने) की कथा लक्ष्मीमती की है, उसे आगे कहेंगे।(देखें कथा 50)

8. निर्विचिकित्साख्यानकम्

यथा-सौधर्मेन्द्रेण निजसभायां सम्यक्त्वगुणं वर्णयता भरते कच्छदेशे रौरकपुरे उद्दायनमहाराजस्य निर्विचिकित्सागुणः प्रशंसितः। तं परीक्षितुं वासवदेव उदुम्बरकुथितं मुनिरूपं विकृत्य तस्यैव हस्तेन विधिना स्थित्वा सर्वमाहारं जलं च मायया भक्षित्वा अतिदुर्गन्धं बहुवमनं कृतवान्। दुर्गन्धभयान्नष्टे परिजने प्रतीच्छतो राज्ञस्तद्देव्याश्च प्रभावत्या उपरि छर्दितम्। हा हा विरुद्ध आहारो दत्तो मयेत्यात्मानं निन्दितः। तं च प्रक्षालयतो मायां परिहृत्य प्रकटीभूय पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा प्रशस्य च स्वर्गं गतः। उद्दायनमहाराजो वर्धमानस्वामिपादमूले तपो गृहीत्वा मुक्तिं गतः। प्रभावती तपसा ब्रह्मस्वर्गे देवो बभूव।

मूढदृष्ट्याख्यानकं यथा ब्रह्मदत्तस्य द्वादशचक्रवर्तिनः। तच्चाग्रे कथयिष्यते।

9. अमूढदृष्टयाख्यानकम्

यथा- विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां मेघकूटनगरे राजा चन्द्रप्रभः, चन्द्रशेखरपुत्राय राज्यं दत्वा परोपकारार्थं वन्दनाभक्त्यर्थं च कियती विद्या दधानो दक्षिणमथुरायां मुनिं गत्वा गुप्ताचार्यसमीपे क्षुल्लको जातः। तेनैकदा वन्दनाभक्त्यर्थमुत्तरमथुरायां चलितेन गुप्ताचार्यः पृष्टः। किं कस्य कथ्यते। भगवतोक्तम्-सुव्रतमुनेर्वन्दना, वरुणराजमहाराज्ञ्या रेवत्या आशीर्वादश्च कथनीयः, त्रिःपृष्टेनापि तेन एतदेवोक्तम्। ततः क्षुल्लकेनोक्तम्-भव्यसेनाचार्यस्यैकादशाङ्गधारिणोऽन्येषां च नामापि भगवान्न गृह्णाति। तत्र किंचित्कारणं भविष्यतीति संप्रधार्य तत्र गत्वा सुव्रतमुनेर्भट्टारकाय वन्दनां कथयित्वा, तदीयं च विशिष्टं वात्सल्यं दृष्ट्वा अभव्यसेनवसतिकां गतस्तत्र

---

8. निर्विचिकित्सा अंग की कथा

एक बार सौधर्म इन्द्र ने अपनी सभा में सम्यक्त्व गुण का वर्णन करते हुए भरतक्षेत्र में कच्छदेश के रौरकपुर के महाराजा उद्दायन की प्रशंसा की। इसकी परीक्षा करने के लिए वासवदेव कोढ़ी मुनि का वेष बनाकर आये। राजा के हाथों से विधि पूर्वक खड़े होकर सर्व आहार, जल को माया से खा लिया और भोजन कर अति दुर्गन्ध बहुल वमन कर दिया। दुर्गन्ध के भय से सभी परिवार के लोग चले गए, किन्तु राजा और प्रभावती रानी वहीं पर खड़े रहे। मायावी मुनि ने पुनः उनके ऊपर वमन कर दिया।

हा! हा! मैंने कुछ विरुद्ध आहार दे दिया, इस प्रकार वे स्वयं की निन्दा पश्चात्ताप करने लगे। उनके शरीर का प्रक्षालन कर देव ने माया को हटाया और असली रूप में आकर पूर्व वृत्तान्त कहकर प्रसन्न होकर स्वर्ग चला गया। उद्दायन महाराज वर्धमान स्वामी के पादमूल में तप (दीक्षा) को ग्रहण कर मुक्ति को प्राप्त हुए। प्रभावती रानी तप करके ब्रह्मस्वर्ग में देव हुई।

मूढ़दृष्टि की कथा बारहवें चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त की है। उसे आगे कहेंगे। (देखें कथा 20)

9. अमूढ़दृष्टि अंग की कथा

विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में मेघकूट नगर के राजा चन्द्रप्रभ थे। राजा चन्द्रशेखर पुत्र के लिए राज्य देकर परोपकार करने के लिए तथा वन्दना भक्ति करने के लिए कुछ विद्या को अपने पास रखकर दक्षिण मथुरा में मुनि गुप्ताचार्य के समीप क्षुल्लक हो गए। एक बार क्षुल्लकजी वन्दना भक्ति करने के लिए उत्तर मथुरा को चल दिए, चलते हुए उन्होंने गुप्ताचार्य से पूछा - किसको क्या समाचार कहना है? गुप्ताचार्य ने कहा सुव्रतमुनि को वन्दना कहना और वरुण राज की महारानी रेवती को आशीर्वाद कहना। तीन बार पूछने पर गुप्ताचार्य ने यही

गतस्य भव्यसेनेन संभाषणमपि न कृतम्। कुण्डिकां गृहीत्वा भव्यसेनेन सह बहिर्भूमिं गत्वा विकुर्वणया हरितकोमलतृणाङ्कुरच्छन्नो मार्गोऽग्रे दर्शितः। तं दृष्ट्वा आगमे किलैते जीवाः कथ्यन्ते इति भणित्वा तृणोपरि गतः। शौचसमये कुण्डिकाजलं शोषयित्वा क्षुल्लकेनोक्तम्-भगवन्, कुण्डिकायां जलं नास्ति तथा विकृतिश्च क्वापि न दृश्यते। अतोऽत्र स्वच्छसरोवरे प्रशस्तमृत्तिकया शौचं कुरु। तत्रापि तथा भणित्वा शौचं कृतवान्। ततस्तं मिथ्यादृष्टिं ज्ञात्वा भव्यसेनस्याभव्यसेन इति नाम कृतम्। ततोऽन्यस्मिन्दिने पूर्वस्यां दिशि पद्मासनस्थं चतुर्मुखं यज्ञोपवीताद्युपेतं देवासुरवन्द्यमानं ब्रह्मरूपं दर्शितम्। तत्र राजादयोऽभव्यसेनादयश्च सर्वे गताः। रेवती तु कोऽयं ब्रह्मा नाम देव इति भणित्वा लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता। एवं दक्षिणस्यां दिशि गरुडारूढं चतुर्भुजं चक्रगदाशङ्खासिधारकं वासुदेवरूपम्। पश्चिमस्यां दिशि वृषभारूढं सार्धचन्द्रजटाजूटगौरीगणोपेतं शङ्कररूपम्। उत्तरस्यां दिशि समवसरणमध्ये प्रातिहार्याष्टकोपेतं सुरनरविद्याधरमुनिवृन्दवन्द्यमानं पर्यङ्कस्थं तीर्थकरदेवरूपं दर्शितम्। तत्र च सर्वे लोका गताः। रेवती तु लोकैः प्रेर्यमाणापि न गता। नवैव वासुदेवाः एकादशैव रुद्राः चतुर्विंशतिरेव तीर्थकराः जिनागमे कथिताः। ते चातीताः। कोऽप्ययं मायावीत्युक्त्वा स्थिता। अन्यदिने चर्यावेलायां व्याधिक्षीणशरीरक्षुल्लकरूपेण रेवतीगृहप्रतोलीसमीपमार्गे मायामूर्च्छया पतितः। रेवत्या तमाकर्ण्य भक्त्योत्थाय

कहा तब क्षुल्लकजी ने सोचा एकादश अंग के धारी भव्यसेन आचार्य तथा अन्य भी मुनियों का भगवान् ने नाम भी नहीं लिया। इसमें कुछ कारण अवश्य होगा, इस प्रकार मन में धारणा बनाकर वहाँ चले गए। जाकर सुव्रत मुनि को वन्दना कही तो उन्होंने वहाँ विशेष वात्सल्य प्राप्त किया। इसके बाद क्षुल्लक जी (भव्यसेन) अभव्यसेन की वसतिका में गए वहाँ भव्यसेन ने उनसे कुछ भी बात नहीं की। क्षुल्लक जी भव्यसेन के साथ कमण्डलु को लेकर बाहर जमीन पर गए, क्षुल्लक जी ने विक्रिया से हरे-हरे कोमल तृणों से मार्ग को भर दिया। यह देख आगम में तो ये निश्चय ही जीव कहे गए हैं, इस प्रकार कहकर भव्यसेन तृण के ऊपर से चले गए। शौच के समय पर कुण्डिका के जल को सुखाकर क्षुल्लक ने कहा - हे भगवन्! कुण्डिका में जल नहीं है, ऐसी स्थिति में यहाँ कुछ भी विकृति (गोमय राख आदि) दिखाई नहीं देती, इसलिए इस स्वच्छ सरोवर के जल से और अच्छी मिट्टी के द्वारा शौच क्रिया कर लो। वहाँ भी पहले की तरह कहकर शौच क्रिया से निवृत हो गए। तब उन्हें मिथ्यादृष्टि जानकर भव्यसेन का अभव्यसेन यह नाम कर दिया। तदनन्तर अन्य किसी दिन क्षुल्लकजी ने पूर्व की दिशा में पद्मासन स्थित चार मुखों को धारण करते हुए ब्रह्म रूप को दिखाया जो यज्ञोपवीत आदि से युक्त है, जिनकी देव, असुर आदि वन्दना कर रहे हैं। उस रूप को देखने के लिए राजा आदि प्रजा जन और अभव्यसेन आदि मुनि सब गए। यह कौन ब्रह्म नाम का देव है, इस प्रकार कहकर लोगों के द्वारा प्रेरित करने पर भी रेवती वहाँ नहीं गयी। इसी प्रकार दक्षिण दिशा में गरुड़ पर सवार चार भुजाओं से सहित चक्र, गदा, शंख, तलवार को धारण किए हुए वासुदेव का रूप बनाया। पश्चिम दिशा में बैल पर सवार अर्धचन्द्र से सहित जटा, जूट को धारण किए हुए गौरी गण से युक्त शंकर का रूप बनाया। उत्तर दिशा में समवसरण के बीच में अष्ट प्रातिहार्य से युक्त सुर, मनुष्य, विद्याधर, मुनियों के समूह से वन्दित पर्यंक आसन से स्थित तीर्थंकर देव का रूप दिखाया। वहाँ प्रत्येक रूप को देखने सब लोग गए किन्तु रेवती लोगों द्वारा कहे जाने पर भी नहीं गयी। वसुदेव नौ ही होते हैं, रुद्र ग्यारह ही होते हैं और तीर्थंकर चौबीस ही होते हैं। ऐसा जिनागम में कहा गया है। वे सब अतीत काल में हुए हैं, यह तो कोई मायावी है, ऐसा कहकर अपने स्थान पर ही रही। दूसरे दिन चर्या के समय व्याधि से क्षीण हुआ है शरीर

नीत्वोपचारं कृत्वा पथ्यं कारयितुम् आरब्धा। तेन च सर्वमाहारं भुक्त्वा दुर्गन्धवमनं कृतम्। तदपनीय हा हा विरूपकं मया पथ्यं दत्तमिति रेवत्या वचनमाकर्ण्य तोषान्मायामुपसंहृत्य तां देवीं वन्दयित्वा गुरोराशीर्वादं पूर्ववृत्तान्तं च सर्वं कथयित्वा लोकमध्ये अमूढदृष्टित्वं तस्या उच्चैः प्रशस्य स्वस्थाने गतः। वरुणो राजा शिवकीर्तिपुत्राय राज्यं दत्वा तपो गृहीत्वा महेन्द्रस्वर्गे देवो जातः। रेवत्यपि तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो बभूव।।

10. उपगूहनाख्यानकम्

सौराष्ट्रदेशे पाटलिपुत्रनगरे राजा यशोध्वजो, राज्ञी सुसीमा, पुत्रः सुवीरः सप्तव्यसनाभिभूतस्तथाभूतभूरिपुरुषसेवितः। पूर्वदेशे गौडविषये ताम्रलिप्तिनगर्यां जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिनः सप्ततलप्रासादोपरि बहुरक्षायुक्ता पार्श्वनाथप्रतिमा छत्रत्रयोपरि विशिष्टतरानर्घ्यवैडूर्यमणिं पारम्पर्येणाकर्ण्य लोभात्सुवीरेण निजपुरुषाः पृष्टास्तं मणिं किं कोऽप्यानेतुं शक्नोतीति। इन्द्रमुकुटमणिमप्यहमानयामीति गलगर्जितं कृत्वा सूर्यनामा चौरः कपटेन क्षुल्लको भूत्वा अतिकायक्लेशेन ग्रामनगरेषु क्षोभं कुर्वाणः क्रमेण ताम्रलिप्तिनगरीं गतः। तमाकर्ण्य गत्वा लोकवन्द्यत्वात् संभाष्य प्रशस्य क्षुभितेन जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिना नीत्वा श्रीपार्श्वनाथदेवं दर्शयित्वा माययानिच्छन्नपि गृहीत्वा स तत्र मणिरक्षको धृतः। एकदा क्षुल्लकं पृष्ट्वा श्रेष्ठी समुद्रयात्रायां चलितो नगराद् बहिर्निर्गत्य स्थितः।

जिनका, ऐसे क्षुल्लकजी रेवती के घर के आँगन के समीप मार्ग में माया से मूर्च्छित होकर गिर पड़े। रेवती यह बात सुनकर भक्ति से उन्हें उठाकर ले गयी और उपचार करके पथ्य देना प्रारम्भ कर दिया। क्षुल्लक ने सर्व आहार कर दुर्गन्ध युक्त वमन कर दिया। वमन साफ कर रेवती ने कहा – हा! हा! मैंने कुछ विरुद्ध पथ्य दे दिया। ऐसे रेवती के पश्चात्ताप के वचन सुनकर मायावी क्षुल्लक सन्तुष्ट हुए और अपनी माया हटाकर उस रेवती देवी की वन्दना करके गुरु का आशीर्वाद कहा और पूर्व का सारा वृत्तान्त सुनाया। इस लोक में आपका अमूढ़दृष्टि अंग उत्कृष्ट है, प्रशंसा के योग्य है। ऐसा कहकर क्षुल्लकजी अपने स्थान पर चले गए। वरुण राजा ने शिवकीर्ति पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की और मरणकर महेन्द्र स्वर्ग में देव हुए। रेवती भी दीक्षा ग्रहण कर ब्रह्मस्वर्ग में देव हुई।

10. उपगूहन अंग की कथा

सौराष्ट्र देश में पाटलिपुत्र नगर में राजा यशोधर थे, उनकी रानी सुसीमा थी, जिनका पुत्र सुवीर था। जो सप्तव्यसन में लिप्त था और उसी तरह के बहुत से व्यसनी पुरुषों के द्वारा सेवित था। इधर पूर्व देश में गौड़ प्रदेश के ताम्रलिप्त नगरी में एक जिनेन्द्रभक्त सेठ थे, उनका सात मंजिला महल था, उस महल की अंतिम मंजिल पर बहुत रक्षा से युक्त पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा थी, प्रतिमा के ऊपर तीन छत्र थे, जिन पर बहुमूल्य वैडूर्य मणि लगी थी। पारम्परिक क्रम से सुवीर ने यह बात सुनी तो लोभ से अपने साथियों को बुलाकर पूछा क्या सेठ की उस मणि को तुममें से कोई ला सकता है? तभी सूर्य नाम के चोर ने गर्व से गर्जना करते हुए कहा कि मैं इन्द्र के मुकुट की मणियों को भी ला सकता हूँ। यह तो साधारण बात है। यह कहकर चोर ने कपट से क्षुल्लक का भेष बनाया, अति कायक्लेश करता हुआ, गाँव और नगरों में क्षोभ पैदा करता हुआ, वह क्रम से ताम्रलिप्तनगरी में पहुँचा उसके आने का समाचार सुनकर कि यह लोक वन्द्य है, इसलिए जिनेन्द्र भक्त सेठ ने क्षुभित होकर उससे बात करके उसकी प्रशंसा आदि की और चोर को ले जाकर श्री पार्श्वनाथ भगवान् का जिनालय दिखाया और मायाचारी से न चाहते हुए भी चोर को वहीं रख लिया और मणि रक्षक भी बना दिया। एक बार क्षुल्लक को पूछकर सेठ समुद्र की यात्रा के लिए चले और नगर से बाहर जाकर रुक गए। वह चोर क्षुल्लक, घर के लोगों को सोने में व्यस्त जानकर आधी रात को मणि लेकर चल दिया। मणि की चमक से मार्ग में सिपाहियों ने उसको देखा

स चौरक्षुल्लको गृहजनमुपकरणनयनव्यग्रं ज्ञात्वार्धरात्रे तं मणिं गृहीत्वा चलितः। मणितेजसा मार्गे कोट्टपालैर्दृष्टो धर्तुमारब्धः। तेभ्यः पलायितुमसमर्थः श्रेष्ठिन एव शरणं प्रविष्टो मां रक्ष रक्षेति चोक्तवान्। कोट्टपालानां कलकलमाकर्ण्य पर्यालोच्य तं चौरं ज्ञात्वा दर्शनोद्वाहप्रच्छादनार्थं भणितं श्रेष्ठिना मम वचनेन रत्नमनेनानीतं रे भवद्भिर्विरूपकं कृतं यद्यस्य महातपस्विनश्चौरोद्घोषणा कृता। ततस्ते तस्य प्रणामं कृत्वा गताः। स च श्रेष्ठिना रात्रौ निर्धाटितः। एवमन्येनापि सम्यग्दृष्टिनाभक्तासमर्थाज्ञानपुरुषादागतदर्शनदोषस्य प्रच्छादनं कर्तव्यम्।।

11. उपस्थितिकरणाख्यानकम्

यथा- मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको, राज्ञी चेलनी, पुत्रो वारिषेण उत्तमश्रावकश्चतुर्दश्यां रात्रौ कृतोपवासः स्मशाने कायोत्सर्गेण स्थितः। तस्मिन्नेव दिने उद्यानक्रीडागतमगधसुन्दरीविलासिन्या श्रीकीर्तिश्रेष्ठिना परिहितो दिव्यो हारो दृष्टः। ततस्तं दृष्ट्वा किमनेनालंकारेण विना जीवितेनेति संचिन्त्य शय्यायां पतित्वा सा स्थिता। तावद्रात्रौ समागतेन तदासक्तेन विद्युच्चोरेणोक्तम्- प्रिये, किमेवं स्थितासीति। तयोक्तम्- श्रीकीर्तिश्रेष्ठिनो हारं यदि मे ददासि तदा जीवामि। त्वं च मे भर्ता नान्यथेति श्रुत्वा तां समुद्धार्य अर्धरात्रौ गत्वा निजकौशल्येन हारं चोरयित्वा निर्गतस्तदुद्द्योतेन चौरोऽयमिति ज्ञात्वा गृहरक्षकैः कोट्टपालैश्च ध्रियमाणः पलायितुमसमर्थो वारिषेणकुमारस्याग्रे तं हारं धृत्वाऽदृश्यो भूत्वा स्थितः। कोट्टपालैश्च तं तथा आलोक्य श्रेणिकस्य कथितम्- देव

और धर पकड़ना प्रारम्भ किया। उनसे बचने में अपने को असमर्थ जानकर वह सेठ की शरण में गया। मेरी रक्षा करो। मेरी रक्षा करो! इस प्रकार कहने लगा। सिपाहियों के कोलाहल शब्दों को सुनकर तुरन्त सब स्थिति जानकर, क्षुल्लक को चोर जानकर जिनदर्शन की निन्दा को ढकने के लिए सेठजी ने कहा - मेरे कहने से ही यह रत्न इस प्रकार यहाँ लाये हैं। अरे आप लोगों ने यह गलत किया जो इन महा तपस्वी को चोर की उद्घोषणा कर दी। सिपाही उन क्षुल्लक को प्रणाम करके चले गए। सेठ ने उन्हें रात्रि में निकाल दिया। इस प्रकार अन्य भी सम्यग्दृष्टि जन को अभक्त, असमर्थ और अज्ञानी पुरुषों से जिनदर्शन में आये हुए दोषों को ढाँकना चाहिए।

11. स्थितिकरण अंग की कथा

मगधदेश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक रहते थे। जिनकी रानी चेलना थी, उनका वारिषेण नाम का पुत्र था। वारिषेण एक उत्तम श्रावक थे, एक दिन चतुर्दशी की रात्रि में उपवास करके वह श्मशान में कायोत्सर्ग से खड़े थे। उसी दिन उद्यान में क्रीड़ा के लिए मगध सुन्दरी वेश्या आयी थी। उसने श्रीकीर्ति सेठानी के गले में एक दिव्य हार पड़ा देखा। उसे देखकर वह सोचने लगी इस अलंकार के बिना मेरा जीवन ही क्या? यह सोचते हुए शय्या पर पड़ी थी, तब रात्रि में उसके प्रेमी विद्युत् चोर ने आकर पूछा - प्रिये! आज तुम इस प्रकार उदास क्यों हो? मगधसुन्दरी ने कहा - श्रीकीर्ति सेठानी का हार यदि तुम मुझे लाकर दोगे तभी में जीवित रह पाऊँगी और तभी तुम मेरे स्वामी हो सकते हो अन्यथा नहीं। इस प्रकार सुनकर हार लेने के लिए अर्ध रात्रि में जाकर अपनी कुशलता से हार को चुरा लिया। चोरी करके जाते हुए हार की चमक से गृह रक्षकों और सिपाहियों ने यह जान लिया कि यह चोर है, पकड़ने के लिए दौड़े, अपने को दौड़ने में असमर्थ जानकर विद्युत् चोर वारिषेण के आगे उस हार को रखकर छिपकर बैठ गया। सिपाहियों ने वारिषेण को इस प्रकार खड़ा देखकर श्रेणिक को कहा हे प्रभो! वारिषेण चोर है, यह सुनकर श्रेणिक ने कहा - इस चोर का मस्तक काट दो। चाण्डाल ने जब तलवार सिर काटने को चलायी तो वह उनके गले में पुष्पमाला हो गयी। इस अतिशय को सुनकर श्रेणिक ने जाकर वारिषेण

वारिषेणश्चोर इति श्रुत्वा तेनोक्तम्-मोषकस्यास्य मस्तकं गृह्यतामिति। मातङ्गेन च योऽसिः शिरोग्रहणार्थं वाहितः स कण्ठे तस्य पुष्पमाला बभूव। तमतिशयमाकर्ण्य श्रेणिकेन गत्वा वारिषेणक्षमां कारितो लब्धाभयप्रदानेन विद्युच्चोरेण राज्ञो निजवृत्तान्ते कथिते वारिषेणो गृहे नेतुमारब्धः। तेन चोक्तम्- मया पाणिपात्रे भोक्तव्यमिति। ततोऽसौ सूरदेवमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा राजगृहसमीपे पलाशकुटग्रामे चर्यां स प्रविष्टः। तत्र श्रेणिकस्य योऽग्निभूतिः मन्त्री तत्पुत्रेण पुष्पडालेन दृष्ट्वा स्थापितश्चर्यां कारयित्वा स सोमिल्लां निजभार्यां पृष्ट्वा प्रभुपुत्रत्वाद् बालसखित्वाच्च स्तोकमार्गानुव्रजनं कर्तुं वारिषेणेन सह निर्गतः। आत्मनो व्याघुटनार्थं क्षीरवृक्षादिकं दर्शयन् मुहुर्मुहुर्वन्दनां कुर्वन् हस्ते धृत्वानीतो विशिष्टधर्मश्रवणं कृत्वा वैराग्यं नीत्वा तपो ग्राहितोऽपि सोमिल्लां न विस्मरति। तौ द्वावपि द्वादशवर्षाणि तीर्थयात्रां कृत्वा वर्धमानस्वामिसमवसरणं गतौ। तत्र वर्धमानस्वामिनः पृथिव्याश्च संबन्धिगीतं देवैर्गीयमानं पुष्पडालेन श्रुतं यथा-

मइल कुचेली दुम्मणी णाहँ पवसियएण।

कह जीवेसइ धणिय धर डज्झंतँ हियएण॥

एतदात्मनः सोमिल्लायाश्च संयोज्य तस्यामुत्कण्ठितश्चलितः। स वारिषेणेन ज्ञात्वा स्थिरीकरणार्थं निजनगरं नीतः। चेलिन्याऽसौ दृष्ट्वा वारिषेणः किं चारित्राच्चलितः आगच्छतीति संचिन्त्य परीक्षार्थं सरागवीतरागे द्वे आसने दत्ते। वीतरागासने वारिषेणेनोपविश्योक्तम्-मदीयमन्तःपुरमानीयताम्। ततश्चेलिनीमहादेव्या

से क्षमा माँगी। विद्युत् चोर ने राजा से अपना सर्व वृत्तान्त कहकर अभयदान प्राप्त किया। श्रेणिक ने वारिषेण से गृह पर चलने के लिए कहा तब वारिषेण ने कहा - मैं अब पाणिपात्र में भोजन करूँगा। इसलिए वे सूरदेव मुनि के समीप जाकर मुनि हो गए। एक बार वारिषेण मुनि राजगृह के निकट पलाश कूट गाँव में चर्या के लिए पहुँचे। वहाँ श्रेणिक का मन्त्री अग्निभूति था। जिनका पुत्र पुष्पडाल था। पुष्पडाल ने मुनि को देखकर उनका पड़गाहन किया और आहार चर्या करवायी। तदनन्तर पुष्पडाल अपनी पत्नी सौमिल्ला को पूछकर राजपुत्र होने के लिहाज से और अपना बाल सखा होने के नाते थोड़ी दूर उनके साथ मार्ग में गमन के लिए वारिषेण मुनि के साथ चल दिया। स्वयं वापस लौटने के लिए मार्ग में क्षीरवृक्ष आदिक को दिखाते हुए और वन्दना करते हुए बार-बार हाथ जोड़ता आया, किन्तु वारिषेण मुनि उसे अपने स्थान पर ले आए। विशेष धर्म का श्रवण करके वैराग्य से युक्त होकर पुष्पडाल ने दीक्षा ग्रहण कर ली, किन्तु वह सौमिल्ला पत्नी को नहीं भूल पाये। दोनों मुनिराजों के साथ में रहते हुए बारह वर्ष बीत गए। एक बार तीर्थयात्रा करके वर्धमान स्वामी के समवसरण में गए। वहाँ देवों के द्वारा वर्धमान स्वामी और पृथ्वी सम्बन्धी गीत गाये जा रहे थे, जिसे पुष्पडाल ने सुना, वह इस प्रकार था - "मैली कुचैली मलिन पृथ्वी भी अपने नाथ के चले जाने पर कैसे जीवित रहे उसके वियोग में यह पर्वत भी हृदय से दुःखी थे, सूने पड़े थे।"

इस पद को पुष्पडाल ने सौमिल्ला से जोड़कर उसके लिए उत्कण्ठित हो गए और चल दिए। वारिषेण मुनि ने उनके मन की बात जानकर स्थितिकरण के लिए उन्हें अपने नगर में ले गए। चेलना ने जब वारिषेण को देखा तो सोचा क्या यह चारित्र से विचलित हो गए इसलिए वापस घर आ रहे हैं। इसकी परीक्षा के लिए उसने बैठने के दो आसन दिए जिनमें एक सराग था अर्थात् रत्नजड़ित था, दूसरा वीतराग था। वीतराग आसन पर वारिषेण ने बैठकर कहा मेरी स्त्रियों को बुलाओ। तदुपरान्त चेलिनी महादेवी ने वत्सपाल की कथा कही तो वारिषेण ने अगन्धन सर्प की कथा कही। तब चेलिनी महादेवी बत्तीस रानियों को सजा-धजा करके ले आयी फिर

वत्सपालककथा वारिषेणेन अगन्धनसर्पकथा। ततश्चेलिनीमहादेव्या द्वात्रिंशद्भार्याः सालंकारा आनीताः। ततः पुष्पडालो वारिषेणेन भणितः। इदं मदीयं युवराजपदं त्वं गृहाण। तच्छ्रुत्वा पुष्पडालोऽतीव लज्जितः परमवैराग्यं गतः परमार्थेन तपः कर्तुं लग्न इति।।

12. वात्सल्याख्यानकम्

यथा-अवन्तीदेशे उज्जयिन्यां राजा श्रीवर्मा, राज्ञी श्रीमती, बलिर्बृहस्पतिः प्रह्लादो नमुचिश्चेति चत्वारो मन्त्रिणः। तत्रैकदा समस्तश्रुतधरा दिव्यज्ञानिनः सप्तशतमुनिसमन्विता अकम्पनाचार्या आगत्योद्यानवने स्थिताः। समस्तसंघश्च वारितो राजादिकेऽप्यायाते केनापि जल्पनं न कर्तव्यमन्यथा समस्तसंघस्य नाशो भविष्यतीति। राज्ञा च धवलगृहस्थितेन पूजाहस्तं नगरीजनं गच्छन्तं दृष्ट्वा मन्त्रिणः पृष्टाः। क्वायं लोको अकालयात्रायां गच्छतीति। तैरुक्तम्-क्षपणका बहवो बहिरुद्याने आयातास्तत्रायं जनो याति। वयमपि तान् द्रष्टुं गच्छाम इति भणित्वा राजापि चतुर्मन्त्रिभिः समन्वितो गतः। प्रत्येकं सर्वे वन्दिता न केनाप्याशीर्वादो दत्तः। दिव्यानुष्ठानेनाति-निःस्पृहास्तिष्ठन्तीति संचिन्त्य व्याघुटिते राज्ञि मन्त्रिभिर्दुष्टाभिप्रायैरुपहासः कृतः। बलीवर्दा एते किंचिदपि न जानन्ति मूर्खा दम्भमौनेन स्थिताः। एवं ब्रुवाणैर्गच्छद्भिरग्रे चर्यां कृत्वा श्रुतसागरमुनिमागच्छन्तमालोक्य उक्तमयं तरुणबलीवर्दः पूर्णकुक्षिरागच्छति। एतदाकर्ण्य तेन राज्ञोऽग्रेऽनेकान्तवादेन जिताः। अकम्पनाचार्यस्य चागत्य वार्ता कथिता। तेन चोक्तम्-सर्वसंघस्त्वया मारितो यदि वादस्थाने गत्वा रात्रौ त्वमेकाकी तिष्ठसि तदा संघस्य

वारिषेण ने पुष्पडाल से कहा - यह मेरा युवराज पद तुम ग्रहण करो, जिसे सुनकर पुष्पडाल अत्यन्त लज्जित हो गए और परम वैराग्य को प्राप्त हुए और फिर परमार्थ तप करने में संलीन हो गए।

12. वात्सल्य अंग की कथा

अवन्ती देश के उज्जयिनी नगरी में राजा श्रीवर्मा रहते थे, जिनकी रानी श्रीमति थी। राजा के चार मन्त्री बलि, बृहस्पति, प्रहलाद और नमुचि थे। उनकी नगरी के उद्यान में एक बार सकलश्रुत के धारी दिव्य ज्ञानी अकम्पन आचार्य सात सौ मुनियों के साथ आकर रुक गए। आचार्य देव ने समस्त संघ को कहा - राजा मंत्री आदि के आने पर किसी से भी कोई बात न करें, अन्यथा समस्त संघ का नाश होगा। श्वेतगृह में स्थित राजा ने जब पूजा की सामग्री हाथ में लिए नगरी के लोगों को जाते हुए देखा तो मन्त्रियों को पूछा - यह लोग अकाल में यात्रा करने कहाँ जा रहे हैं? तब मन्त्रियों ने कहा - बहुत सारे मुनि बाहर उद्यान में आकर विराजे हैं, ये लोग वहीं जाते हैं। हम सबको भी उन्हें देखने चलना है, इस प्रकार कहकर राजा अपने चारों मन्त्रियों के साथ चले। वहाँ पहुँच कर सबने मुनियों की वन्दना की किन्तु किसी ने आशीर्वाद नहीं दिया। ये सब लोग दिव्य अनुष्ठान करते हुए अति निःस्पृह होकर बैठे हैं, इस प्रकार सोचकर वापस जाते हुए राजा से मंत्रियों ने दुष्ट अभिप्राय से उनकी हँसी की। ये बैल हैं, मूर्ख हैं, जो कुछ भी नहीं जानते इसलिए मौन का बहाना बनाये बैठे हैं। इस प्रकार कहते हुए वे सब चले जा रहे थे कि आगे से चर्या करके श्रुतसागर मुनि को आते देखा तो उन्हें देखकर कहा - यह एक तरुण बैल पूर्ण उदर भरकर चला आ रहा है। मुनि ने यह सुनकर राजा के सामने ही उन मंत्रियों को अनेकान्तवाद से जीत लिया। श्रुतसागर मुनि ने अकम्पन आचार्य को आकर यह बात बतायी, तब आचार्य देव ने कहा तुमने सर्व संघ का घात कर दिया, यदि वाद-विवाद के स्थान पर जाकर तुम रात्रि में अकेले रुकते हो तभी सर्व संघ की कुशल हैं और तुम्हारी शुद्धि होगी। तब वह मुनि उसी स्थान पर जाकर कायोत्सर्ग से स्थित हो गए। उधर चारों

जीवितव्यं तव शुद्धिश्च भवति। ततोऽसौ तत्र गत्वा कायोत्सर्गेण स्थितः। मन्त्रिभिश्चातिलज्जितैः क्रुद्धै रात्रौ संघं मारयितुं गच्छद्भिस्तमेकं मुनिमालोक्य येन परिभवः कृतः स एव हन्तव्य इति पर्यालोच्य तद्वधार्थं युगपच्चतुर्भिः खड्गा उद्गीर्णाः। कम्पितनगरदेवतया तथैव ते कीलिताः। प्रभाते तथैव सर्वलोकैर्दृष्टाः, रुष्टेन राज्ञा क्रमागता इति न मारिता, गर्दभारोहणादिकं कारयित्वा देशान्निर्धाटिताः। अथ कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे राजा महापद्मो, राज्ञी लक्ष्मीमती, पुत्रो पद्मोऽन्यो विष्णुश्च। एकदा पद्माय राज्यं दत्वा महापद्मो विष्णुना सह श्रुतसागरचन्द्राचार्यसमीपे मुनिर्जातः। ते च बलिप्रभृतय आगत्य पद्मराजस्य मन्त्रिणो जाताः। कुम्भपुरनगरे च सिंहबलो राजा दुर्गबलात्पद्ममण्डलस्योपद्रवं करोति। तद्ग्रहणचिन्तया पद्मं दुर्बलमालोक्य बलिनोक्तम्-किं देव दौर्बल्यस्य कारणमिति। कथितं च राज्ञा। तत् श्रुत्वा आदेशं याचयित्वा तत्र गत्वा बुद्धिमाहात्म्येन दुर्गं भङ्क्त्वा सिंहबलं गृहीत्वा व्याघुट्यागतेन पद्मस्यासौ समर्पितः, देव, सोऽयं सिंहबल इति। तुष्ट्वा तेनोक्तम्- वाञ्छितं वरं प्रार्थयेति। बलिनोक्तम्, यदा प्रार्थयिष्यामि तदा दीयतामिति। अथ कतिपयदिनेषु विहरन्तस्ते अकम्पनाचार्यादयः सप्तशतमुनयस्तत्रागताः। पुरक्षोभाद् बलिप्रभृतिभिर्भीत्या परिचिन्तितम्। राजा एतद्भक्त इति पर्यालोच्य भयात्तन्मारणार्थं पद्मः पूर्वं प्रार्थितः। सप्तदिनान्यस्माकं राज्यं देहीति। ततोऽसौ सप्तदिनानि राज्यं दत्वा अन्तःपुरे प्रविश्य स्थितः। बलिना च आतापनगिरौ कायोत्सर्गेण स्थितान्मुनीन् वृत्यावेष्ट्य मण्डपं कृत्वा यज्ञः कर्तुमारब्धः। उत्सृष्टशरावच्छागादिजीवकलेवरैर्धूमैश्च मुनीनां मारणार्थमुपसर्गः कृतः। मुनयश्च द्विविधसंन्यासेन स्थिताः। अथ

मंत्री अति लज्जा के कारण क्रुद्ध थे, इसलिए रात्रि में संघ को मारने के लिए चले, जाते हुए उन्होंने एक मुनि को देखा। इसने ही मुझे हराया था, इसलिए इसको मारना चाहिए, इस प्रकार जानकर उसका वध करने के लिए एक साथ चारों ने अपनी तलवारें निकाल ली। नगर देवी कम्पायमान हो गयी जिससे उन मंत्रियों को देवी ने कीलित कर दिया। सुबह होने पर उनकी स्थिति को सब लोगों ने देखा। राजा ने क्रोध से कहा तुम लोग राज क्रम से मंत्रीपद पर आये हो इसलिए तुम्हें नहीं मारा और गधों पर बैठाकर देश से निकालने की आज्ञा दी। कुरुजांगल देश के हस्तिनागपुर के राजा महापद्म और रानी लक्ष्मीमति थी। उनके पद्म और विष्णु नाम के दो पुत्र थे। एक बार पद्म को राज्य देकर राजा महापद्म अपने छोटे पुत्र विष्णुकुमार के साथ श्रुतसागरचन्द्र आचार्य के पास जाकर मुनि हो गए। उधर वे बलि आदि मंत्री आकर पद्म राजा के मंत्री हो गए। कुम्भपुर नगर का राजा सिंहबल किले के कारण पद्म की सेना पर उपद्रव करता है। उसकी चिन्ता से राजा पद्म को दुर्बल जानकर बलि आदि मंत्री ने कहा हे प्रभो! इस उदासी का कारण क्या है। राजा ने सब बात बता दी। जिसे सुनकर आदेश की मांग करके वहाँ जाकर बुद्धि के माहात्म्य से किले को तोड़कर सिंहबल को पकड़ लिया और वापस आकर राजा पद्म को समर्पित कर कहा प्रभो! यही वह सिंहबल है, इस प्रकार राजा को संतोष हुआ। जिससे राजा पद्म ने कहा आप लोग अपने इच्छित वस्तु की प्रार्थना करो। मंत्रियों ने कहा जब प्रार्थना करूँगा तब आप वह वस्तु देना। इस प्रकार कुछ दिन बीत जाने पर अकम्पन आचार्य अपने सात सौ मुनियों के साथ वहाँ आ पहुँचे। सारे नगर में हलचली मच गयी जिससे बलि आदि मंत्री डर के कारण चिन्तित हो गए। राजा तो इन मुनियों का भक्त है, इस बात से डर कर उन मुनियों को मारने के लिए पूर्व वर की प्रार्थना की। हे राजन्! सात दिन के लिए हमको राज्य दे दो। राजा पद्म सात दिन का राज्य उन मंत्रियों को देकर रणवास में जाकर ठहर गए। बलि आदि मंत्रियों ने आतापन गिरि पर कायोत्सर्ग से स्थित मुनियों को चारों ओर से घेरकर मण्डप बनाकर यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। छोड़े हुए

मिथिलानगर्यामर्धरात्रे बहिर्विनिर्गतश्रुतसागरचन्द्राचार्येणाकाशे श्रवणनक्षत्रं कम्पमानमालोक्यावधिज्ञानेन ज्ञात्वा भणितम्- महामुनीनां महानुपसर्गो वर्तते। तच्छ्रुत्वा पुष्पदन्तनाम्ना विद्याधरक्षुल्लकेन पृष्टम्-भगवन्, क्व केषां मुनीनाम्। हस्तिनागपुरे अकम्पनाचार्यादीनाम्। स उपसर्गः कथं नश्यति। धरणिभूषणगिरौ विष्णुकुमारमुनिर्विक्रियर्द्धि संपन्नस्तिष्ठति, स नाशयति। एतदाकर्ण्य तत्समीपे गत्वा क्षुल्लकेन विष्णुकुमारस्य सर्वस्मिन् वृत्तान्ते कथिते मम किं विक्रिया-ऋद्धिरस्तीति संचिन्त्य तत्परीक्षणार्थं हस्तः प्रसारितः। स गिरिं भित्त्वा दूरे गतः। ततस्तां निर्णीय तत्र गत्वा पद्मराजो भणितः- किं त्वया मुनीनामुपसर्गः कारितः। भवत्कुले केनापीदृशं न कृतम्। तेनोक्तम्- किं करोमि, पूर्वमस्य वरो दत्त इति। ततो विष्णुकुमारमुनिना वामनब्राह्मणरूपं धृत्वा दिव्यध्वनिना प्रार्थनं कृतम्। बलिनोक्तम्-किं तुभ्यं दीयते। तेनोक्तम्- भूमेः पादत्रयं देहि। ग्रहिलब्राह्मण, बहुतरमन्यत्प्रार्थयेति वारंवारं लोकैर्भण्यमानोऽपि तावदेव च याचते। हस्तोदकादिविधिना भूमिपादत्रये दत्ते तेनैकपादो मेरौ दत्तो, द्वितीयपादो मानुषोत्तरगिरौ, तृतीयपादेन देवविमानादीनां क्षोभं कृत्वा बलिपृष्टे तं पादं दत्वा बलिं बन्धयित्वा मुनीनामुपसर्गो निवारितः। ततस्ते चत्वारो मन्त्रिणः पद्मश्च भयादागत्य विष्णुकुमारमुनेरकम्पनाचार्यादीनां च पादेषु लग्नाः। ते मन्त्रिणः श्रावकाश्च जाता इति व्यन्तरदेवैः सुघोषवीणात्रयं दत्तं विष्णुकुमारपादपूजार्थम्।

सकोरे, बकरा, बकरी आदि जीवों के शरीर के धुँए से मुनियों को मारने के लिए उपसर्ग किया। मुनि लोग दोनों प्रकार का संन्यास धारण किए हुए थे। तदनन्तर मिथिला नगरी में अर्धरात्रि में बाहर निकल कर श्रुतसागरचन्द्र आचार्य ने आकाश में श्रवण नक्षत्र को कम्पायमान देखकर अवधिज्ञान से जानकर कहा - महामुनियों पर महान् उपसर्ग हो रहा है। यह सुनकर पुष्पदन्त नाम के विद्याधर क्षुल्लक ने पूछा - भगवन्! कहाँ उपसर्ग हो रहा है? किन मुनियों पर हो रहा है? भगवन् ने उत्तर दिया कि हस्तिनागपुर में अकम्पन आचार्य आदि मुनियों पर। प्रभो! उस उपसर्ग का निवारण कैसे होगा? भगवन् ने कहा - धरणिभूषण पर्वत पर विष्णुकुमार मुनि विक्रिया ऋद्धि से सम्पन्न हैं, वे ही इसका निवारण कर सकते हैं। यह सुनकर उनके समीप क्षुल्लकजी ने विष्णुकुमार मुनि को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। क्षुल्लकजी के कहने पर मुनि ने सोचा क्या मुझे विक्रिया ऋद्धि की प्राप्ति है? इसकी परीक्षा के लिए उन्होंने हाथ फैलाया, वह हाथ पर्वत को भेदकर दूर तक चला गया। तब ऋद्धि का निर्णय हो जाने पर वहाँ जाकर राजा पद्म से कहा- क्या तुम्हारे द्वारा मुनियों पर ऐसा उपसर्ग किया जा रहा है। आपके कुल में इस प्रकार पहले किसी ने नहीं किया, राजा ने कहा - मैं क्या करूँ मैंने उनको पहले वर (वचन) दे दिया था। तब विष्णुकुमार मुनि ने वामन ब्राह्मण का रूप धारण कर दिव्यध्वनि करते हुए प्रार्थना की। बलि ने कहा - तुम्हारे लिए क्या दें? तब ब्राह्मण ने कहा मुझे तीन पाद मात्र भूमि दे दो। लोगों ने बार-बार कहा मूर्ख ब्राह्मण और अधिक माँग लो, किन्तु ब्राह्मण बार-बार वही कहता। हाथ में जल लेकर विधिपूर्वक संकल्प से तीन पग भूमि दे दी। तब ब्राह्मण ने एक पैर सुमेरु पर रखा, दूसरा मानुषोत्तर पर्वत पर रखा । तीसरे पग से देव विमान आदि को क्षुब्ध करके बलि की पीठ पर रखा तथा बलि को बाँधकर मुनियों के उपसर्ग को दूर किया। तब वे चारों मन्त्री और राजा पद्म डर से आकर विष्णुकुमार मुनि, अकम्पनाचार्य और मुनि गण के पैरों में गिर गए। वे मन्त्री श्रावक हुए और व्यन्तर देवों ने तीन वीणायें बजायी, जिनकी ध्वनि बहुत मधुर थी, इस प्रकार देवों ने विष्णुकुमार मुनि के चरण कमलों की पूजा की।

13. प्रभावनाख्यानकम्

यथा-हस्तिनागपुरे बलराजस्य पुरोहितो गरुडस्तत्पुत्रः सोमदत्तः [तेन] सकलशास्त्राणि पठित्वा अहिच्छत्रनगरे निजमामसुभूतिपार्श्वे गत्वा भणितम्- माम, मां दुर्मुखराजस्य दर्शयेति। तेन गर्वितेन न स दर्शितः। ततो ग्रहिलो भूत्वा भूपसभायां स्वयमेव तं दृष्ट्वा आशीर्वादं दत्वा सर्वशास्त्रकुशलत्वं प्रकाश्य मन्त्रिपदं लब्धवान्। तं तथाभूतमालोक्य सुभूतिमामो यज्ञदत्तां पुत्रीं परिणेतुं दत्तवान्। एकदा तस्या गुर्विण्या वर्षाकाले आम्रफलभक्षणे दोहलको जातः। सोमदत्तेन तान्याम्रवने अन्वेषयता यत्राम्रवृक्षे सुमित्राचार्यो योगं गृहीतवान्नास्ते नानाफलैः फलितं दृष्ट्वा तस्मात्तान्यादाय पुरुषहस्ते प्रेषितवान्, स्वयं च धर्मं श्रुत्वा निर्विण्णस्तपो गृहीत्वा आगममधीत्य परिणतो भूत्वा नाभिगिरावातापनेन स्थितः। यज्ञदत्ता च पुत्रं प्रसूता। तं वृत्तान्तं श्रुत्वा बन्धुसमीपं गता। तस्य च शुद्धिं ज्ञात्वा बन्धुभिः सह नाभिगिरिं गत्वा तमातापनस्थमालोक्यातिकोपात्तत्पादो-परि बालकं धृत्वा दुर्वचनानि दत्वा गृहं गता। अत्र प्रस्तावे दिवाकरदेवनामा विद्याधरोऽमरावतीपुर्याः पुरन्दरदेवनाम्ना लघुभ्रात्रा राज्यान्निर्धाटितः सकलत्रो मुनिं वन्दितुमायातस्तं बालं गृहीत्वा निजभार्यायाः समर्प्य वज्रकुमार इति नाम कृत्वा गतः। स च वज्रकुमारः कनकनगरे विमलवाहननिजमैथुनकसमीपे सर्वविद्यापारगो युवा च क्रमेण जातः। अथ गरुडवेगाङ्गवत्योः पुत्री पवनवेगा ह्रीमन्तपर्वते प्रज्ञप्तिविद्यां महाश्रमेण साधयन्ती पवनाकम्पितबदरीचक्रकण्टकेन लोचने विद्धा।

---

13. प्रभावना अंग की कथा

हस्तिनागपुर में बल राजा राज्य करते थे, उनके मंत्री का नाम गरुड़ था। उनका पुत्र सोमदत्त था। वह सकल शास्त्रों को पढ़कर अहिच्छत्र नगर में मामा सुभूति के पास गया। सोमदत्त ने मामा से कहा कि मुझे दुर्मुख राजा का दर्शन करा दो। मामा ने गर्व के कारण सोमदत्त को दर्शन नहीं करवाया। तब स्वयं दर्शन करने की इच्छा करके राजा की सभा में स्वयं ही चला गया और राजा को देखकर आशीर्वाद देकर सर्वशास्त्र में पाण्डित्य को दिखाया। जिससे वह राजा के यहाँ मन्त्री पद पर उपस्थित हो गया। उसको इस प्रकार मंत्री बना जानकर सुभूति मामा ने यज्ञदत्ता पुत्री को सोमदत्त से ब्याह दिया। एक बार वर्षाकाल के समय गर्भवती यज्ञदत्ता को आम का फल खाने का दोहला हुआ। सोमदत्त ने आम्रवन में आम को खोजते हुए एक आम्रवृक्ष देखा, जिसके नीचे सुमित्र आचार्य योग धारण किए विराजे थे, बहुत प्रकार के फलों से लदे हुए वृक्ष को देखकर उस वृक्ष से फल लेकर दूसरे पुरुष को दे दिए और यज्ञदत्ता के पास भेज दिए। स्वयं सोमदत्त धर्म श्रवण कर निर्वेग भाव को प्राप्त हुआ और दीक्षा ग्रहण कर आगम का अध्ययन किया। आगम में कुशल होकर नाभिगिरि पर आतापन योग से स्थित हो गए। इधर यज्ञदत्ता को पुत्र की प्राप्ति हुई। सोमदत्त की दीक्षा का वृत्तान्त सुनकर यज्ञदत्ता अपने भाई के पास गयी। सोमदत्त की शुद्धि (दीक्षा) की बात बतायी और अपने बन्धुओं को साथ लेकर नाभिगिरि पर पहुँची। सोमदत्त मुनि को आतापन योग में स्थिर देख अति कुद्ध होकर बालक को पैरों में रख दिया और बहुत दुर्वचन कहकर घर चली गयी। इसी प्रसंग में दिवाकर देव नाम का विद्याधर जो कि अमरावती नगरी का राजा था उसको पुरन्दर देव नाम के लघु भ्राता ने राज्य से निकाल दिया था। वह दिवाकर देव अपनी पत्नी के साथ मुनि की वन्दना करने के लिए आया था। वहाँ उस बालक को पैरों में पड़ा देखकर उसने उठा लिया और अपनी स्त्री को दिया। उसका नाम वज्रकुमार रखकर तथा साथ लेकर वह विद्याधर चला गया। वह वज्रकुमार कनकनगर में अपने मामा विमलवाहन के पास गया। वह धीरे-धीरे सभी विद्याओं में विशारद हो गया और युवापन को प्राप्त हुआ। एक दिन गरुड़वेग और अंगवती की पुत्री पवनवेगा ह्रीमन्त पर्वत पर प्रज्ञप्ति विद्या की बहुत परिश्रम से सिद्धि कर रही

ततस्तत्पीडया चलचित्ताया विद्या न सिध्यति। वज्रकुमारेण च तां तथा दृष्ट्वा विज्ञानेन कण्टकमुद्धृत्य [तम्।] ततः स्थिरचित्तायास्तस्या विद्या सिद्धा। उक्तं च तया- भवत्प्रसादेनैषा विद्या मे सिद्धा, त्वमेव भर्तेत्युक्त्वा परिणीता। वज्रकुमारेण च तद्विद्यां गृहीत्वा अमरावतीं गत्वा पितृव्यं संग्रामे जित्वा निर्धाट्य दिवाकरदेवो राज्ये धृतः। एकदा जयश्रीजनन्या निजपुत्रराज्यनिमित्तमसहवत्यान्येन जातोऽन्यं संतापयतीत्युक्तम्। तच्छ्रुत्वा वज्रकुमारेणोक्तम्- तात, अहं कस्य पुत्र इति सत्यं कथय। तस्मिन् कथिते मे भोजनादौ प्रवृत्तिरिति। ततस्तेन पूर्ववृत्तान्तः सर्वः सत्य एव कथितः। तमाकर्ण्य स निजगुरुं द्रष्टुं बन्धुभिः सह मथुरायां क्षत्रियगुहायां गतः। तत्र च सोमदत्तगुरोर्दिवाकरदेवेन वन्दनां कृत्वा वृत्तान्त कथितः। ततः समस्त-बन्धून्महता कष्टेन विसृज्य वज्रकुमारो मुनिर्जातः॥ अत्रान्तरे मथुरायामन्या कथा-

राजा पूतिगन्धो, राज्ञी उर्विला, सा च सम्यग्दृष्टिरतीव जिनधर्मप्रभावनायां रता नन्दीश्वराष्टदिनानि प्रतिवर्षं जिनेन्द्ररथयात्रां त्रिवारान् कारयति। तत्रैव नगर्यां श्रेष्ठी सागरदत्तः, श्रेष्ठिनी समुद्रदत्ता, पुत्री दरिद्रा। मृते सागरे दरिद्रां चैकदा परगृहे निक्षिप्तसिक्थानि भक्षयन्ती चर्यायां प्रविष्टेन मुनिद्वयेन दृष्टा। ततो लघुमुनिनोक्तम्- हा वराकी महता कष्टेन जीवत्येतदाकर्ण्य ज्येष्ठमुनि नौक्तमत्रैवास्य राज्ञः पट्टराज्ञी वल्लभा भविष्यतीति। भिक्षां भ्रमता धर्मश्रीवन्दकेन तद्वचनमाकर्ण्य नान्यथा मुनिभाषितमिति संचिन्त्य स्वविहारे नीत्वा मृष्टाहारैः पोषिता।

थी। हवा के चलने से बेर का काँटा उसकी आँखों में गिर गया। जिससे उस काँटे की पीड़ा से चित्त चलित हो जाने से विद्या सिद्ध नहीं होती थी। वज्रकुमार ने उसको इस प्रकार पीड़ित देख अपने विज्ञान से काँटे को निकाल दिया, तब स्थिरचित्त होने से उसे विद्या की सिद्धि हो गई। तब पवनवेगा ने कहा आपके प्रसाद से मुझे यह विद्या सिद्ध हुई है। आप ही मेरे स्वामी हैं, इस प्रकार पवनवेगा ने वज्रकुमार से विवाह किया। कुछ समय बाद वज्रकुमार उसी प्रज्ञप्ति विद्या को लेकर अमरावती गए। वहाँ पिता के छोटे भाई (पुरंदर देव) को जीतकर बाँध लिया और राज्य दिवाकर देव को दे दिया। एक समय दिवाकर की स्त्री जयश्री अपने पुत्र को राज्य न मिलने के निमित्त से असह्य हो गयी। जयश्री ने वज्रकुमार से कहा - तुम किसी दूसरे के पुत्र हो और दूसरों को परेशान करते हो, जिसे सुनकर वज्रकुमार ने पूछा तात! मैं किसका पुत्र हूँ। मुझे सत्य बताओ जब यह कहोगे तभी मैं भोजन आदि करूँगा। तब दिवाकर देव ने पूर्व की पूरी कथा सच-सच बतायी। उस कथा को सुनकर वह अपने पिता को देखने के लिए अपने बन्धुओं के साथ मथुरा की क्षत्रिय गुफा में गए। वहाँ दिवाकर देव ने वंदना करके सोमदत्त गुरु से सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब वज्रकुमार समस्त साथियों को बहुत कष्ट से छोड़कर मुनि हो गए।

उसी बीच मथुरा नगरी में अन्य घटना घटी - मथुरा के राजा पूतिगन्ध थे, उनकी रानी उर्विला थी वह बहुत दृढ़ सम्यग्दृष्टी थी, सदैव धर्म प्रभावना में संलग्न रहती थी। प्रतिवर्ष नन्दीश्वर के आठ दिनों में जिनेन्द्रदेव की रथयात्रा तीन बार करवाती। उसी नगर में एक सेठ सागरदत्त रहते थे। जिनकी सेठानी समुद्रदत्ता थी। उनके एक दरिद्रा नाम की पुत्री हुई। पिता के मर जाने पर वह बहुत दरिद्र हो गयी। एक बार वह दूसरों के यहाँ पड़े हुए चावलों को खा रही थी तभी चर्या को निकले हुए दो मुनिराजों ने उस दरिद्रा को देखा। छोटे मुनि ने कहा - हा बेचारी! कितने कष्ट से जीवन बिताती है यह सुनकर ज्येष्ठ मुनि ने कहा - यह ही इस राजा पूतिगन्ध की प्रिय रानी होगी। भिक्षा के लिए भ्रमण करते हुए एक बौद्ध भिक्षु धर्मश्री ने महाराज के वचन सुन लिए। उसने सोचा ये मुनि अन्यथा नहीं बोलते इस प्रकार चिन्तन कर वह दरिद्रा को अपने स्थान पर ले गया और अच्छा भोजन

एकदा यौवनभरे चैत्रमासे आन्दोलयन्तीं राजा दृष्ट्वाऽतीव विरहावस्थां गतः। ततो मन्त्रिभिर्वन्दकस्तां तदर्थं याचितः। तेन चोक्तम्- यदि मदीयं धर्मं राजा गृह्णाति तदा ददामीति। तत्सर्वं कृत्वा परिणीता। पट्टमहादेवी तस्य सातिवल्लभा जाता। फाल्गुननन्दीश्वरयात्रायां उर्विलारथयात्रामहाटोपं[1] दृष्ट्वा तया भणितम्देव, मदीयो बुद्धरथोऽधुना पुर्यां प्रथमं भ्रमतु। राज्ञा चोक्तमेवमस्त्विति। तत उर्विला मदीयो रथो यदि प्रथमं भ्रमति तदा ममाहारे प्रवृत्तिरिति प्रतिज्ञां गृहीत्वा क्षत्रियगुहायां सोमदत्ताचार्यपार्श्वे गता। तस्मिन्प्रस्तावे वज्रकुमारमुने-र्वन्दनाभक्त्यर्थमायाता दिवाकरदेवादयो विद्याधरास्तदीयवार्तां श्रुत्वा वज्रकुमारमुनिना ते भणिताः। उर्विलायाः प्रतिज्ञापूरणार्थं रथयात्रा भवद्भिः कर्तव्येति। ततस्तैर्बुद्धदासीरथं भङ्क्त्वा नानाविभूत्या उर्विलाया रथयात्रा कारिता। तमतिशयं दृष्ट्वा पूतिमुखा बुद्धदासी अन्ये च जना जिनधर्मरता जाताः।

14. भगिनीं विडम्बमानामित्यादि

भयणीए विधम्मि (डंबि) ज्जंतीए एयत्तभावणाए जहा।
जिणकप्पिओ ण मूढो खवओ वि ण मुज्झइ तधेव ॥201॥

अत्र कथा-मगधदेशे राजगृहनगरे राजा प्रजापालो, राज्ञी प्रियधर्मा, तत्पुत्रौ प्रियधर्मप्रियमित्रौ। तौ तपः कृत्वाच्युतस्वर्गे गतौ। तत्र प्रियधर्मणा उक्तम्- आवयोर्मध्ये यो मनुष्यलोके प्रथममुपद्यते तेन स प्रबोधयित्वा तपो

कराकर उसका पालन-पोषण किया। एक बार चैत्र मास में यौवन से परिपूर्ण दरिद्रा को झूला झूलते हुए राजा ने देखा, जिसे देखकर राजा अत्यन्त विरह अवस्था का अनुभव करने लगा। तब मंत्रियों ने जाकर उस दरिद्रा के लिए धर्मश्री से प्रार्थना की। धर्मश्री ने कहा - यदि राजा मेरे धर्म को ग्रहण करता है तो मैं इसे दूँगा अन्यथा नहीं। राजा ने यह सब बात स्वीकार कर ली और विवाह कर लिया। वह दरिद्रा राजा की अत्यन्त प्रिय रानी होकर पट्टमहादेवी हुई। फाल्गुन की नन्दीश्वर यात्रा में उर्विला की रथ यात्रा का महोत्सव देखकर दरिद्रा ने राजा से कहा - हे प्रभो! मेरा बौद्ध रथ आज नगरी में पहले भ्रमण करेगा। राजा ने कहा कि ऐसा ही होगा। तब उर्विला ने प्रतिज्ञा की यदि मेरा रथ पहले निकलेगा तभी मैं आहार करूँगी। ऐसी प्रतिज्ञा लेकर वह क्षत्रिय गुफा में सोमदत्त आचार्य के पास गयी। उसी समय वज्रकुमार मुनि की वंदना भक्ति के लिए दिवाकर देव आदि विद्याधर आये थे। इस वार्ता को सुनकर वज्रकुमार मुनि ने उनसे कहा - उर्विला की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने के लिए आप लोगों को यह रथ यात्रा कराना है। तब उन लोगों ने बुद्धदासी दरिद्रा का रथ भंग कर दिया और अनेक प्रकार की विभूतियों के साथ रथ यात्रा करवायी। इस अतिशय को देखकर दुर्गन्ध मुख वाली बुद्धदासी और अन्य प्रजा जिनधर्म में अनुरक्त हो गयी।

14. जिनकल्पी नागदत्त मुनि की कथा

भयणीए विधम्मि (डंबि) ज्जंतीए एयत्तभावणाए जहा।
जिणकप्पिओ ण मूढो खवओ वि ण मुज्झइ तधेव ॥201॥

अर्थ - जैसे जिनकल्पी, जिन लिंगधारी जो नागदत्त नाम के मुनि अयोग्य कार्य करने वाली अपनी बहिन में भी एकत्व भावना के बल से मूढ़ता को नहीं प्राप्त हुए उसी प्रकार अन्य मुनि और क्षपक भी एकत्व भावना के

1. महारोषे-इति पाठान्तरं

ग्राहितव्य इति। उज्जयिनीनगर्यां राजा नागधर्मो, राज्ञी नागदत्ता, तयोः प्रियमित्रदेवो नागदत्तनामा पुत्रो जातः। समस्तकलाभिज्ञः सर्पक्रीडायामतीव रतः। एकदा प्रियधर्मदेवः तत्संबोधनार्थं डोम्बवेषं कृत्वा पिट्टारके सर्पद्वयं गृहीत्वा गलगर्जं कुर्वन्नुज्जयिन्यां प्रविष्टो नागदत्तेन धृतः त्वदीयसर्पक्रीडामहं करोमि। तेनोक्तम्- राजपुत्रैः सह नाहं वादं करोमि। राजा रुष्टो मां मारयतीति। ततो नागदत्तेन राज्ञोऽग्रे नीत्वाभयप्रदानं दापयित्वा नानाविधक्रीडायामेकः सर्पो जितः। ततस्तुष्टेन नागदत्तेनोक्तं, द्वितीयमपि सर्पं मुञ्चेति। डोम्बेनोक्तम् - अयं सर्पो दुष्टो, यदि खादति तदास्य न किंचित्प्रतिविधानमस्तीति। ततः रुष्टेन नागदत्तेनोक्तम्-मन्त्रमुद्रामण्डलधारणाभिज्ञस्य किमसौ वराकः कर्तुं शक्त इति। ततो डोम्बेन राजादीन् साक्षिणः कृत्वा मम दोषो नास्तीत्युक्त्वा मुक्तः सर्पः। तेन च गत्वा सौ खादितस्ततो निश्चलोऽसौ भूमौ पतितः। राज्ञा च सर्वे मन्त्रवादिन आकारितास्तैश्च कालदष्टोऽयं न जीवतीत्युक्त्वा अर्धराज्यं भणित्वा राज्ञा तस्यैव डोम्बस्य समर्पितः। तेनोक्तम्- ममाज्ञा समस्ति तया कालदष्टोऽपि जीवति, यद्युत्थितस्तपो गृह्णाति। राज्ञोक्तमेवमस्त्विति। ततस्तेनासावुत्थापितो दमधरमुनिपादमूले यतिर्जातः। ततो डोम्बरूपं परित्यज्य देवः प्रकटीभूय पूर्वं वृत्तान्तं कथयित्वा स्वर्गं गतः। नागदत्तमुनिश्च जिनकल्पेनाचरणविशेषेण चरतीति जिनकल्पिको भूत्वा नानातीर्थवन्दनां कृत्वा महाटव्यामागच्छन्नवरुद्धमार्गैः सूरदत्तचरैर्धर्तुमारब्धोऽयमात्मीयानग्रे

बल से भाई, बहिन आदि में मूढ़ता को नहीं प्राप्त करें।

कथा - मगध देश में राजगृह नगर में राजा प्रजापाल थे, जिनकी रानी प्रियधर्मा थी, उनके दो पुत्र प्रियधर्म और प्रियमित्र थे। वे दोनों दीक्षा ग्रहण कर अच्युत स्वर्ग में गए। तब प्रियधर्म देव ने कहा - हम दोनों में जो मनुष्य लोक में पहले जन्म लेगा वह (स्वर्गस्थ देव) दूसरे को सम्बोधन कराके दीक्षा ग्रहण करने के लिए प्रेरित करेगा। उज्जयिनी नगरी में राजा नागधर्म था, रानी नागदत्ता थी उन दोनों के वह प्रियमित्र देव नागदत्त नाम का पुत्र हुआ। वह समस्त कलाओं का जानकार हो गया और सदैव सर्प क्रीड़ा में अत्यन्त रत रहता। एकबार प्रियधर्म देव नागदत्त को सम्बोधन करने के लिए गारुड़ी का वेष बनाकर पिटारी में दो सर्पों को रखकर आवाज लगाते हुए उज्जयिनी में आया। नागदत्त ने सर्प ले लिए और कहा तुम्हारे सर्पों से मैं क्रीड़ा करूँगा। प्रियधर्म देव ने कहा राजपुत्र के साथ मैं प्रतियोगिता नहीं करूँगा। कहीं राजा रुष्ट हो गया तो मुझे मार डालेगा। तब नागदत्त ने राजा के पास जाकर गारुड़ी को अभय दिलवा दिया। बहुत प्रकार क्रीड़ा के उपरान्त नागदत्त ने एक सर्प जीत लिया तब संतुष्ट होते हुए नागदत्त ने कहा दूसरे सर्प को भी निकालो। गारुड़ी ने कहा यह सर्प दुष्ट है, यदि यह सर्प ने काट खाया तो उसका कोई इलाज भी नहीं है, ऐसा कहने पर नागदत्त ने क्रुद्ध होकर कहा जो मन्त्र, मुद्रा, मण्डल को धारण करना (मंत्रित करना) जानता है उसके लिए यह बेचारा सर्प क्या कर सकता है? तब गारुड़ी ने राजा को साक्षी कर सभी के सामने कहा मेरा इसमें कोई दोष नहीं है और सर्प छोड़ दिया। सर्प ने जाकर नागदत्त को खा लिया जिससे वह निश्चेष्ट हो भूमि पर गिर पड़ा। राजा ने सभी मन्त्र को जानने वालों को बुलाया पर सबने कहा इसे कालसर्प ने काटा है यह जीवित नहीं होगा। राजा ने घोषणा की कि नागदत्त को जीवित करने पर आधा राज्य उस वैद्य को दिया जायेगा। राजा ने नागदत्त को गारुड़ी को सौंप दिया। गारुड़ी ने कहा यदि सर्प के लिए मैं आज्ञा दूँ तो काल के द्वारा डसा हुआ भी जीवित हो जाय किन्तु यदि नागदत्त उठ गया तो आप उसे दीक्षा धारण करायें। राजा ने कहा - ऐसा ही होगा। तब गारुड़ी ने नागदत्त को ठीक कर दिया, नागदत्त ने दमधर मुनि के पादमूल में दीक्षा ग्रहण की और यति हो गए। तब देव गारुड़ी रूप को छोड़कर असली रूप में प्रकट हुआ और पूर्व की कथा

गत्वा कथयिष्यतीति। सूरदत्तेनोक्तम्- न किमपि वदत्ययं परमवीतरागः पश्यन्नपि न पश्यतीति मुच्यताम्। अथ या नागदत्तस्य लघुभगिनी नागश्रीर्वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां जिनदत्ताजिनदत्तयोः पुत्राय जिनपालकुमाराय दत्ता। तां गृहीत्वा बहुभाण्डागारपरिजनेन सह गच्छन्त्या नागदत्तया मुनिर्दृष्टः। संतोषेण हृष्टया प्रणम्य पृष्टो भगवन्नग्रे मार्गशुद्धिरस्ति न वेति। स मौनं कृत्वा गतः। ततः सा वन्दनां कृताग्रे गता। चौरैश्च सर्वमर्थमुद्वाल्याग्रे कृत्वा द्वे अपि सूरदत्तस्याग्रे नीते। सूरदत्तेन चोक्तम्- दृष्टं भवद्भिः परमौदासीन्यं मुनेरनयोर्भक्तिं कुर्वत्योः पृच्छत्योश्च न किंचित्कथितमिति। तच्छ्रुत्वा नागदत्तयोक्तम्- भो सूरदत्त क्षुरिकां समर्पय। पापिष्ठं निजमुदरं नवमासानयमनेन धृतो दुष्टात्मा। ततो विदारयामीति। तदाकर्ण्य तेनोक्तम्-यास्य माता सा ममापि मातेति तां प्रणम्य सर्वमर्थं समर्प्य विसर्जिता। स्वयं नागदत्तचेष्टितं दृष्ट्वा विरक्तो भूत्वा तत्पादमूले तपो गृहीत्वा कर्मक्षयं कृत्वा मोक्षं गतः।

15. किल कल्पपालभवने पिबन्निव ब्राह्मणो दुग्धम्

दुज्जणसंसग्गीए संकिज्जदि संजदो वि दोसेण।

पाणागारे दुद्धं पियंतओ बंभणो चेव॥ 346॥

अत्र कथा - वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनपालः, कल्पपालः पूर्णभद्रो, भार्या मणिभद्रा, पुत्री

सुनाकर स्वर्ग चला गया। नागदत्त मुनि जिनकल्पी का आचरण विशेष करते हुए चर्या करते थे, जिससे वह जिनकल्पी हो गए। अनेक तीर्थों की वन्दना को करते हुए वे एक बार भयंकर जंगल में आ पहुँचे। वहाँ सूरदत्त के गुप्तचरों से मार्ग अवरुद्ध था। जिससे गुप्तचरों ने नागदत्त मुनि को पकड़ लिया कि कहीं यह मेरा स्थान आगे जाकर न कह दे। सूरदत्त ने कहा - ये तो परम वीतरागी हैं, ये किसी से कुछ नहीं कहते, ये देखते हुए भी कुछ नहीं देखते हैं, इसलिए इन्हें छोड़ दें। इसी समय नागदत्त की छोटी बहिन जो नागश्री थी, वह वत्सदेश के कौशम्बी नगरी में जिनदत्ता और जिनदत्त के पुत्र जिनपालकुमार के लिए दी गयी थी। उसको लेकर बहुत धन सम्पत्ति और परिवारजन के साथ जाते हुए माता नागदत्ता ने मुनि को देखा। देखकर नागदत्ता संतोष से प्रसन्न हो गयी और नमस्कार कर पूछा - हे भगवन्! आगे रास्ता तो ठीक है ना ? मुनिराज मौन धारण किए हुए चले गए। तदुपरान्त वह वन्दना करके आगे चल दी। आगे चोरों ने सारा धन छुड़ाकर दोनों को सूरदत्त के पास ले गए। तब सूरदत्त ने कहा- आप लोगों ने मुनि की परम उदासीनता को देखा, मुनि की इन लोगों ने भक्ति की और पूछा किन्तु वह कुछ भी नहीं बोले। यह सुनकर नागदत्ता ने कहा - हे सूरदत्त! मुझे छुरी दो। जिस पापी को मैंने नवमास उदर में रखा उस दुष्टात्मा को मार देना चाहिए कि उसने मार्ग का हाल भी नहीं बताया। यह सुनकर सूरदत्त ने कहा - जो उनकी माता वह मेरी भी माता है। इस प्रकार उसने माता को प्रणाम कर समस्त धन समर्पित कर दिया और स्वयं नागदत्त की शत्रु-मित्र में समभावीपन की चेष्टा देखकर विरक्त हो गया। सूरदत्त उन्हीं नागदत्त के चरण कमलों में दीक्षा ग्रहण कर और कर्म क्षय करके मोक्ष को प्राप्त हुए।

15. संगति का असर

अर्थ : दुर्जन के संसर्ग से दोष रहित भी संयमी मुनि लोगों के द्वारा दोष युक्त ही माना जाता है। जैसे मदिरा गृह में जाकर कोई ब्राह्मण दूध पीवे तो भी उसने मद्य पिया है, वह मद्यपायी है ऐसा लोग मानते हैं।

कथा : वत्स देश की कौशाम्बी नगरी के राजा धनपाल थे। वहीं शूद्र पूर्णभद्र रहता था। पूर्णभद्र की

सुमित्रा, तस्या विवाहे समस्तं नगरजनं भोजयित्वा परममित्रं चतुर्वेदवित्पुरोहितः शिवभूतिरामन्त्रितः। [तेन] उक्तम्- मित्र, शूद्रान्नं न कल्पतेऽस्माकम्। पूर्णभद्रेणोक्तम्- ब्राह्मणगृहनिष्पन्नया रसवत्योद्याने गोष्ठीभवने भोजनं क्रियतामिति। तत उद्याने पूर्णभद्रं सपरिजनमेकत्रान्यत्र च शिवभूतिं खण्डं दुग्धं पिबन्तमालोक्य लोकैर्मद्यपानं कृतमिति राज्ञः कथितम्। न कृतमिति शिवभूतिर्ब्रुवाणो राज्ञा वमनं कारितो दुर्गन्धवमनाद्वेशान्निर्धाटितः।।

16. कौशिकविहिते ऽपि यथा दोषे व्यापादितो हंसः

अदिसंजदोवि दुज्जणकएण दोसेण पाउणइ दोसं।

जह घूगकए दोसे हंसो य हओ अपावो वि॥ 348॥

अस्य कथा- मगधदेशे पाटलिपुत्रनगरे पूर्वप्रतोलीछिद्रान्निर्गत्य कौशिक एकदा गङ्गायां गतो वृद्धहंसेन स्वागतं कृत्वा पृष्टः कस्त्वम्। उलूकेनोक्तम्- पक्षिराजोऽहं सर्वे ऽपि राजानो मदीयाज्ञया चलन्ति। ततो मित्रत्वं कृत्वा हंसो घूकेन प्रतोलीमानीतः। गोधूलिसमये प्रजापालो राजा विजययात्रायां चलितः। घूकेन तमालोक्य हंसो भणितः। पश्यायं राजा मद्वचनेन गच्छति तिष्ठति चेति विशिष्टशब्दं कृत्वा प्रेषितः,पुनर्विरूपकं शब्दं कृत्वा धृतः। एवं बहुवारान् शकुनापशकुनशब्दतो गच्छता तिष्ठता च राज्ञा शब्दवेधेन कोपाद्घूकशब्दस्य बाणो मुक्तस्तमालोक्य घूको बिले प्रविष्टो द्वारस्थो हंसो हतः। तेनोक्तम्-

---

पत्नी मणिभद्रा थी और पुत्री का नाम सुमित्रा था। पुत्री के विवाह में पूर्णभद्र ने सारे नगरवासियों को भोजन कराया तथा अपने परम मित्र चारों वेदों के ज्ञाता पुरोहित शिवभूति को आमंत्रित किया। शिवभूति ने कहा -मित्र! मैं शूद्र का अन्न नहीं खा सकता। पूर्णभद्र ने कहा - ब्राह्मण के घर की रसोई में भोजन बनवाकर गोष्ठी भवन (बैठक)में भोजन कर लेना। इस प्रकार बात स्वीकार कर शिवभूति ने पूर्णभद्र और उनके परिवार वालों के साथ ब्राह्मण के उद्यान में खाँड, दूध आदि पिया जिसे कुछ लोगों ने जाकर देखा और राजा को कहा कि शिवभूति ने मद्यपान किया है तब राजा ने वमन कराया। वमन को दुर्गन्ध युक्त देखकर राजा ने शिवभूति को देश निकाला दे दिया।

16. दुर्जन संगति का प्रभाव

अदिसंजदोवि दुज्जण कएण दोसेण पाउणइ दोसं।

जह घूगकए दोसे हंसो य हओ अपावो वि॥ 348॥

अर्थ : महान् तपस्वी भी दुर्जन के दोषों से अनर्थ में पड़ जाते हैं अर्थात् दोष तो दुर्जन करता है, परन्तु फल सज्जन को भोगना पड़ता है, जैसे - उल्लू के दोष से निष्पाप हंस पक्षी मारा गया।

कथा : मगध देश के पाटलिपुत्र नगर में पिछली गली के एक छिद्र से निकलकर कौशिक (उल्लू) एक बार गंगा में गया, वहाँ एक वृद्ध हंस ने उल्लू का स्वागत किया और पूछा तुम कौन हो ? उल्लू ने कहा - मैं पक्षिराज हूँ। सभी राजा मेरी आज्ञा से चलते हैं। हंस ने इसलिए उल्लू से मित्रता कर ली और उल्लू के साथ गली में आ गया। प्रभात बेला में राजा प्रजापाल विजय यात्रा को चले। उल्लू ने उन्हें देखकर हंस से कहा -

अकालचर्यां विषमां च गोष्ठीं कुमित्रसेवां न कदापि कुर्यात्।
पश्याण्डजं पद्मवने प्रसूतं धनुर्विमुक्तेन शरेण भिन्नम्॥

17. बालो यथाभिजल्पतीत्यादि

जह बालो जंपंतो कज्जमकज्जं व उज्जुगं भणदि।
तह आलोचेदव्वं मायामोसं च मोत्तूणं॥ 547॥

अत्र कथा- कौशाम्बीपुर्यां राजा जयपालः, श्रेष्ठी सागरदत्तो ऽतीवेश्वरो, भार्या सागरदत्ता, पुत्रः समुद्रदत्तः सकलाभरणभूषितः। अपरो दरिद्रो वणिक् गोपायनः सर्वव्यसनाभिभूतो, भार्या सोमा, पुत्रः सोमको बालः। समुद्रदत्तः सोमकेन सह क्रीडति। एकदा गोपायनेन द्रव्यलोभान्निजगृहे सोमकस्याग्रे स समुद्रदत्तं मारयित्वा आभरणं गृहीत्वा गर्तायां संनिक्षिप्तः। तस्यादर्शने व्याकुलत्वं सकलबन्धूनां, सागरदत्तया सोमकः पृष्टः। क्व रे समुद्रदत्तः। तेन चाविकल्पेनात्र गर्तायां तिष्ठतीत्युक्तम्। तया तत्र तं तथा दृष्ट्वा श्रेष्ठिनः कथितम्। तेन च यमदण्डकोट्टपालस्य, तेनापि राज्ञः राज्ञा दण्डादिकं कृतमिति।

देखो यह राजा मेरे वचनों से चलेगा मेरे वचनों से ही रुकेगा। इस प्रकार उल्लू ने विशेष शब्द करना प्रारम्भ किया, जिससे राजा आगे बढ़ जाता पुनः विकृत शब्द करके राजा को रोक देता। इस प्रकार बहुत बार शकुन-अपशकुन के शब्दों को सुनकर राजा चल देता और रुक जाता। तब राजा ने क्रोध से शब्द की ओर घूक के लिए बाण छोड़ा। यह देखकर उल्लू तो बिल में घुस गया और द्वार पर खड़ा हंस मारा गया। इसलिए ठीक ही कहा - "अकाल में चर्या, दुर्जन के साथ संगोष्ठी और कुमित्र की सेवा कभी नहीं करनी चाहिए देखो! पद्म वन में अण्डे से उत्पन्न (हंस) धनुष से छूटे हुए बाण से नष्ट हो गया।"

निर्विकार भाव

अर्थ : जैसे बालक सरल अंतःकरण से अपने कार्य को अथवा अकार्य को अपने पिता से कह देता है इसी तरह क्षपक को भी अपने अतिचार मन का कपट छोड़कर और वचन की असत्यता त्याग कर निर्यापक को कह देना चाहिए।

कथा : कौशाम्बीपुरी के राजा जयपाल थे, वहीं एक सेठ सागरदत्त रहता था, जो बहुत सम्पन्न था, जिसकी पत्नी सागरदत्ता थी। उन दोनों के एक पुत्र था समुद्रदत्त। समुद्रदत्त समस्त आभरण से आभूषित रहता था। वहीं एक दरिद्र बनिया गोपायन रहता था, जो सदैव सभी प्रकार के व्यसनों में लिप्त रहता था। जिसकी पत्नी सोमा थी और सोमक नामक एक पुत्र था। समुद्रदत्त सोमक के साथ खेलता था। एक बार गोपायन ने धन के लोभ में सोमक के सामने ही अपने घर में समुद्रदत्त को मारकर और उसके आभरणों को लेकर उसे गड्ढे में रख दिया। समुद्रदत्त के नहीं मिलने पर समस्त परिवार जन व्याकुल हो गए तब सागरदत्त ने सोमक से पूछा - अरे तेरा समुद्रदत्त कहाँ है? बेचारे बालक ने बिना कुछ सोचे विचारे वह इस गड्ढे में है कह दिया। उसके द्वारा कहे स्थान पर देखकर सेठ ने यमदण्ड कोतवाल को कहा, कोतवाल ने राजा से कहा तब राजा ने उसे दण्डादिक दिया।

18. चन्द्रपरिवेषणाद्भुक्तमिति

मिगतण्हादो उदगं इच्छइ चंदपरिवेसणे कूरं।

जो सो इच्छइ सोधी अकहंतो अप्पणो दोसे॥ 589॥

अत्र कथा- राजगृहनगरे राजा वसुपालः सदा रात्रौ भुङ्क्ते। तस्य चन्द्रनामा महानसिकः परिवारप्रियः। रुष्टेन राज्ञा चन्द्रो निःसारितो ऽन्यो महानसिकः कृतः। ततः परिवारेण राजाग्रे भोजनं त्यक्तम्। एकदा भोजनसमये गगने चन्द्रस्य परिवेषमालोक्य लोकैरुक्तम् - चन्द्रस्याद्य परिवेषो जात इति। तच्छ्रुत्वा परिवारेण चन्द्रसूपकारस्य प्रवेशो जात इति मत्वा भुक्तवाञ्छयागतेन न च भुक्तं भोजनं तेन विना कृतमिति।।

19. स्फुटिते नयने सङ्घश्रियः

अच्छीणि संघसिरिणो मिच्छत्तणिकाचणेण पडिदाणि।

कालगदो वि य संतो जादो सो दीहसंसारे॥ 732॥

अस्य कथा- अन्ध्रदेशे धान्यकनकनगरे राजा धनदत्तः सदृष्टिः, सङ्घश्रीर्मन्त्री। ताभ्यामपराह्णे प्रासादोपरिभूमौ मन्त्रं कुर्वद्भ्यां चारणमुनी गगनतले गच्छन्तौ दृष्टौ। अभ्युत्थानादिकं कृत्वा समीपमानीतौ। वन्दनादिकं कृतम्। राजवचनेन सङ्घश्रीः विशिष्टधर्मश्रवणं कृत्वा श्रावकः कृतः। ततो गतौ मुनी। सङ्घश्रीः स्वगुरु

18. प्रायश्चित्त में कपट नहीं

अर्थ : जो मुनि अपने दोषों का विवेचन न करके उनसे मुक्त होना चाहेगा, वह मृग तृष्णा से पानी प्राप्त करने की कोशिश करता है अथवा चन्द्र के परिवेश से अन्न प्राप्त करने की इच्छा रखता है, ऐसा समझना चाहिए। अर्थात् दूसरे के नाम से प्रच्छन्न रीति से प्रायश्चित्त करना व्यर्थ है।

कथा : राजगृह नगर में राजा वसुपाल हमेशा रात्रि में भोजन करता था। उसका एक चन्द्र नाम का रसोइया था, जो पूरे परिवार को प्रिय था। राजा ने क्रोधित होकर चन्द्र को निकाल दिया और दूसरा रसोइया रख लिया। जिससे परिवार ने राजा के आगे भोजन त्याग दिया। एक बार आकाश में भोजन के समय चन्द्र के मण्डल को देखकर लोगों ने कहा चन्द्र का आज परिवेश/प्रवेश हुआ है। यह सुनकर परिवार ने समझा कि चन्द्र रसोइया का प्रवेश हुआ है इसलिए भोजन करने के लिए परिवार आया, किन्तु भोजन नहीं किया क्योंकि चन्द्र आया नहीं था।

19. तीव्र मिथ्यात्व का फल (संघ श्री की कथा)

अर्थ : संघश्री नामक प्रधान की आँखें तीव्र मिथ्यात्व से नष्ट हो गयी और मरण के अनंतर वह दीर्घ संसारी हुआ।

कथा : आन्ध्र देश में धान्यक नामक नगर में एक सम्यग्दृष्टि राजा धनदत्त थे, जिनका मंत्री संघश्री था। एक बार राजा अपराह्न के समय महल के ऊपर छत पर मन्त्री से कुछ मन्त्रणा कर रहे थे तभी राजा ने आकाश मार्ग से जाते हुए दो चारण ऋद्धिधारी मुनियों को देखा। वे दोनों उठकर प्रणाम आदि करके उन्हें समीप लाये और वन्दना आदि कार्य किया। राजा के कहने से संघश्री ने भी धर्म श्रवण किया और श्रावक हो गया। मुनिराज चले

बुद्धश्रीवन्दकं प्रतिदिनं त्रिसन्ध्यं वन्दितुं गच्छति। तस्मिन् दिने उपरितनवेलायां यावन्न गतस्तावत्तेनाकारयित्वानीतः प्रणाममकुर्वन् वन्दकेन पृष्टः- प्रणामं किमिति न करोषीति। ततस्तेन पूर्ववृत्तान्ते कथिते वन्दकेनोक्तम्- हा हा वञ्चितो ऽसि। न चारणमुनयः सन्ति। भ्रान्तिरेव तथा जाता। स राजा इन्द्रजालेनेन्द्रजालं तवेदं दर्शितवान्। अतो मा त्वं बुद्धधर्मं त्यज। एवं मिथ्यात्वं सुतरां स नीतो भणितश्च प्रभाते त्वं राजसभायां मा गच्छेर्गतो ऽपि दृढमिति मा कथमपि वादीः प्रभाते च राज्ञा सामन्तादीनां चारणागमनकथां कथयता संवादार्थं सङ्घश्रीराकारितः। तेन चागतेन पृष्टे न दृष्टमित्युक्तं ततः स्फुटिते नयने सङ्घश्रियः।।

20. दृष्टिभ्रष्टो भ्रष्टः

दंसण भट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होदि चारणभट्ठो हु।
दंसणममुयंतस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे॥ 739॥

अस्य कथा- काम्पिल्यनगरे राजा ब्रह्मरथो, राज्ञी रामिल्या, तत्पुत्रो ब्रह्मदत्तो द्वादशश्चक्रवर्ती। एकदा विजयसेनसूपकारेण भोक्तुमुपविष्टस्यात्युष्णा क्षैरेयी दत्ता। भोक्तुमशक्तेन कोपात्तया दाहयित्वा मारितः। स च मृत्वा लवणसमुद्रे रत्नद्वीपे व्यन्तरदेवो भूत्वा विभङ्गज्ञानेन वैरं ज्ञात्वा परिव्राजकरूपेण गत्वातिमृष्टकेलकादि फलानि चक्रवर्तिने दत्तवान्। तानि भक्षित्वा स तेन पृष्टः। क्वेदृशानि फलानि सन्ति। समुद्रमध्ये मदीयमठवाटिकायामिति कथयित्वा तेनान्तःपुरादियुक्तं तं समुद्रमध्ये नीत्वा मारणार्थमुपसर्गः कृतः। तं च

गए संघश्री प्रतिदिन अपने गुरु बुद्धश्री भिक्षु की तीनों सन्ध्याओं में वन्दना करने जाता था। उस दिन शाम की बेला में जब वह बौद्ध भिक्षु के पास नहीं गया तो बुद्धश्री ने उसे बुलवाया। संघश्री ने आकर प्रणाम नहीं किया तो बुद्ध श्री ने पूछा - तुम नमस्कार क्यों नहीं करते हो? तब संघश्री ने पूर्व का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर बुद्धश्री ने कहा - हा! हा! तुम ठगे गए हो। कोई चारण मुनि नहीं होते। आपको उस प्रकार की भ्रान्ति हो गयी। उस राजा ने इन्द्रजाल से आपको इन्द्रजाल दिखलाया है। इसलिए आप बौद्धधर्म मत छोड़ो। इस प्रकार बार-बार कहने पर वह पुनः मिथ्यात्व को प्राप्त हो गया। तब बुद्धश्री ने कहा तुम प्रातः राजसभा में मत जाना, यदि जाना भी पड़े तो अपने आप में दृढ़ रहना, किसी प्रकार से भी कुछ मत बताना। सुबह राजा ने राज्य सभा में सामन्त आदि को चारणमुनि के आगमन की कथा सुनायी और विश्वास कराने के लिए संघश्री को बुलाया। जब संघश्री से पूछा तो उसने कहा - मैंने तो ऐसा नहीं देखा, इतना कहते ही संघश्री की दोनों आँखें फूट गयीं।

20. दर्शन से भ्रष्ट ही भ्रष्ट है (ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती की कथा)

अर्थ : जो पुरुष सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हुआ है, वह भ्रष्ट ही समझना चाहिए। दर्शन भ्रष्ट जीव को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती, चारित्र भ्रष्ट जीव मुक्ति की प्राप्ति कर सकते हैं, परन्तु दर्शन भ्रष्ट जीव को मुक्ति का लाभ नहीं होता।

कथा : काम्पिल्य नगर के राजा ब्रह्मरथ थे, उनकी रानी का नाम रामिल्या था, उनके एक ब्रह्मदत्त नाम का पुत्र था, जो बारहवाँ चक्रवर्ती हुआ। एक बार विजयसेन नाम के रसोइए ने भोजन करने को बैठे हुए चक्रवर्ती के लिए खीर परोसी। खीर बहुत उष्ण थी। इतनी गर्म खीर चक्रवर्ती खा न सका तो क्रोध से उस गर्म खीर को रसोइए पर फेंका, जिससे रसोइया दाह से मारा गया। वह मरकर लवणसमुद्र में रत्नद्वीप में व्यन्तरदेव हुआ,

पञ्चनमस्कारान् स्मरन्तं मारयितुं न शक्नोति। ततस्तेन प्रकटीभूय प्रविचार्य भणितो ब्रह्मदत्तः- रे त्वां मारयामि लग्नो यदि जिनशासनं नास्तीति भणित्वा परदर्शनं प्रशस्य पञ्चाक्षर - नमस्कारान् लिखित्वा पादेन विनाशयति [सि?] तदा न मारयामीति। तेनैतस्मिन् कृते जलमध्ये तेन स मारितः सप्तमनरके गतः।

21. नृपश्रेणिको ऽविरतः

सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि अज्जेदि तित्थयरणामकम्मं।
जादो खु सेणिगो आगमेसिं अरुहो अविरदो वि॥ 740॥

अस्य कथा - मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको, राज्ञी चेलिनी सम्यग्दृष्टिनी जिनागमे अतीव कुशला। एकदा सा श्रेणिकेन भणिता-विष्णुधर्म एव सर्वधर्मेभ्यः श्रेष्ठस्तत्रैव त्वया रतिः कर्तव्या। एतदाकर्ण्य तया भणितम्- देव, भगवतां भोजनं ददामीति। ततो निमन्त्र्यानीय महामण्डपे गौरवेण धृताः। तत्र च ते ध्यानेन स्थिताः। चेलिन्या पृष्टाः- किं भवन्तो ध्याने स्थिताः कुर्वन्तीति। तैरुक्तम्- शरीरं त्यक्त्वा आत्मानं विष्णुलोके नीत्वा परमानन्देन तिष्ठाम इति। ततस्तया तेषां ध्याने स्थितानां मण्डपः प्रज्वालितस्ते च नष्टाः। रुष्टेन राज्ञा सा भणिता- यदि भक्तिर्नास्ति तदा किमित्थमेते तव मारयितुं युक्ताः। तयोक्तम्-देव, कुत्सितं शरीरं त्यक्त्वा एते

विभंगज्ञान से वैर को जानकर उसने परिव्राजक का रूप बना लिया और चक्रवर्ती के समीप जाकर अति मीठे केला आदि फलों को सौंप दिया। जिनको खाकर चक्रवर्ती ने उससे पूछा ऐसे फल कहाँ होते हैं। परिव्राजक (संन्यासी) ने कहा समुद्र के बीचों-बीच मेरे मठ की वाटिका में होते हैं। ऐसा कहकर अन्तःपुर (रानी) आदि से युक्त हो चक्रवर्ती चला। उसको संन्यासी समुद्र के बीच ले गया और मारने के लिए उपसर्ग किया। वह पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करता था। जिससे संन्यासी मारने में सफल नहीं हो सका, तब वह संन्यासी अपने असली भेष में आ गया और सोचकर कहा - रे ब्रह्मदत्त! मैं ही तुझे मारने में लगा हूँ यदि तुम ऐसा कह दो कि जिनशासन नहीं है और पर दर्शन की प्रशंसा करके पञ्च नमस्कार मंत्र के अक्षर को लिखकर पैरों से मिटा दो तो मैं तुम्हें छोड़ दूँगा। तब ब्रह्मदत्त ने ऐसा ही किया तभी उस देव ने जल के बीच में ब्रह्मदत्त को मार दिया। वह मरकर सप्तम नरक में गया।

21. श्रेणिक राजा की कथा

अर्थ : अविरति सम्यग्दृष्टि भी शुद्ध सम्यक्त्व के द्वारा तीर्थंकर नामकर्म जैसी तीन लोक में माहात्म्य को धारण करने वाली प्रकृति का बंध कर लेता है। देखो श्रेणिक अभी अविरत है। आगामी भविष्य में वह अरिहंत बनेंगे।

कथा : मगध देश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक थे, जिनकी रानी चेलनी थी, जो सम्यग्दृष्टी थी और जिनागम में अत्यन्त कुशल थी। एक बार श्रेणिक ने उससे कहा - विष्णु धर्म ही सर्व धर्मों में श्रेष्ठ है, इसलिए तुम्हें भी उसी में रुचि रखनी चाहिए। यह सुनकर रानी ने कहा - स्वामिन्! उन भगवत् (वैष्णव) साधुओं को भोजन कराना है, तब राजा ने उन साधुओं को निमंत्रण देकर बुलाया और महामण्डप में बड़े गौरव के साथ उनको बिठाया। वहाँ वे सब साधु ध्यान करने लगे तब चेलिनी ने पूछा कि आप लोग ध्यान में बैठकर क्या करते हैं? उन सबने कहा हम शरीर को छोड़कर आत्मा को विष्णुलोक में ले जाकर परमानन्द में स्थित हो जाते हैं। तब रानी ने

विष्णुलोके गताः। एतस्मिन् शरीरे दग्धे तत्रैव तिष्ठन्तीत्युपकारार्थमेतेषां शरीरदाहः कर्तुमस्माभिरारब्धः। अस्यैवार्थस्य समर्थनार्थं दृष्टान्तत्वेन तत्प्रसिद्धां कथामाह।। यथा वत्सदेशे कौशाम्बीनगर्यां प्रजापालो राजा, श्रेष्ठी सागरदत्तो, भार्या वसुमती। तत्रैवापरः श्रेष्ठी समुद्रदत्तो भार्या समुद्रदत्ता, द्वयोरपि परमस्नेहेन तिष्ठतोर्वाचा निबन्धो जातः। यथावयोर्यौ पुत्रीपुत्रौ जायेते तयोरन्योन्यविवाहः कर्तव्यो येनावयोः सर्वदा स्नेहेन कालो गच्छतीति। ततः कतिपयदिनैः सागरदत्तेन वसुमत्यां वसुमित्रनामा पुत्रो जातः। स च दिवसे सर्पो रात्रौ दिव्यः पुरूषो भवति। तथा समुद्रदत्तेन समुद्रदत्तायां नागदत्ता नाम पुत्री जाता। सा वसुमित्रेण परिणीता। स च रात्रौ दिव्यपुरुषरुपं धृत्वा नागदत्तया सह भोगान् भुङ्क्ते। एकदा समुद्रदत्तया नागदत्तां यौवनभराक्रान्तामतिशयेन रूपवतीं दृष्टवा दीर्घनिःश्वासं मुक्त्वा उक्तम्- हा कष्टतरं विधेश्चेष्टितमीदृश्या मत्पुत्र्याः कीदृशो वरो जात इति। एतद्वचः श्रुत्वा नागदत्तयोक्तं मा विसूरय। [=मा विषादं गच्छ], मद्भर्ता रात्रौ पिट्टारके सर्पशरीरं मुक्त्वा दिव्यं पुरुषशरीरं गृहीत्वा मया सह भोगान् भुङ्क्ते। एतच्छ्रुत्वा समुद्रदत्तया नागदत्तागृहे गत्वा, रात्रौ वसुमित्रेण पिट्टारके सर्पशरीरं मुक्त्वा दिव्यं पुरुषशरीरं धृत्वा निर्गते पिट्टारके दग्धे वसुमित्रो रात्रिंदिवमिष्टं कामभोगान् भुञ्जानः सुखेन स्थितः। एवं भगवच्छरीरे कुत्सिते दग्धे भगवन्तो विष्णुलोक एव सततं सुखं भुञ्जानास्तिष्ठन्तीत्यभिप्रायेण देव मया एतच्छरीरदाहः कर्तुमारब्ध इति। एतदाकर्ण्य चित्तस्थकोपे मौनेन स्थितः। एकदा पापर्द्धिगतेनातापनस्थं यशोधरमुनिमालोक्य

उस मण्डप में जहाँ साधु ध्यान में बैठे थे अग्नि जलवा दी, जिससे वे सब साधु भाग गए। राजा ने क्रोधित होकर रानी से कहा यदि तुम्हारी उन साधुओं के प्रति भक्ति नहीं थी तो क्यों उनको इस प्रकार मार डालने के लिए साहस किया। रानी ने कहा – प्रभो! वे लोग इस घिनावने शरीर को छोड़कर विष्णु लोक गए थे, इस शरीर के जल जाने से वे उसी विष्णुलोक में रह जाते, इस प्रकार उन पर उपकार करने के लिए मैंने उनके शरीर को जलाने का कार्यक्रम किया इसी बात के समर्थन के लिए दृष्टान्त देकर प्रसिद्ध कथा कहती हूँ –

वत्सदेश की कौशाम्बी नगरी में राजा प्रजापाल थे। उसी नगरी में एक सेठ सागरदत्त थे, जिनकी पत्नी वसुमती थी तथा दूसरे सेठ समुद्रदत्त थे, जिनकी स्त्री समुद्रदत्ता थी। दोनों ही परम स्नेह से रहते थे, उन्होंने आपस में शर्त बाँधी कि हम दोनों के जो पुत्री और पुत्र होंगे उनका आपस में विवाह कर देंगे, जिससे हम लोगों का समय आपस में स्नेह से बीत जायेगा। कुछ दिनों बाद सागरदत्त के वसुमती स्त्री से वसुमित्र नाम का पुत्र हुआ। वह वसुमित्र दिन में सर्प हो जाता और रात्रि में एक दिव्य पुरुष हो जाता। उधर समुद्रदत्त सेठ के यहाँ समुद्रदत्ता स्त्री से नागदत्ता नाम की पुत्री हुई। वह पुत्री वसुमित्र से विवाह दी गयी। वह दिन में सर्प बनकर रहता और रात्रि में दिव्य पुरुष बनकर नागदत्ता के साथ भोग भोगता था। एक बार समुद्रदत्ता ने नागदत्ता को पूर्ण यौवन से भरी हुई अतिशय सुन्दरी के समान देखा तो दीर्घ श्वास छोड़कर बोली हाय विधाता की चेष्टायें भी बड़ी दुःखदायी हैं, मेरी ऐसी रूपवती पुत्री को किस प्रकार का वर मिला। इन वचनों को सुनकर नागदत्ता ने कहा – ऐसा खेद मत करो। मेरा पति रात्रि में पिटारी से निकलकर सर्प के शरीर को छोड़कर दिव्य पुरुष का रूप धारण कर मेरे साथ भोग भोगता है। यह सुनकर समुद्रदत्ता ने नागदत्ता के घर जाकर रात्रि में जब वसुमित्र पिटारी से सर्प के शरीर को छोड़कर और दिव्य पुरुष का शरीर धारण कर निकला तब उस पिटारी को जला डाला। जिससे वसुमित्र रात-दिन इष्ट काम-भोगों को भोगता हुआ उसी पुरुष शरीर में रहता हुआ सुखी रहने लगा। इसी प्रकार भागवत साधुओं के कुत्सित शरीर जल जाने से वे हमेशा विष्णुलोक में सुख को भोगते रहे, इसी अभिप्राय से हे प्रभो! मैंने उनका शरीर जलाने का कार्य प्रारम्भ किया था। यह सब कथा सुनकर श्रेणिक के मन में क्रोध उत्पन्न होने पर भी वह मौन रहे। एक बार शिकार के लिए गए श्रेणिक ने आतापन योग धारण किए हुए यशोधर मुनिराज को देखा। तब

मम पापर्द्धिविघ्नकारिणं मारयामीति संचिन्त्य पञ्चशतकुर्कुरा मुक्ताः। ते च मुनेः प्रदक्षिणं कृत्वा प्रणतोत्तमाङ्गेन स्थिताः। ततोऽतिकोपाद् बाणा मुक्तास्ते पुष्पमाला जाताः। तस्मिन् समये तेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्बद्धम्। तं चातिशयमालोक्य पूर्णयोगं तं मुनिं प्रणम्य तत्त्वमाकर्ण्य उपशमसत्यक्त्वं गृहीत्वा प्रथमनरके चतुरशीतिवर्षसहस्त्रमायुः कृतम्। चित्रगुप्तमुनिसमीपे क्षायोपशमिकं वर्धमानस्वामिनः पादमूले क्षायिकं सम्यक्त्वं गृहीत्वा दर्शनविशुद्धयादिभावनाभिस्तु तीर्थंकरत्वमुपार्जितम्।

22. जिनवन्दनादिभक्त्या पद्मरथ इति

एक्का वि जिणे भत्ती णिद्दिट्ठा दुक्खलक्खणासयरी।

सोक्खाणमणंताणं होदि हु सा कारणं परमं॥ 737॥

अस्य कथा- मगधदेशे मिथिलानगर्यां राजा पद्मरथः पापर्द्धिं निर्गतो ऽटव्यां शशकपृष्ठे अश्वं वाहयन्नेकाकी कालगुहाभ्यन्तरे प्रविष्टः। तत्र दीप्ततपसं सुधर्ममुनिमालोक्योपशान्तो घोटकादवतीर्य प्रणम्य धर्मं श्रुत्वा सम्यक्त्वाणुव्रतान्यादाय पृष्टवान्- एवंविधं वक्तृत्वादिकं किं क्वाप्यन्यस्यास्ति। कथितं मुनिना-चम्पायां वासुपूज्यतीर्थकरदेवास्तिष्ठन्ति, तस्य मम च मेरुसर्षपयोरिव वक्तृत्वे दीप्तौ च महदन्तरम्। एतदाकर्ण्य परमभक्त्या प्रभाते वन्दनार्थं तत्र गच्छतस्तस्य धन्वन्तरिविश्वानुलोमचरदेवाभ्यां तद्भक्तिपरीक्षणार्थं सर्पेण मार्गखण्डनं छत्रभङ्गं

श्रेणिक ने चिन्तन किया कि ये मेरे शिकार में विघ्न करने वाले हैं, जिससे इन्हें मार देता हूँ। यह सोचकर श्रेणिक ने 500 कुत्ते एक साथ छोड़ दिए। वे कुत्ते मुनिराज की परिक्रमा करके सिर से प्रणाम कर बैठे गए। यह देख श्रेणिक का क्रोध और बढ़ गया, जिस कारण बाणों को छोड़ना प्रारम्भ किया वे बाण भी पुष्पमाला बन गए। उसी समय राजा श्रेणिक ने सप्तम नरक की तैंतीस सागर की आयु का बंध कर लिया। उनके इन अतिशयों को देखकर श्रेणिक ने पूर्ण योग धारण किए हुए उन मुनिराज को प्रणाम किया और तत्त्व का उपदेश सुनकर उपशम सम्यक्त्व ग्रहण किया और 33 सागर की आयु को घटाकर प्रथम नरक की 84 हजार वर्ष कर लिया। तदुपरान्त श्रेणिक ने चित्रगुप्त मुनि के समीप क्षायोपशमिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया तथा वर्द्धमानस्वामी के पादमूल में क्षायिक सम्यक्त्व ग्रहण कर दर्शनविशुद्धि आदि भावनाओं को भाकर तीर्थंकर प्रकृति का बन्ध किया।

22. पद्मरथ राजा की कथा

अर्थ : एक जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति ही लाखों दुःखों का नाश करने वाली कही गई है। यह ही अनन्त सुखों का श्रेष्ठ कारण है।

कथा : मगध देश की मिथिला नगरी के राजा पद्मरथ थे। एक बार वह शिकार के लिए निकले। एक खरगोश को देखकर उसके पीछे उन्होंने अपने घोड़े को दौड़ाया। जिससे वे एकाकी ही एक कालगुफा में घुस गए। वहाँ उन्होंने तप से दैदीप्यमान सुधर्म मुनि को देखा, जिससे उनको बहुत शान्ति प्राप्त हुई। वे घोड़े से उतरकर मुनिराज को प्रणाम करके धर्म को सुनकर सम्यग्दर्शन से सहित अणुव्रती हो गए तब राजा ने पूछा - इस प्रकार आप जैसी वक्तृत्व आदि कला क्या कहीं अन्य किसी की भी है। तब मुनि ने कहा - चम्पानगरी में वासुपूज्य तीर्थंकर देव विराजमान हैं। उनकी और मेरी वक्तृत्व कला और दीप्ति में मेरु और सरसों के दाने समान अन्तर है। यह सुनकर परम भक्ति से सुबह वन्दना के लिए राजा चल दिए। तभी उनकी भक्ति की परीक्षा करने के

नगरदाहाद्यपशकुनं कृत्वा वातधूलीपाषाणाग्निज्वालायितं च कृत्वा हस्ती कर्दमे च मग्नो दर्शितः। ततो मन्त्र्यादिभिर्वार्यमाणोऽपि न व्याघुटितः। वासुपूज्याय नम इत्युक्त्वा कर्दमे हस्तिनं प्रक्षिप्तवान् ततस्तुष्टाभ्यां ताभ्यां मायामुपसंहृत्य प्रशस्य सर्वरुजापहारो योजनघोषा भेरी च दत्ता। स च वासुपूज्यतीर्थकरदेवं वन्दित्वा गणधरदेवो जातः।

23 आराध्य नमस्कारमित्यादि

अण्णाणी वि य गोवो आराधित्ता मदो णमोक्कारं।

चंपाए सेट्ठिकुले जादो पत्तो य सामण्णं॥ 759॥

अस्य कथा – अङ्गदेशे चम्पानगर्या राजा नृवाहनः, श्रेष्ठी वृषभदासस्तद्गोपालेनैकदा गृहमागच्छता यदास्तमितो भाविकासी[1] चारणमुनिर्दृष्टः। शीतकाले तुषारे पतति शिलातलस्थो निःप्रावरणः कथं रात्रौ गमयिष्यतीति संचिन्त्य गृहे गत्वा पश्चिमरात्रौ महिषी गृहीत्वा शीघ्रं गतः। तं मुनिं समाधिस्थमालोक्य शरीरे पतितं तुषारं स्फेटयित्वा हस्तपादादिमर्दनं कृतवान्। आदित्योदये ध्यानमुपसंहृत्य आसनभव्योऽयमिति मत्वा 'णमो अरहंताणं' इति मन्त्रः कथितः। तं च मन्त्रमुच्चार्य भगवानाकाशे गतस्तन्मन्त्रस्योपरि तस्य महती श्रद्धा जातेति सर्वक्रियासु प्रथमे तमुच्चारयति। श्रेष्ठिना किमेवं रे विप्लवं करोषीति निवारितः। तेन च पूर्ववृत्तान्ते कथिते श्रेष्ठिनोक्तं त्वमेव

लिए धन्वन्तरि और विश्वानुलोम दो देव आये उन्होंने मार्ग में सर्प से मार्ग का खण्डन, राजा का छत्र भंग, नगर में दाह आदि अपशकुन करके हवा, धूल, पत्थर, आग की लपटें दिखाकर हाथी को कीचड़ में मग्न दिखाया, जिससे मंत्री आदि के द्वारा मना करने पर भी राजा वापस नहीं लौटे। 'वासुपूज्याय नमः' ऐसा कहकर कीचड़ में ही हाथी को बढ़ाया यह देख वे देव संतुष्ट हो गए उन्होंने माया को समेट लिया और खूब प्रशंसा की तथा सभी रोगों का हरण करने वाला उपहार और एक योजन तक शब्द करने वाली भेरी दी। तदुपरान्त राजा पद्मरथ ने भगवान् वासुपूज्य देव की वन्दना की और उनके गणधर देव हुए।

23. णमोकार मंत्र का माहात्म्य (ग्वाले की कथा)

अर्थ : एक अज्ञानी ग्वाला भी मरण समय में णमोकार मंत्र की आराधना करता हुआ चम्पापुर में एक सेठ कुल में जन्मा और बाद में श्रमण अवस्था को प्राप्त किया। यह आराध्य को नमस्कार का फल है।

कथा : अंग देश की चम्पानगरी में राजा नृवाहन रहते थे। वहीं एक सेठ वृषभदास थे उनका एक गोपालक था। एक बार वह गोपालक घर वापस आ रहा था तभी उसने जब सूर्य अस्त होगा वहीं पर रुक जाएंगे ऐसे अभ्रावकाशी एक चारण मुनि को देखा। शीतकाल का समय था और सूर्य अस्ताचल की ओर था। उसने सोचा शीतकाल के तुषार में इस शिला तल पर बैठे हुए बिना किसी आवरण के यह मुनि रात्रि कैसे बितायेंगे। यह सोचकर वह घर गया और आधी रात में भैंस को लेकर शीघ्र चला गया। वहीं पर मुनि को समाधि (आत्मध्यान) में लीन देखकर शरीर पर गिरी हुई ओस को हटाकर उनके हाथ पैर आदि को दबाता रहा। सुबह होने पर मुनिराज ने ध्यान को हटाया और यह आसन्न भव्य है, ऐसा सोचकर 'णमो अरहंताणं' यह मन्त्र कहा और उस मंत्र का उच्चारण करके वह भगवान् मुनि आकाश से चले गए। गोपालक को उस मन्त्र पर अपार श्रद्धा हो गयी। वह सर्व

---

1. यथास्तमितोऽभावकासी

धन्यो येन तत्पादा दृष्टाः। एवमेकदा गङ्गामुत्तीर्य ता महिष्यो वल्लक्षेत्रं भक्षितुं चलिताः। ता निवर्तयितुमुत्सुकेन नमस्कारमुच्चार्य जलमध्ये झम्पा दत्ता। अदृश्यकाष्ठेनोदरे विद्धः निदानेन मृत्वा अर्हद्दास्याः श्रेष्ठिन्याः पुत्रः सुदर्शननामा जातः। अतिरूपवान् सकलविद्योपेतः सागरसेनासागरदत्तयोः पुत्रीं मनोरमां परिणीतवान्। एकदा वृषभदासश्रेष्ठी सुदर्शनं निजपदे धृत्वा समाधिगुप्तिमुनिसमीपे मुनिरभूत्। सुदर्शनो राज्ञा पूजितः। सर्वजनप्रसिद्धो जातः। एकदा राज्ञा सहोद्यानक्रीडायां महाविभूत्यागतः। अभयमतिराज्ञ्या दृष्टः। विह्वलीभूतया धात्री पृष्टा- को ऽयम्। तया कथितम्-राजश्रेष्ठी सुदर्शनो ऽयम्। पुनस्तयोक्तम्- यद्यमुं मे मेलयसि तदा जीवामि, अन्यथा म्रिये। धात्र्या चावश्यं मेलयामीति समुद्धीर्य सा गृहं नीता। कुम्भकारपार्श्वे च गत्वा पुरुषप्रमाणो मृत्तिकापुत्तलकः कारितः। वस्त्रेण वेष्टयित्वा राज्ञीपार्श्वे गृहीत्वा गच्छन्ती सा द्वारपालकैर्धृता। कौटिल्येन पुत्तलकं प्रक्षिप्य भग्नमालोक्य तया ते भणिताः- राज्ञी पुरुषविधानं करोति, अद्य बुभुक्षितास्य पूजां कारयिष्यति। अयं च भवद्भिर्भग्न अतो भवतः सर्वान्प्रभाते मारयिष्यामि। ततो भीतैस्तैरुक्तम्-क्षमां कुरु। कोऽपि कदाचिदपि त्वां न वारयतीति। एवं द्वाररक्षकान्नियन्त्रित्वा अष्टम्यामर्धरात्रे श्मशाने कायोत्सर्गस्थः सुदर्शन आनीय तस्याः समर्पितः। आलिङ्गनादि-विज्ञानैस्तया न क्षोभितः। पाणिपात्रे प्रभाते निस्तीर्णोपसर्गः पारणं करिष्यामीति प्रतिज्ञामादाय काष्ठीभूय स्थितः।

कार्य करने से पहले इसी मन्त्र का उच्चारण करता। एक बार सेठ ने गोपाल को रोकते हुए कहा अरे! तुम क्या शब्द गुनगुनाते रहते हो। तब गोपाल ने पूर्व का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनकर सेठ ने कहा तुम धन्य हो जो ऐसे मुनि के चरणों के दर्शन किए। एक बार उसकी भैंसे गंगा को पार करके जंगल में चरने के लिए चली गयी उनको रोकने के लिए उत्सुकुता पूर्वक नमस्कार मंत्र का उच्चारण कर जल के बीच में कूद पड़ा। पानी में एक लकड़ी पड़ी थी वह दिखी नहीं जिससे उसका पेट फट गया और निदान से मरकर अर्हद्दास की सेठानी के यहाँ पुत्र हुआ जिसका नाम सुदर्शन हुआ। वह सुदर्शन अत्यधिक रूपवान था, सकल विद्याओं से युक्त था। सुदर्शन का विवाह सागरसेन और सागरदत्ता की पुत्री मनोरमा से हुआ। एक बार वृषभदास सेठ सुदर्शन को अपना पद देकर समाधिगुप्ति मुनि के समीप मुनि हो गए। राजा के द्वारा भी सम्माननीय हुए और उनकी प्रसिद्धि सब जगह फैल गयी। एक बार राजा की महाविभूति के साथ उद्यान में क्रीड़ा के लिए सुदर्शन आए। तब उनको अभयमति रानी ने देखा। उनके रूप को देखकर रानी व्याकुलमना हो गयी और अपनी परिचारिका से पूछा - यह कौन है? उसने कहा यह राज्य का सेठ सुदर्शन है, तब रानी ने पुनः कहा यदि यह मुझे मिलेगा तभी मैं जी पाऊँगी अन्यथा मेरा मरण निश्चित है। वह धाय बोली आपका मिलाप अवश्य कराऊँगी, यह मन में धारण कर वह घर वापस आ गयी। तदुपरान्त वह कुम्भकार के पास गयी और पुरुष प्रमाण एक मिट्टी का पुतला बनवाया। उस पुतले को वस्त्र में लपेटकर रानी के पास जाते हुए द्वारपाल ने उसको रोका। धाय ने कुटिलता से पुतले को फेंक दिया, जिससे- पुतला टूट गया, पुतले को टूटा हुआ देखकर उसने पहरेदारों से कहा - आज रानी पुरुष विधान करती इस पुतले की पूजा करके ही वे भोजन करेंगी। यह आप लोग ने तोड़ दिया इसलिए आपको सुबह मरवा डालेंगी। यह सुनकर पहरेदार डर गए उन्होंने कहा क्षमा करो। अब कोई भी कभी भी आपको नहीं रोकेगा। इस प्रकार द्वार रक्षकों को अपने नियंत्रण में कर लिया तब अष्टमी की आधी रात को श्मशान में कायोत्सर्ग से स्थित सुदर्शन को ले आयी और रानी को सौंप दिया। रानी आलिंगन आदि अनेक भोग की कलाओं से भी सुदर्शन को क्षुब्ध नहीं कर पायी। सुदर्शन ने प्रतिज्ञा कर ली कि यदि इस उपसर्ग का निवारण हुआ तो प्रातः पाणिपात्र में ही पारणा करूँगा। इस प्रतिज्ञा को धारण कर वह लकड़ी के समान खड़े रहे। अभयमती रानी ने अपने शरीर को नाखूनों से

अभयमत्या आत्मानं नखैर्विदार्य श्रेष्ठिना बलाद्विध्वंसिताहमिति प्रभाते फूत्कारः कृतः। एतदाकर्ण्य राज्ञा श्रेष्ठी श्मशाने नीत्वा मार्यतामित्युक्तम्। तत्र राजपुरुषेण योऽसिस्तस्य मुक्तः स तस्य कण्ठे पुष्पमाला बभूव। देवैस्तस्य शीलप्रशंसां कृत्वा पुष्पवृष्ट्यादिकं कृतम्। नगरजनेन राज्ञा च क्षमां कारितः। सुकान्तपुत्रं निजपदे धृत्वा विमलवाहनमुनिपार्श्वे तपो गृहीत्वा केवलमुत्पाद्य मोक्षं गतः।

24. खण्डश्लोकैरित्यादि

जइ दा खंडसिलोगेण जमो मरणादो फेडिदो राया।

पत्तो य सुसामण्णं किं पुण जिणउत्तसुत्तेणं॥ 772॥

अस्य कथा – औद्रविषये धर्मनगरे राजा यमः सर्वशास्त्रज्ञो, राज्ञी धनवती, पुत्रो गर्दभः, पुत्री कोणिका, अन्यासां राज्ञीनां पुत्राणां पञ्चशतानि, मन्त्री दीर्घनामा। निमित्तिना आदेशः कृतः– यः कोणिकां परिणेष्यति स सर्वभूमिपतिर्भविष्यति। ततो यमेन कोणिका भूमिगृहे प्रच्छन्ना धृता, प्रतिचारका निवारिताः, न कस्यापि कथयन्ति ताम्। एकदा पञ्चशतयतिभिः सहागतस्य सुधर्ममुनेर्वन्दनार्थं जनं गच्छन्तमालोक्य यमो ज्ञानगर्वान्मुनीनां निन्दां कुर्वाणस्तत्समीपे गतः। मुनिज्ञाननिन्दाकरणात्तत्क्षणादेव बुद्धिनाशस्तस्य जातः। ततो निर्मदो मुनीन्प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य गर्दभाय राज्यं दत्वा पञ्चशतपुत्रैः सह मुनिरभूत्। पुत्राः सर्वे सर्वश्रुतधरा जाताः। यममुनेस्तु पञ्चनमस्कारमात्रमपि

घायल कर लिया और सुबह चिल्लाने लगी कि इस सेठ ने मुझसे जबरदस्ती करके मुझे इस प्रकार घायल कर दिया है। यह आवाज सुनकर राजा ने कहा – सेठ सुदर्शन को श्मशान में ले जाकर मार डालो। वहाँ ले जाकर राजपुरुष ने तलवार उनके ऊपर चलायी। वह तलवार सुदर्शन के गले में पुष्पमाला हो गयी। तभी देवों ने सुदर्शन के शील की प्रशंसा करते हुए पुष्पवृष्टि की। सभी नगरवासियों ने और राजा ने क्षमा माँगी। किन्तु सुदर्शन सेठ ने अपने पुत्र सुकान्त को अपना पद सौंपकर विमलवाहन मुनि के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली और केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष गए।

24. खण्ड श्लोक का स्वाध्याय (यम राजा की कथा)

अर्थ : यम नाम का राजा एक श्लोक के खण्ड का स्वाध्याय करने से मरण की आपत्ति से मुक्त हुआ और उत्कृष्ट चारित्र को धारण करने वाला श्रमण हुआ तो क्या जिनेन्द्रदेव के कहे सूत्र के अध्ययन से श्रेष्ठ फल की प्राप्ति नहीं होगी?

कथा : औद्र देश के धर्म नगर के राजा यम थे। जो सर्व शास्त्रों के ज्ञाता थे। उनकी रानी धनवती थी, पुत्र का नाम गर्दभ था और पुत्री का नाम कोणिका। अन्य रानियों के भी 500 पुत्र थे। राजा के मन्त्री का नाम दीर्घ था। एक बार ज्योतिषी ने बताया जो कोणिका से विवाह करेगा वह सारी पृथ्वी का अधिपति होगा। इसलिए राजा यम ने कोणिका को भूमि के अन्दर गृह में छिपा कर रखा और प्रतिचारकों को सुरक्षा के लिए नियुक्त किया। उस कोणिका के बारे में वे कुछ भी किसी को नहीं बताते। एक बार सुधर्म मुनि पाँच सौ यतियों के साथ उस नगर में आये उनकी वन्दना को जाते हुए लोगों को देखकर राजा यम अपने ज्ञान के घमण्ड से मुनियों की निन्दा करते हुए उनके पास गए। मुनियों के ज्ञान की निन्दा करने से उसी समय उनकी बुद्धि चली गयी। अपनी यह स्थिति देख राजा का मद झर गया और वे मुनियों को नमस्कार कर धर्म का श्रवण करने लगे। अपने पुत्र गर्दभ को राज्य देकर

नायाति। गुरुणा गर्हितो लज्जितो गुरुं पृष्ट्वा तीर्थमेकाकी गतः। तत्र यवक्षेत्रमध्ये गर्दभरथेन गच्छत एकपुरुषस्य गर्दभा यवभक्षणार्थं नयन्ति पुनर्निक्षिपन्ति। तानित्थमवलोक्य यममुनिना खण्डश्लोकः कृतः –

कड्ढसि पुणु णिक्खेवसि रे गद्दहा जवं पेच्छसि[1] खादहु[2]।

अन्यदा तस्य मार्गे गच्छतो लोकः पुत्राणां क्रीडतां काष्ठकोणिका बिले पतिता। ते चातीव पश्यन्त इतस्ततो धावन्ति। यममुनिना तामवलोक्य खण्डश्लोकः कृतः –

अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे एत्थाणिबुड्डिया च्छिद्दे अच्छइ कोणिया।

एकदा मण्डूकं भीतं पद्मिनीपत्रतिरोहितसर्पाभिमुखं गच्छन्तमालोक्य खण्डश्लोकः कृतः –

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुम्ह।

एतैस्त्रिभिः खण्डश्लौकैः स्वाध्यायवन्दनादिकं कुर्वन्विहरमाणो धर्मनगरोद्याने कायोत्सर्गेण स्थितः। तमाकर्ण्य दीर्घगर्दभौ शङ्कितौ तं मारयितुं रात्रौ गतौ तत्पृष्ठस्थितौ। दीर्घस्तन्मारणार्थं पुनः पुनरसिमाकर्षति मुनिवधशङ्कितत्वान्न हन्ति। तथा गर्दभो ऽपि, तस्मिन्प्रस्तावे मुनिना स्वाध्यायं गृह्णता प्रथमः खण्डश्लोकः पठितः।

वे पाँच सौ पुत्रों के साथ मुनि हो गए। उनके सभी पुत्र श्रुतधर हो गए, किन्तु यम मुनि को पंच नमस्कार मंत्र नहीं आता। गुरु से बहुत दुःखी और लज्जित होकर वह गुरु को पूछकर तीर्थ यात्रा करने के लिए एकाकी चले गए। वहाँ जौ के खेत में एक व्यक्ति रथ में गधों को जोते हुए ले जा रहा था। वह गधों को बार-बार जौ खाने के लिए ले जाता और पुनः रोक देता इस प्रकार देखकर यम मुनि ने एक खण्ड श्लोक बनाया –

कड्ढसि पुणु णिक्खेवसि रे गदहा जवं पेच्छसि खादहु।

अर्थात् अरे गदहो! तुम जाते हो और निकाल दिए जाते हो, जवों को देख रहे हो, खाओ।

इसी प्रकार उसी मार्ग में जाते हुए देखा कि क्रीड़ा करते हुए पुत्रों की लकड़ी की बांसुरी एक गड्ढे में गिर गयी। वे लड़के बार-बार उसे वहीं देखते और फिर दौड़ जाते। यम मुनि ने उनको इस प्रकार करते देखकर एक खण्ड श्लोक बनाया –

अण्णत्थ किं पलोवह तुम्हे एत्थाणि बुड्डियाच्छिद्दे अच्छइ कोणिया,

अरे! तुम इधर-उधर क्या देखते हो? तुम्हारी इस प्रकार की बुद्धि को छेदने के समान ही यह बांसुरी है। कोंणिका है।

एक बार यम मुनि ने एक डरे हुए मेंढ़क को कमल के पत्तों की ओट में छुपे हुए सर्प के अभिमुख जाते हुए देखकर एक खण्ड श्लोक बनाया –

अम्हादो णत्थि भयं दीहादो दीसदे भयं तुम्ह।

तुम्हें मुझसे कोई भय नहीं दिखता, तुम ही दीर्घ से (सर्प से) भयभीत दिखते हो।

इन तीन खण्ड श्लोकों से स्वाध्याय, वन्दना आदि करके विहार करते हुए धर्मनगर के उद्यान में कायोत्सर्ग से स्थित हो गए उनके आने का समाचार सुनकर मंत्री दीर्घ और पुत्र गर्दभ को शंका हो गयी इसलिए उनको मारने के लिए वे रात्रि में चले और आकर उनके पीछे खड़े हो गए। मंत्री दीर्घ उनको मारने के लिए पुनः पुनः तलवार निकालता और मुनि का वध हो जाने के भय से नहीं मारता और गर्दभ भी ऐसा ही करता। उसी समय

1. पच्छसि, 2. खादिहु

कड्ढसि पुतमाकर्ण्य गर्दभेन दीर्घो भणितः-लक्षितौ मुनिना। द्वितीयखण्डश्लोकमाकर्ण्य भणितं गर्दभेन- भो दीर्घ मुनिर्न राज्यार्थमागतः किं तु कोणिकां कथयितुमागतः। तृतीयश्लोकमाकर्ण्य गर्दभेन चिन्तितम्-दृष्टो ऽयं दीर्घो मां.हन्तुमिच्छति। मुनिः स्नेहान्मम बुद्धिं दातुमागतः। ततो द्वावपि तौ मुनिं प्रणम्य धर्ममाकर्ण्य श्रावकौ जातौ। यममुनिरपि च वैराग्यं गतः श्रमणत्वं विशिष्टं चारित्रं प्राप्य सप्तर्द्धियुक्तो जातः।

25. दृढशूर्प इत्यादि

दढसुप्पो सूलहदो पंचणमोक्कारमेत्तसुदणाणे।
उवजुत्तो कालगदो देवो जादो महड्ढीओ॥ 773॥

अस्य कथा - उज्जयिनीनगर्यां राजा धनपालो, राज्ञी धनवती। वसन्तोत्सवे तस्या दिव्यं हारमवलोक्य वसन्तसेनया गणिकया चिन्तितम् - किमनेन विना जीवितेनेति गृहे गत्वा स्थिता। सा रात्रौ दृढशूर्पचौरेणागत्य पृष्टा- किं प्रिये रुष्टासि। तयोक्तम् -तव न रुष्टा किं तु यदि राज्ञीहारं मे देहि तदा जीवामि नान्यथा। तां समुद्धीर्य रात्रौ हारं चोरयित्वा निर्गतः। हारोद्द्योतेन यमपाशेन कोट्टपालेन धृत्तो राजवचनेन शूलेन प्रोतः। प्रभाते धनदत्तश्रेष्ठी चैत्यालये गच्छन् तेन भणितः-दयालुस्त्वं तृषितस्य मे जलपानं देहि। तस्योपकारमिच्छता भणितं श्रेष्ठिना- द्वादशवर्षैरद्य मे गुरुणा महाविद्या दत्ता जलमानयतः सा मे विस्मरति। यद्यागतस्य तां मे कथयसि तदा आनयामि जलम्। तेनोक्तमेवं करोमि। ततः श्रेष्ठी पञ्चनमस्कारांस्तस्य कथयित्वा गतः। दृढशूर्पस्तानुच्चारयन् स्मरन्मृत्वा

मुनि ने स्वाध्याय को ग्रहण करते हुए पहला खण्ड श्लोक पढ़ा। कड्ढसिपु.... उसे सुनकर गर्दभ ने दीर्घ से कहा कि मुनि ने हम लोगों को देख लिया। फिर मुनि ने दूसरा खण्ड श्लोक पढ़ा तो गर्दभ ने कहा - अरे दीर्घ! मुनि राज्य के लिए नहीं आये किन्तु कोंणिका को कुछ कहने के लिए आये हैं। तब तीसरा खण्ड श्लोक पढ़ा, जिसे सुनकर गर्दभ ने सोचा यह दीर्घ मंत्री दुष्ट है, मुझको मारने की इच्छा रखता है। मुनि स्नेह से मुझे बुद्धि देने के लिए आये हैं। तदुपरान्त वे दोनों ही मुनि को प्रणाम कर धर्म का श्रवण करके श्रावक हो गए। यम मुनि भी वैराग्य को प्राप्त होकर श्रमणपने के विशिष्ट चारित्र को प्राप्त करके सात ऋद्धि से युक्त हो गए।

25. पञ्च नमस्कार मंत्र का माहात्म्य (दृढ़शूर्प चोर की कथा)

अर्थ : शूल पर चढ़ाया हुआ दृढ़शूर्प नामक चोर पञ्च नमस्कार मंत्र मात्र श्रुतज्ञान में चित्त को एकाग्र करके मरण को प्राप्त हुआ और स्वर्ग में महाऋद्धिधारी देव हुआ।

कथा : उज्जयिनी नगरी के राजा धनपाल थे और रानी धनवती। एक बार बसन्त महोत्सव में रानी के दिव्य हार को देखकर बसन्तसेना वेश्या ने सोचा कि इस हार के बिना जीने से क्या? और घर जाकर पड़ी रही। रात्रि में जब दृढ़शूर्प चोर आया तो उसने पूछा - प्रिये! तुम क्यों रूठी हो? बसन्तसेना ने कहा मैं तुमसे नहीं रूठी हूँ। किन्तु यदि रानी का हार मुझको लाकर दोगे तो ही मैं जीवित रह पाऊँगी, अन्यथा नहीं। उसके मन में धैर्य धारण करा, रात्रि में हार को चुरा लिया और निकल गया। हार की चमक से यमपाश कोतवाल ने पकड़ लिया। राजा की आज्ञा से उसे शूल से बाँध दिया। सुबह जब धनदत्त सेठ चैत्यालय जा रहे थे तो उस चोर ने कहा - सेठजी आप बहुत दयालु हैं, मैं प्यासा हूँ मुझे जलपान चाहिए। उस पर उपकार करने की इच्छा से सेठ ने कहा - बारह वर्षों के बाद आज मुझे गुरु ने एक महाविद्या दी है। जल लाते हुए मुझको विद्या याद न रहेगी, यदि आने

सौधर्मे देवो जातः। हेरिकै राज्ञः कथितम्-देव, धनदत्तश्रेष्ठी चोरसमीपं गत्वा किंचिन्मन्त्रितवान्। श्रेष्ठिगृहे तस्य द्रव्यं तिष्ठतीति पर्यालोच्य राज्ञा श्रेष्ठिधरणकं गृहरक्षणं चाज्ञातम्। तेन देवेनागत्य प्रातिहार्यकरणार्थं श्रेष्ठिगृहद्वारे लकुटिधरपुरुषरुपं धृत्वा तद्गृहे प्रविशन्तो राजपुरुषाः निवारिताः तेन ते प्रविशन्तो लकुटेन मायया मारिताः। एवं वृत्तान्तमाकर्ण्य राज्ञा येऽन्ये बहवः प्रेषितास्ते ऽपि तथा मारिताः। बहुलेन कोपाद्राजा स्वयमागतः। बलं समस्तं तथैव मारितम्। राजा नष्टः। तेन भणितो यदि श्रेष्ठिनः शरणं प्रविशसि तदा रक्षामि त्वां नान्यथेति। ततः श्रेष्ठिन्, रक्ष रक्षेति ब्रुवाणो राजा वसतिकायां श्रेष्ठिसमीपं गतः। श्रेष्ठिना च कस्त्वं किमर्थमेतत्कृतमिति पृष्टः। श्रेष्ठिनं प्रणम्य तेन कथितम् सोऽहं दृढशूर्पो भवत्प्रसादात् सौधर्मे महर्द्धिकदेवो जातः। तव प्रातिहार्यार्थमेतत्कृतम्।

26. चाण्डालः सुरपूजामित्यादि

पाणो वि पाडिहेरं पत्तो छूढो वि सुंसुमारहदे।
एक्केण अप्पकालक्कदेणऽहिंसावदगुणेण॥ 822॥

अस्य कथा - वाराणसीनगर्यां राजा पाकशासनः सकलदेशे मरकं श्रुत्वा कार्तिकशुक्लाष्टम्याः प्रभृत्यष्टदिनानि शान्त्यर्थं जीवामारिघोषणां कारितवान्। सप्तव्यसनाभिभूतेन राजश्रेष्ठिपुत्रेण धर्मनाम्ना उद्यानवने चरन् राजकीयमेंढ्रको मारयित्वा पिशितोपयोगं कृत्वा अस्थीनि गर्तायां निक्षिप्य मृत्तिकया पिधाय गतः। मेंढ्रकादर्शने

पर उस विद्या को मुझे बता देगे तो मैं जल लाऊँगा। चोर ने कहा ऐसा ही करूँगा। तब सेठ पंच नमस्कार मंत्र उसे बताकर जल लेने चला गया। दृढ़शूर्प चोर उस मंत्र का उच्चारण करते-करते मर गया और सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। किसी गुप्तचर ने राजा से कहा प्रभो! धनदत्त सेठ ने चोर के पास जाकर कुछ मंत्रणा की है। लगता है सेठ के घर में चोर का धन रहता है, इस प्रकार सोच विचार कर राजा ने सेठ को पकड़ लाने के लिए गृह रक्षकों को आज्ञा दी। उधर देव ने आकर सेठ की रक्षा करने के लिए सेठ के घर के द्वार पर आकर एक मुद्गर धारण किए हुए पुरुष का रूप बना लिया। जब राजा के लोग सेठ के घर में घुसे तो मुद्गरधर ने उनको रोका, नहीं मानने पर उस देव ने माया से उनको मार दिया। यह बात सुनकर राजा ने अपने और लोग भेजे उनको भी देव ने माया से मार दिया, तब राजा स्वयं ही बहुत लोगों के साथ आये किन्तु मायावी मुद्गरधर ने राजा की समस्त सेना को माया से मार दिया। राजा अकेला भागा तब देव ने कहा यदि तुम सेठजी की शरण में जाओगे तभी तुम बच सकोगे अन्यथा नहीं। राजा सेठ जी की वसतिका में सेठ के समीप गया और कहा - हे श्रेष्ठिन! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। सेठ ने उस मुद्गरधर से पूछा कि तुम कौन हो और ऐसा क्यों कर रहे हो? उस मुद्गरधर देव ने सेठ को प्रणाम कर कहा मैं वही दृढ़शूर्प चोर हूँ। आपकी कृपा से मन्त्र के प्रभाव से मैं सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धि धारक देव हुआ हूँ। आपकी रक्षा करने के लिए मैंने यह सब कार्य किया है।

26. अहिंसा व्रत का प्रभाव (यमपाल चाण्डाल की कथा)

अर्थ : सुंसुमार तालाब में फेंके गए चाण्डाल ने अल्पकाल तक ही अहिंसा व्रत का पालन किया था परन्तु वह इस व्रत के माहात्म्य से देवों के द्वारा पूजा गया।

कथा : वाराणसी नगरी में राजा पाकशासन थे। सकल देश में महामारी फैली है, यह सुनकर कार्तिक शुक्ला अष्टमी के आठ दिन पर्यन्त सब जीवों की शान्ति के लिए यह घोषणा करायी कि कोई भी आठ दिन किसी जीव का वध नहीं करेगा। वहीं राजा के सेठ का पुत्र था, जो सप्त व्यसन में लिप्त रहता था, जिसका नाम

राज्ञा सर्वत्र चरा निरूपिताः। रात्रौ चोद्यानपालकेन स्वभार्याया मेंढ्रकमारणवृत्तान्तः कथितः। तं श्रुत्वा चरेण राज्ञः कथितम्- राज्ञा च श्रेष्ठिपुत्रस्य धर्मनाम्नः शूलारोहणं कार्यतामिति यमदण्डकोट्टपालो भणितः। तेन च शूलप्रदेशे तं नीत्वा यमपालमातङ्गस्तन्मारणार्थमाकारितः। तेन च सर्वौषधीमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य चतुर्दश्यां जीवं न मारयिष्यामीति व्रतं गृहीतम्। ततो ग्रामं गत इति कथय त्वमिति भार्यां भणित्वा गृहकोणे संलप्य[1] स्थितः। तया तथा कथिते बहुसुवर्णयुक्तचौरमारणे स पापोऽद्य गत इति यमदण्डवचनात्तया हस्तसंज्ञया दर्शितः। निःसारितोऽपि वदत्यद्य न मारयामि। राज्ञोऽप्यग्रे नीतो देवाद्य न मारयामि चतुर्दश्यां जीवघाते ममावग्रहोऽस्तीति वदति। ततः कुपितेन राज्ञोक्तं द्वावपि सुंसुमारह्रदि निक्षिपेति। यमदण्डेन द्वावपि तत्र निक्षिप्तौ धर्मः सुंसुमारैर्भक्षितः। यमपालो व्रतमाहात्म्याज्जलदेवताभिः सिंहासने धृत्वा पूजितः।

27. अनृतवचनेन नरकं वसुश्च गत इत्यादि

पावस्सागमदारं असच्चवयणं भणंति हु जिणिंदा।
हिदएण अपावो वि हु मोसेण गदो वसू णिरयं॥ 849॥

अस्य कथा - अयोध्यायां राजा जयो, राज्ञी सुरक्ता, तत्पुत्रो वसुः, उपाध्यायः क्षीरकदम्बस्तद्भार्या स्वस्तिमती, पुत्रः पर्वतो, वैदेशिको नारदश्च त्रयोऽपि क्षीरकदम्बाचार्यपार्श्वे पठन्ति। पर्वतस्य विशिष्टपरिज्ञानादर्शनात्

धर्म था, वह राजा के उद्यान वन में चरते हुए मेंढ़ा को मारकर माँस खाकर हड्डियों को एक गड्ढा में रखकर मिट्टी से ढककर चला गया। वह मेंढ़ा जब नहीं दिखा तो राजा ने सर्वत्र अपने सिपाहियों को भेजा। रात्रि में उद्यान के माली ने अपनी स्त्री से मेंढ़े के मरण का वृत्तान्त कहा, जिसे गुप्तचर ने सुन लिया और राजा से कहा कि सेठ के पुत्र धर्म को शूली पर चढ़ा दो, राजा ने यमदण्ड कोटपाल से कहा। यमदण्ड ने धर्म को शूली के स्थान पर ले जाकर यमपाल चाण्डाल से धर्म को मारने के लिए बुलाया। उधर यमपाल चाण्डाल ने सर्वौषधी मुनि के पास धर्म को सुनकर चतुर्दशी को किसी जीव का वध नहीं करूँगा, ऐसा व्रत ग्रहण कर लिया था। इसलिए उसने अपनी पत्नी से कहा कि तुम सिपाहियों से कह दो, वे गाँव गए हैं और स्वयं घर के कोने में छिप गया। यमपाल की स्त्री ने ऐसा ही कह दिया तो सिपाही ने कहा कि वह चोर बहुत सुवर्ण से युक्त था, पापी! आज ही चला गया, यमदण्ड के इस प्रकार कहने पर स्त्री ने हाथ के इशारे से उसके छिपने का स्थान बता दिया। यमदण्ड ने उसे बाहर निकाला, पर यमपाल ने कहा मैं आज नहीं मारूँगा। राजा के पास जाकर भी यमपाल ने कहा - प्रभो! मैं आज नहीं मारूँगा, मेरा संकल्प है कि चतुर्दशी को जीव का घात नहीं करूँगा। जिससे राजा ने क्रोधित होकर कहा कि इन दोनों को मगरमच्छादि से भरे तालाब में फेंक दो। यमदण्ड ने दोनों को फेंक दिया। धर्म को मगरमच्छों ने खा लिया किन्तु यमपाल व्रत के माहात्म्य से जल देवताओं के द्वारा सिंहासन पर रख लिया गया और उसकी पूजा की।

27. झूठ बोलने वाले राजा वसु की कथा

अर्थ : जिनेन्द्र भगवान् ने कहा है कि असत्य भाषण पाप कर्म के आगमन का दरवाजा है। इसलिए देखो हृदय में पाप रहित वसु राजा भी असत्य बोलने से नरक चला गया।

कथा : अयोध्या नगरी में राजा जय थे, जिनकी रानी सुरक्ता थी, उन दोनों का पुत्र वसु था। वहीं एक उपाध्याय क्षीरकदम्ब थे, जिनकी स्त्री स्वस्तिमती थी और उनका पुत्र पर्वत था। एक विदेशी ब्राह्मण नारद थे, ये

स्वस्तिमती रुष्टा निजपुत्रं न पाठयसीति नित्यं भणति। उपाध्यायेनोक्तम्- जडो ऽयम्। तथा हि कपर्दकान् दत्वा त्रयोऽपि छात्रा भणिताः। कपर्दकैश्चणकान् भक्षित्वा कपर्दकांश्च गृहीत्वा आगच्छथ। पर्वतः कपर्दकैश्चचणकान् भक्षित्वा रिक्तो गृहमागतः। वसुनारदौ चार्घपृच्छामिषेण बहुस्थानेषु चणकान् भक्षित्वा कपर्दकैः सहितावागतौ। तथा एकान्ते यत्र को ऽपि न पश्यति तत्र छागवधप्रेषणे गर्तायां छागं वधित्वा पर्वत आगतः। वसुनारदौ सर्वत्र यमादित्यादयश्च पश्यन्तीति मत्वा जीवन्तौ छागौ गृहीत्वा आगतौ। ततो दृष्टं पर्वतजडत्वमित्युपाध्यायेन भणिता। एकदा कृतापराधो वसुरुपाध्यायेन यष्ट्या कुट्यमानः स्वस्तिमत्या रक्षितः। तेन च वरो दत्तस्ततस्तयोक्तम्-यदा याचयिष्यामि तदा दद्यास्त्वम्। एकदाटव्यां चत्वारोऽपि बृहदारण्यकशास्त्रं पठन्तः स्थिताः। तत्रैव प्रदेशे स्वाध्यायं गृहीतुं चारणमुनी अवतीर्णौ। लघुमुनिनोक्तम्-भगवन्, पश्य क्षेत्रशुध्या एते पठन्ति। भगवतोक्तमेतेषु द्वौ नरकगामिनौ। तद्वचनमाकर्ण्य क्षीरकदम्बश्छात्रान् गृहं प्रेष्य मुनिं प्रणम्य कौ नरकगामिनाविति मुनिं पृष्ट्वा वसुपर्वताविति विरक्तबुद्धिरसौ मुनिर्जातः। पर्वतः पञ्चशतछात्राणामुपाध्यायो जातः। नारदो देशान्तरं गतः। जयो वसवे राज्यं दत्वा मुनिरभूत्। एकदाटव्यामेकेन पापर्द्धिकेन मृगस्य बाणो मुक्तः। आकाशस्फुटिके लगित्वा व्याघुटितः। किं कारणमिति वितर्क्य तत्र गत्वा तं स्पृष्ट्वा तं ज्ञात्वा वसोः कथितम्। वसुश्च प्रच्छन्नवृत्या तं गृहमानयत् विष्टरं कृत्वा सभायां तस्योपरि गगने स्थितः। एकदा नारदः पर्वतपार्श्वे आगतः। तत्र प्रस्तावे अजैर्यष्टव्यमिति वाक्यम्

तीनों वसु, पर्वत और नारद क्षीरकदम्ब आचार्य के पास पढ़ते थे। पर्वत को विशेष ज्ञानी देख स्वस्तिमती रूठी रहती। तुम अपने पुत्र को नहीं पढ़ाते, इस प्रकार उपाध्याय से हमेशा कहती रहती। उपाध्याय ने कहा - वह मूर्ख है। तब स्वस्तिमती को इस प्रकार विश्वास दिलाने के लिए उपाध्याय ने तीनों छात्रों को बुलाकर एक-एक कौड़ी दी और कहा कि इन कौड़ी से चनों को खाकर कौड़ी को वापस लेकर आओ। पर्वत कौड़ी से चनों को खाकर खाली हाथ घर आ गया। वसु और नारद ने बहुत जगह जाकर मूल्य की पूछताछ की जिससे कौड़ी वापस मिल गयी और बचे चनों को खाकर कौड़ी को लेकर दोनों वापस आ गए। इसके बाद उपाध्याय ने बकरे को लेकर भेजा और कहा जहाँ कोई न देखे वहाँ बकरे का अंग छेदकर ले आना। पर्वत बकरे का अंग एक गड्ढे में ले जाकर छेदकर ले आया। वसु, नारद ने सोचा सब जगह यम, आदित्य (सूर्य) आदि देखते हैं इसलिए बकरे को ऐसा ही लेकर आ गए। तब उपाध्याय ने कहा - पर्वत की मूर्खता देख लो। एक बार वसु ने कुछ अपराध कर दिया। यह देखकर उपाध्याय ने वसु को लकड़ी से मारा किन्तु स्वस्तिमती ने आकर रक्षा की। वसु ने उस समय स्वस्तिमती को वरदान दिया किन्तु स्वस्तिमती ने कहा - जब माँगूंगी तब तुम देना।

एक बार जंगल में चारों ही बृहद् आरण्यक शास्त्र पढ़ रहे थे। उसी जंगल में स्वाध्याय करने के लिए दो चारण मुनि आ गए। लघु मुनि ने कहा - भगवन् देखो क्षेत्र शुद्धि पूर्वक ये लोग पढ़ रहे हैं। तब बड़े मुनि ने कहा इनमें से दो नरक को जायेंगे। उनके वचनों को क्षीरकदम्ब ने सुन लिया। क्षीरकदम्ब ने छात्रों को गृह भेजकर मुनि को नमस्कार कर पूछा कौन दो नरकगामी हैं? मुनि ने कहा वसु और पर्वत, यह सुनकर क्षीरकदम्ब वैराग्य बुद्धि को धारण कर मुनि हो गए। पर्वत पाँच सौ छात्रों के उपाध्याय हुए। नारद दूसरे देश को चले गए। राजा जय वसु को राज्य देकर मुनि हो गए। एक बार जंगल में किसी शिकारी ने मृग के लिए बाण छोड़ा। आकाश खम्भे में लगकर वह बाण लौट आया। क्या करण है जो इतनी आवाज आयी, ऐसा मन में सोचकर वहाँ जाकर उसको छूकर जान लिया और वसु से कह दिया। वसु ने ढँककर उस खम्भे को घर बुलवा लिया और एक सिंहासन बनाकर उसके ऊपर बैठ गया, (खम्भा स्फटिक की शुद्ध मणि का था, जिससे उसके पाये दिखते नहीं थे) और लोगों से कहता कि मैं आकाश में अधर में बैठा हूँ। एक बार नारद, पर्वत के पास आये। प्रसंगवश 'अजैर्यष्टव्यम्'

अजैश्छागैरिति व्याख्यातं पर्वतेन। नारदेनोक्तम्-अजैस्त्रिवर्षैर्धान्यैरित्युपाध्यायव्याख्यातम्। विवादे सति जिह्वाच्छेदिप्रतिज्ञां कृत्वा वसुवचनं प्रमाणीकृत्य स्थितौ। तच्छ्रुत्वा स्वस्तिमत्या भवतोर्भणितो विरूपकं त्वया व्याख्यातं तव पिता सदा त्रिवार्षिकधान्यैरेव यागं करोति। ततस्तया गत्वा वसुर्वरं प्रार्थितः। पर्वतवचनं त्वया प्रमाणीकर्तव्यमिति। प्रभाते द्वयोर्वचनमाकर्ण्य उपाध्यायव्याख्यानं स्मरतापि पर्वतवचनं प्रमाणीकृतम्। ततः सिंहासनात्पतितो नारदेनोपाध्यायार्थमद्यापि भणेति भणितोऽपि पर्वतवचनं प्रमाणमिति भणति। ततो भूमौ प्रविष्टो मृत्वा सप्तमनरकं गतः।

28. परधनहरणमनीपः श्रीभूतिरित्यादि

परदव्वहरणबुद्धी सिरिभूदी णयरमज्झयारम्मि।

होदूण हदो पहदो पत्तो सो दीहसंसारं॥ 874॥

अस्य कथा- सिंहपुरे राजा सिंहसेनो, राज्ञी रामदत्ता, पुरोहितः श्रीभूतिः सर्वलोकविश्वसनीयः। पद्मषण्डपत्तने वणिक् सुमित्रो, भार्या सुमित्रा, पुत्रः समुद्रदत्तः। तौ वाणिज्येन सिंहपुरमायातौ पञ्च रत्नानि श्रीभूतिपार्श्वे धृत्वा तातपत्नीं निजभार्यां च धृत्वा रत्नद्वीपं गतौ। द्रव्यमुपार्ज्य व्याघुटितौ समुद्रमध्ये स्फुटिते

इस वाक्य का अर्थ पर्वत ने लगाया 'अजैश्छागैरिति' अर्थात् अज का अर्थ यहाँ बकरा है, किन्तु नारद ने व्याख्या की कि 'अजैस्त्रिवर्षैर्धान्यैरिति' अर्थात् अज का अर्थ तीन वर्ष पुराने धान्य से है, ऐसा उपाध्याय ने पढ़ाया है। दोनों में इस बात को लेकर जब विवाद हो गया तो जिह्वा छेद करने की प्रतिज्ञा करके वसु के वचन को प्रमाण मानकर दोनों उनके पास गए। स्वस्तिमति ने इस विवाद को सुनकर पर्वत को कहा तुम गलत व्याख्या करते हो तुम्हारे पिता हमेशा त्रिवर्ष पुराने धान्य से ही यज्ञ करते थे। फिर भी (पुत्र मोह से) वसु के पास जाकर स्वस्तिमति ने पूर्व में दिए गए वरदान की प्रार्थना की कि तुमको पर्वत का वचन ही प्रामाणिक करना है। सुबह दोनों के वचनों को सुनकर राजा वसु ने उपाध्याय के व्याख्यान को जानता हुआ भी पर्वत के वचन की प्रामाणिकता स्वीकार कर दी। जिससे वसु सिंहासन से गिर गया। नारद ने कहा - उपाध्याय के कहे अर्थ को अभी भी कह दो, किन्तु वसु ने फिर भी कहा कि पर्वत के वचन प्रमाण हैं, जिससे वह पृथ्वी में धंस गया और मरकर सप्तम नरक को गया।

28. श्रीभूति चोर की कथा

अर्थ : पर द्रव्य को चुराने में जिसकी बुद्धि निपुण थी, ऐसा श्रीभूति नाम का ब्राह्मण जो कि राजा का पुरोहित था, वह नगर में पीटा गया और मारा गया, इस चोरी के दोष से उसने दीर्घकाल तक संसार में भ्रमण किया।

कथा : सिंहपुर के राजा सिंहसेन थे, जिनकी रानी रामदत्ता थी, पुरोहित श्रीभूति था। जो सब लोगों के लिए विश्वास पात्र था। पद्म षण्ड नगर में एक व्यापारी सुमित्र था, जिसकी स्त्री सुमित्रा थी और पुत्र समुद्रदत्त। सुमित्र और समुद्रदत्त व्यापार के लिए सिंहपुर आये और श्रीभूति के पास पाँच रत्न रखकर तथा सुमित्र की स्त्री और समुद्रदत्त की पत्नी को भी वहीं रखकर रत्नद्वीप चले गए। द्रव्य का अर्जन कर लौटने पर जहाज समुद्र के बीच में फट गया और दोनों डूब गए किन्तु सुमित्र आदि अन्य लोग मर गए। समुद्रदत्त किसी प्रकार बचकर सिंहपुर नगरी में आये और माता तथा पत्नी से मिले। तदुपरान्त श्रीभूति के पास रत्न लेने के लिए गए। श्रीभूति ने

प्रवहणे सुमित्रादयो मृताः। समुद्रदत्तः कथमपि सिंहपुरनगरमागतो जननीभार्ययोर्मिलित्वा श्रीभूतिपार्श्वे रत्नार्थी गतः। तेन च तमागच्छन्तमालोक्य लोभं गतेन पार्श्वस्थलोकानां कथितम्- पुरुषो ऽयं स्फुटितप्रवहणैर्ग्रहिलः मां प्रणम्य रत्नानि याचिष्यति। तथैव याचनं कुर्वन्नसौ लोकानां प्रत्ययं पूरयित्वा ग्रहिलो भणित्वा निस्सारितः। श्रीभूतिना मम रत्नानि गृहीतानीति सर्वत्र फूत्कारं कृत्वा राजकुलसमीपस्थः पश्चिमरात्रौ फूत्कारं करोतीति षण्मासेषु गतेषु राज्ञ्या राजा भणितः-नायं ग्रहिलो नित्यमेतादृशवचनोच्चारणात्। ततो राज्ञा स एकान्ते पृष्टस्तेन च पूर्ववृत्तान्तः कथितः। ततो रत्नग्रहणोपायो रचितः। सिंहसेनशिवभूत्योर्द्यूते रामदत्तया जयपाली तया शिवभूतिर्भोजनं पृष्टस्तेन कथितं अतस्तदेव साभिज्ञानं कृत्वा रामदत्तया निपुणमतिविलासिनी शिवभूतिभार्यायाः पार्श्वे या ग्रहिलरत्नानि याचितुं प्रेषिता। तया च न दत्तानि। पुनर्नामाङ्कितमुद्रिकासाभिज्ञानेन याचितानि। तथापि न दत्तानि। पुनर्यज्ञोपवीताभिज्ञानेन याचितानि ततो भीतया समर्पितानि। तया राज्ञो दर्शितानि। तेन च निजबहुरत्नानां मध्ये क्षिप्त्वा ग्रहिलो भणितो निजरत्नानि गृहाणेति। तेन गृहीतानि। ततो रुष्टेन राज्ञा गर्दभारोहणादिना शिवभूतिर्नगरमध्ये हतविप्रहतीकृतो मृत्वा दीर्घसंसारी जातः।।

29. वारत्रिको ऽपि कर्म व्यधादित्यादि

णीचं पि कुणदि कम्मं कुलपुत्तदुगुंछियं विगदमाणो।
वारत्तिगो वि कम्मं अकासि जह लंघिया हेदुं॥ 909॥

उसे अपने पास आते देख अपने पास बैठे लोगों से कहा - यह आदमी जहाज के टूटने से पागल हो गया है। यह मुझे आकर प्रणाम करके रत्न माँगेगा। समुद्रदत्त ने उसी प्रकार प्रणाम कर याचना की। ऐसा करते हुए लोगों ने जहाज टूटने के कारण से यह पागल हो गया, यह कहकर बाहर निकाल दिया। श्रीभूति ने मेरे रत्नों को ले लिया है, इस प्रकार सब जगह समुद्रदत्त चिल्लाता रहता। जब वह राजकुल के निकट रुककर आधी रात को भी इस प्रकार चिल्लाया तो रानी ने राजा से कहा कि छह माह बीत जाने पर भी यह हमेशा इसी प्रकार कहता रहता है, अतः यह पागल नहीं है। राजा ने एकान्त में उससे पूछा तो समुद्रदत्त ने पहले की पूरी कथा बता दी। तब रानी ने रत्न को लेने का एक उपाय सोचा। सिंहसेन और शिवभूति की द्यूत क्रीड़ा हुई। जिसमें रामदत्ता ने अँगूठी जीत ली थी, शिवभूति को भोजन के लिए पूछा, शिवभूति ने हाँ कह दी। इधर यह अंगूठी की निशानी ले जाकर रामदत्ता ने निपुणमति वेश्या को शिवभूति की पत्नी के पास भेजा कि जो पागल के रत्न हैं वे दे दो, किन्तु शिवभूति की पत्नी ने रत्न नहीं दिए। फिर शिवभूति की नाम लिखी हुई अंगूठी की पहचान कराके रत्न माँगे किन्तु रत्न फिर भी नहीं दिए। तब यज्ञोपवीत के चिह्न से रत्न माँगे तब डरकर उसने रत्न दे दिए। रानी ने उन रत्नों को राजा को दिखाया। राजा ने उन रत्नों को बहुत से रत्नों के बीच रख दिया और पागल से कहा कि तुम अपने रत्नों को निकाल लो। समुद्रदत ने अपने रत्न ग्रहण कर लिए। राजा ने कुद्ध होकर शिवभूति को गधे पर चढ़ाकर और अनेक प्रकार से दण्ड दिया। वह शहर के बीचों बीच घायल होकर मारा गया और दीर्घ संसारी हुआ।

29. नीच कार्य निन्दनीय है

अर्थ : कुलीन जिसकी निंदा करते हैं ऐसा कार्य, वह विषयी पुरुष अभिमान को तिलांजली देकर करने लगता है। उच्छिष्ट भोजन आदि कार्य नीच कार्य हैं, ऐसे कार्य वह करता है। कुलीन वारत्रिक नामक यति ने नाचने वाली स्त्री के निमित्त निंद्य कर्म किए।

अस्य कथा- अहिच्छत्रनगरे ब्राह्मणः शिवभूतिर्भार्या वसुशर्मा, पुत्रौ सोमशर्मशिवशर्मौ च। वेदं पठता ज्येष्ठेन कनिष्ठो वरत्रयाहतः। तत्प्रभृति शिवशर्मणो वारत्रिक इति नाम जातम्। तेन नाम्ना आहूयमानो निर्विण्णो निर्गत्य श्रावस्त्यां दमधराचार्यपार्श्वे मुनिर्भूत्वा महाटव्यां मासोपवासादिविधिना तपः करोति। एकदा सागरदत्तसार्थवाहस्याग्रे गङ्गदत्तनटपुत्रीं मदनवेगां नृत्यन्तीमालोक्य चर्यां गतो भग्नः। तां परिणीय द्वादशवर्षैस्तद्विज्ञाने ऽप्यतिदक्षो भूत्वा राजगृहनगरे श्रेणिकस्याग्रे वंशोपरि खड्गपञ्जरे तया सह नृत्यं कुर्वन्नाकाशे विद्याधरयुगलमालोक्य जातिस्मरो जातः। विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां प्रियंकरनगरे राजा प्रियंकरो राज्ञी प्रभावती तत्पुत्रो ऽहं पूर्वभवे प्रियंकरनामा सर्वविद्यापारगः। ततः भोगं भुक्त्वा तपो गृहीत्वा सौधर्मे देवो भूत्वा च्युत्वैष जातः। इयं च मम विद्याधरी देवी च भार्यासीदिति सापि तत्रैव जातिस्मरी जाता। ततस्तयोर्विद्याधरभवविद्याः समायाताः। तास्त्यक्त्वा वारत्रिको दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा केवलमुत्पाद्य निर्वाणं गतः।।

30. पादाङ्गुष्ठमसन्तं गणिकायां गौरसंदीप इत्यादि।

बारस वासाणि वि संवसित्तु कामादुरो य णासीय।

पादंगुट्ठमसंतं गणियाए गोरसंदीवो॥ 915॥

अस्य कथा- कुलालदेशे श्रावस्तीनगर्यां राजा दीपायनः। तेन चेत्रौत्सवे उद्याने मञ्जरिताम्रवृक्षमालोक्य

कथा : अहिच्छत्र नगर में एक ब्राह्मण शिवभूति रहता था, जिसकी पत्नी वसुशर्मा थी। उनके दो पुत्र सोमशर्मा और शिवशर्मा थे। वेद पढ़ते हुए बड़े भाई ने छोटे को वरत्र अर्थात् रस्सी से घायल कर दिया। उसके बाद शिवशर्मा का नाम वारत्रिक पड़ गया। उस नाम से बुलाये जाने पर उसे अच्छा नहीं लगता और निर्विग्न हो, नगर से निकलकर श्रावस्ती में दमधर आचार्य के पास मुनि हो गए और महान् जंगल में मासोपवास आदि अनेक दुर्धर तप करने लगे। एक बार सागरदत्त व्यापारी के सामने गंगदत्त नट की पुत्री मदनवेगा को नृत्य करते हुए देखा। वह वारत्रिक मुनि आहारचर्या के लिए गए थे, उसे देखकर वे व्रत से स्खलित हुए। उन्होंने मदनवेगा को ब्याह लिया और बारह वर्ष में नृत्य कला विज्ञान में अति कुशल हो गए। राजगृह नगर में बाँस के ऊपर तलवार के पिंजरे में वह मदनवेगा के साथ श्रेणिक के समक्ष नृत्य कर रहे थे कि तभी आकाश में विद्याधर युगल को देखकर जातिस्मरण हो गया। उन्होंने जान लिया कि विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में प्रियंकर नगर में राजा प्रियंकर थे, उनकी रानी प्रभावती का पुत्र ही मैं पूर्व भव में प्रियंकर नाम का था तथा सभी विद्याओं में पारगामी था। वहाँ भोगों को भोगकर दीक्षा लेकर मैं सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ और वहाँ से च्युत होकर मैं यहाँ जन्मा हूँ तथा यह मदनवेगा मेरी विद्याधरी देवी, पत्नी थी। इस प्रकार मदनवेगा को भी जातिस्मरण हुआ। तभी दोनों के पास विद्याधर भव की विद्यायें प्राप्त हो गयीं। उनको छोड़कर वारत्रिक पुनः दमधर आचार्य के पास गए और दीक्षा ग्रहण कर केवलज्ञान प्राप्त कर निर्वाण को प्राप्त हुए।

30. कामासक्ति का दुष्परिणाम

अर्थ : गौर संदीव नामा मुनि बारह वर्ष तक एक कायसुंदरी नामक गणिका के सहवास में रहा परन्तु उस गणिका के पाव का अंगूठा नहीं था यह बात उसको मालूम ही नहीं थी।

कथा : कुलाल देश में श्रावस्ती नगरी के राजा दीपायन थे। उन्होंने चैत्र मास के उत्सव में बगीचे में

एका मञ्जरी कर्णपूरीकृता। तमालोक्य लोकैः कर्णपूरं कुर्वद्भिश्च आम्रवृक्षो निर्मूलं नाशितः। व्याघुटता राज्ञा तस्य नाशमालोक्य सर्वमनित्यमिति चिन्तयित्वा उदीर्णबलवाहनपुत्राय राज्यं दत्वा उत्तरभूतिमुनिसमीपे तपो गृहीत्वा गुरुणा सहोज्जयिन्यां गतः। उद्याने कोकिलालापं श्रुत्वोत्तरमुनिनोक्तम्–यो मुनिरद्योज्जयिन्यां चर्यायां यास्यति तस्य व्रतभङ्गो भविष्यति। तत उपोषिताः केचित्केचिदन्यत्र चर्यार्थं गताः। दीपायनमुनिस्तु गिरौ आतपेन योगं कृत्वा गुरुवचनमश्रुत्वा उज्जयिन्यां चर्यायां प्रविष्टः। तत्रोदीर्णबलवाहनभयेन खातिकायां खन्यमानायां राजाज्ञया निःसरत्प्रविशत्सर्वलोकः खातिकां खन्यतोऽसावपि भणितः – भट्टारक, खातिकायां घातं देहि। स चागच्छन् दास्यामीत्युक्त्वा अग्रे गतः। अथ वाराणसीनगर्यां राजा श्रीधर्मो, राज्ञी श्रीमती, पुत्री श्रीकान्ता। सा उज्जयिन्यां जितशत्रुणा परिणीता। तस्याः कायसुन्दरी विलासिनी श्रीधर्मराजेन दत्ता। सा जितशत्रोः प्राणप्रिया जाता। श्रीकान्तया पितुः कथितम् – पित्रा च संकेतिनापि तेन कायसुन्दर्याः पादाङ्गुष्ठे नखे विषं संचारितम्। तेन दुर्गन्धो नाडीव्रणो जातः। ततो जितशत्रुणा परिहृता सुवर्णमयाङ्गुष्ठेन गणिकावृत्त्या स्थिता। तां दृष्ट्वा सश्रृङ्गारां तदासक्तचित्तः स मुनिर्व्याघुटितो लोकवचनाद् भूमिविहारिणीजलवाहिनीविद्याभ्यामभिमन्त्र्य कूर्दालेन खातिकायां घातं दत्वा गतः। कूर्दालजलेनोपद्रुतां नगरीं तां वार्तां च श्रुत्वा सकललोकैः सह गत्वा राजा तन्मुनेः पादे लग्नः कायसुन्दर्या उपरि सस्नेहां तदीयदृष्टिं दृष्ट्वा राज्ञा तदभिप्रायमालक्ष्य गृहे नीत्वा सा तस्य समर्पिता। प्रधानपदं च

फूलों से युक्त आम का पेड़ देखा। तभी एक फूल को तोड़ उसकी कान की बाली बनायी यह देखकर सभी लोगों ने कान की बाली बनाते हुए आम्रवृक्ष को पूरा बर्बाद कर दिया। राजा जब वापस लौटकर आये तो वृक्ष की यह दशा देखकर उन्होंने विचार किया कि संसार में सब कुछ नश्वर है और उदीर्णबलवाहन पुत्र के लिए राज्य देकर उत्तरभूति मुनि के पास दीक्षा ग्रहण कर ली और गुरु के साथ उज्जयिनी नगरी में पहुँचे। बगीचे में कोयलों की कूँ-कूँ सुनकर उत्तरभूति मुनि ने कहा कि जो मुनि आज उज्जयिनी में चर्या के लिए जायेगा उसका व्रत भंग होगा। यह सुनकर कितने ही मुनियों ने उपवास कर लिया। कितने ही मुनि चर्या के लिए अन्यत्र चले गए। दीपायन मुनि तो पर्वत पर आतापन योग कर रहे थे, उन्होंने गुरु के वचनों को नहीं सुना इसलिए उज्जयिनी में चर्या के लिए चले गए। वहाँ उदीर्णबलवाहन के भय से राजा की आज्ञा से खायी खोदी जा रही थी। वहाँ से निकलने वाले और जाने वाले सभी लोग उस खाई को खोदते। जब दीपायन मुनि निकले तो उनसे भी कहा भट्टारक! तुम भी खाई में आघात लगाओ। मैं आकर आघात करूँगा ऐसा कहकर आगे चले गए। वाराणसी नगरी के राजा श्रीधर्म और रानी श्रीमती थी। उनके श्रीकान्ता नाम की पुत्री थी। वह उज्जयिनी में जितशत्रु को ब्याही गयी। उसकी काय सुन्दरी वेश्या को श्री धर्मराजा ने दे दिया। वह वेश्या जितशत्रु की प्राण प्रिया हुई। श्री कान्ता ने पिता को कहा – संकेत पाते ही पिता ने उस कायसुन्दरी के पैर के अँगूठे के नाखून में विष संचारित कर दिया। उससे उसकी नाभि पर दुर्गन्ध युक्त घाव हो गया। तब उसे जितशत्रु ने त्याग दिया। तब वह अँगूठे को स्वर्णमय बना वेश्या रूप में वहीं रहती। श्रृंगार से युक्त उसे देखकर उसके प्रति आसक्त चित्त उन मुनि ने लौटते समय लोगों के कहने से भूमि विहारिणी और जलवाहिनी विद्याओं को आमंत्रित कर कुदाल से खायी में घात लगवाया और चले गए। कुदाल के लगते ही जल से नगरी में उपद्रव फैल गया, इस बात को सुनकर राजा सब लोगों के साथ उन मुनि के पास गया और उनके पैरों में गिर पड़ा। कायसुन्दरी के ऊपर मुनि की स्नेहिल दृष्टि को देखकर, मुनि के अभिप्राय को समझ गया और घर लाकर वह उन्हें सौंप दी तथा प्रधान पद भी दिया। राजा ने कायसुन्दरी को कहा – यदि इसका कुछ

दत्तम्। भणिता सा- यद्यस्य किंचिदनिष्टं भवति तदा तव निग्रहं करिष्यामीति। एकदा द्वीपान्तराद्रत्नपादुके राज्ञः प्रभृतेरानीते राज्ञा च ते गौरसंदीपस्य दत्ते तेन च तत्परिधानार्थं कायसुन्दरीचरणसुवर्णाङ्गुष्ठेन धृत्वा आकृष्टः। निःसृते तस्मिन्नाडीव्रणमालोक्य वैराग्यं गतो विमलचन्द्राचार्यसमीपे मुनिर्भूत्वापि तामेव स्मरति। सा च राजनिगृह- भयाद्गले चीरं बद्ध्वा उकल्मनं कृत्वा मृता। राज्ञा च कुपितेन तस्या अग्निदानं निषिद्धम्। ततः श्मशाने घातिता कुथिता च। गुरुणा ज्ञानिना भ्रमणिकायां गतेन तस्यां दिशि गत्वा तले बृहद्वेलां गौरसंदीपमुनिधृतः। तद्गन्धेन पीडितः आगत्य मुनिनोक्तम्-इयं सा त्वदीया वल्लभा। इदानीमेतस्याः किमिति तव गन्धो ऽपि न प्रतिभासत इत्युक्त्वा सा तस्य दर्शिता। ततो निःशल्यं तपः कृत्वा परलोकं गतः।।

31. कडारपिङ्गो गतो नरकम्

इहलोए वि महल्लं दोसं कामस्स वसगदो पत्तो।

कालगदो वि य पच्छा कडारपिंगो गदो णिरयं॥ 935॥

अस्य कथा-काम्पिल्यनगरे राजा नरसिंहः, मन्त्री सुमतिः, भार्या धनश्रीः, पुत्रः कडारपिङ्गः, राजश्रेष्ठी कुबेरदत्तः। श्रेष्ठिनी प्रियङ्गुसुन्दरी अतिशयवद्रूपलावण्ययौवनयुक्ता। तां दृष्ट्वा स कडारपिङ्गो विह्वलीभूतो गृहे गत्वा स्थितो मात्रा पृष्टः। किमीदृशी पुत्र तवावस्था जाता। तेन कथितम्- श्रेष्ठिन्या विना म्रियेऽहम्। ततस्तया सुमतिमन्त्रिणः कथितम्। तेन च कपटेन भणितो राजा । देव रत्नद्वीपात्किंजल्पनामा [नं] पक्षिणं श्रेष्ठी समानयतु।

अनिष्ट होगा तो मैं तुम्हारा निग्रह कर दूँगा। एक बार दूसरे द्वीप से राजा को भेंट स्वरूप दो रत्न पादुकाएँ आयीं। राजा ने उन्हें गौर संदीप को दे दिया। गौर संदीप ने उन्हें पहनने के लिए कायसुन्दरी के पैर का स्वर्णमय अँगूठा पकड़कर खींचा। उसके निकल जाने पर उसकी नाभि में घाव देखकर उसे वैराग्य हो गया और विमलचन्द्र आचार्य के पास मुनि होकर भी उसी की याद करता। वह वेश्या राजदण्ड के भय से गले में कपड़ा बाँधकर फँदा लगाकर मर गयी। राजा ने कुपित हो उसकी अग्निदान के लिए मना कर दिया। जिससे वह श्मशान में खायी गयी और सड़ गई। ज्ञानी गुरु ने जो कि भ्रमण को गए थे उसी दिशा में जाकर गौर संदीप मुनि को बहुत समय तक वहीं रखा। जब वह उसकी गन्ध से पीड़ित हो गया तो आकर मुनि ने कहा यह तुम्हारी ही वल्लभा है। इस समय क्या तुम्हें इसकी गन्ध भी समझ नहीं पड़ती है, ऐसा कहकर उसे गौर संदीप मुनि को दिखा दिया। जिससे वह मुनि निःशल्य तप करके परलोक को प्राप्त हुए।

31. कडारपिंग की कामान्धता

अर्थ : इस लोक में भी कडारपिंग नामक राजपुत्र काम के वशीभूत हो महान् दोष से दूषित हुआ और मरण कर नरक में उत्पन्न हुआ।

कथा : काम्पिल्य नगर के राजा नरसिंह थे, जिनके मन्त्री का नाम सुमति था और स्त्री का नाम धनश्री। उन दोनों के एक कडारपिंग पुत्र था। वहीं पर एक राजसेठ कुबेरदत्त थे और सेठानी प्रियंगु सुन्दरी। जो बहुत रूप लावण्य और यौवन से भरपूर थी। उस रानी को देखकर कडारपिंग व्याकुलित हो गया और घर में आकर बैठा रहा। तब माँ ने पूछा अरे पुत्र! तुम्हारी ऐसी अवस्था क्यों हो गयी? पुत्र ने कहा मैं सेठानी के बिना मर जाऊँगा। सेठानी ने यह बात सुमति मंत्री से कही। मंत्री ने कपट से राजा को कहा - देव रत्न! द्वीप में किंजल्पनामा पक्षी

तत्प्रभावेन व्याधिमरणपरचक्रादयो न भवन्ति। ततो राज्ञा तमानेतुं स प्रेषितः। तेन च निजगमनं प्रियङ्गुसुन्दर्याः कथितम्। तया भणितम् कडारपिङ्गो मे शीलनाशं कर्तुमिच्छति। तदर्थं तव गमनमिति। एतदाकर्ण्य शुभदिने प्रवहणं प्रेष्य श्रेष्ठी व्याघुट्यप्रच्छन्नो गृहे स्थितः। कडारपिङ्ग आगतो वर्चोगृहे निःसन्धि[1]मञ्चके प्रच्छदपटिका-प्रच्छादिते उपविष्टो वर्चोगृहान्तः पतितः षणमासां स्तत्र स्थितः। सर्वपिच्छपक्षान् कृत्वा नगरक्षोभेनागते प्रोहणे स कडारपिङ्गो राजसमीपे नीतः। पूर्ववृत्तान्तः कथितः। गर्दभारोहणादिना कडारपिङ्गः कदर्थितो मृतो नरकं गतः।

32. साकेतपुराधिपतिर्देवरतिरित्यादि

साकेतपुराधिवदी देवरदी रज्जसोक्खपब्भट्ठो।
पंगुलहेदुं छूढो णदीए रत्ताए देवीए॥ 949॥

अस्य कथा - अयोध्यायां राजा देवरतिः, राज्ञी रक्ता। स तस्यामासक्तः शत्रुभिरभिभूयमानोऽपि राजकार्यं किंचिदपि न चिन्तयति। ततो जयसेनकुमारं राज्ये प्रतिष्ठाप्य मन्त्रिभिः स रक्तया सह निर्द्धाटितोऽटवीं गतः। तस्याः बुभुक्षितायाः निजोरुमांसं संस्कृत्य तेन दत्तम्। तृषितायाश्च निजबाहुसिरारक्तमोषध्या जलं कृत्वादत्तम् एवमागत्य यमुनानदीतीरे वृक्षतले तां धृत्वा तस्याः भोजनमानेतुं ग्रामाभ्यन्तरं गतः। तद्वृक्षसमीपे वाटिका-सेचनार्थमरघट्टं खेटयन्तं पङ्गुं गीतं कुर्वन्तं दृष्ट्वा सा तस्यासक्ता। ततस्तयोक्तम्-मामिच्छ त्वम्। पङ्गुनोक्तम्-

---

रहता है। सेठजी को लाने के लिए आप आज्ञा दो। उस पक्षी के प्रभाव से व्याधि, मरण और परचक्र का कोई प्रभाव नहीं पड़ता। राजा ने उस पक्षी को लाने के लिए सेठ को भेज दिया सेठ ने अपने जाने का समाचार प्रियंग सुन्दरी को बताया। सुन्दरी ने कहा - कडारपिंग मेरे शील नाश करने की इच्छा करता है। इसलिए ही आपको भेजा जा रहा है। यह बात सुनकर शुभ दिन जहाज को भेजकर सेठजी वापस आकर घर में छुप गए। जब कडारपिंग आया तो पाखाना घर में एक बिना सहारे का मंच बनाकर उसको कपड़े से ढाँक दिया। जब वह बैठा तो पाखाना घर के अन्दर गिर पड़ा और छह महीने तक वहीं रहा। जब जहाज आने का नगर में क्षोभ हो गया तो सभी पंछियों के पंखों को लगाकर कडारपिंग राजा के पास ले जाया गया। पूर्व का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। गधे पर बिठाकर और अन्य तरीकों से कडारपिंग को सताया गया, जिससे मरकर वह नरक गया।

32. स्त्री की अस्थिरता

अर्थ : साकेत नगर का देवरती नाम का राजा था, उसके रक्ता नाम की अत्यन्त प्रिय रानी थी। रानी के स्नेह से उसने राज्य का और सुख का भी त्याग कर दिया। तथापि गान विद्या में प्रवीण ऐसे एक पंगु के ऊपर वह प्रेम करने लगी तथा उसके साथ रहने की इच्छा से उसने अपने पति को नदी में ढकेल दिया।

कथा : अयोध्या के राजा देवरति थे। जिनकी रानी रक्ता थी। वह राजा रानी में इतना आसक्त रहता कि शत्रुओं के द्वारा पराजित होने पर भी राजकार्य की कुछ भी चिन्ता नहीं करता था, इसी कारण से मंत्रियों ने जयसेन कुमार को राज्य पद पर बिठाकर रानी के साथ राजा को बाहर निकाल दिया। वे जंगल में चले गए। भूखी रानी के लिए राजा ने अपने जंघे का माँस पकाकर रानी को दिया। प्यासी होने पर अपनी बाहु के सिराओं के खून को औषधि से जल बनाकर दिया। इस प्रकार यमुना नदी के तट पर आकर वृक्ष के नीचे रानी को बिठाकर उसके लिए भोजन लाने के लिए गाँव के अन्दर गया। रानी ने उस वृक्ष के निकट वाटिका में जल सेचन करने के लिए रहट

1. निसिन्धु

त्वदीयभर्तुर्बिभेमि। तयोक्तम्-विस्रब्धो भव मारयामि लग्ना तम्। एतस्मिन्प्रस्तावे स भोजनं गृहीत्वा आगतः। तया च रोदनं कर्तुमारब्धम्। ततस्तेनोक्तम्- किमर्थं प्रिये रोदनं करोषि। तयोक्तम्- तवायुर्ग्रन्थिदिने ऽद्य हताशा किं करोमि। तेनोक्तम्-किमनेन प्रिये त्वयैव सर्वं मम पूर्यते। तथाप्याचारमात्रं करोमीत्युक्ता तं त्रिग्रन्थितपुष्पैर्यमुनातीरे तं बन्धयित्वा नद्यां प्रक्षिप्य पङ्गुना सह निर्व्याकुला स्थिता। देवरतिश्च नदीप्रवाहेण गत्वा कथमपि नदीतोयान्निःसृत्य मङ्गलपुरे बहिर्वृक्षतले सुप्तः। तत्र व्यपत्यो राजा श्रीवर्धनो मृतः। ततो विधिना मन्त्रिभणितपट्टहस्तिना पूर्णकलशेन स्नापितो राज्ये स्थापितः। स्त्रियं न पश्यति। पङ्गुलानां किंचित्र ददाति। रक्तापि चोल्लके पङ्गुं कृत्वा स्कन्धेन परिवहन्ती मम परिणीतः पतिरिति लोकानां कथयन्ती लोकैः सती भण्यमाना मङ्गलपुरे समायाता। राजसिंहद्वारे च गता प्रतीहारेण राज्ञो विज्ञप्तः। सतीपङ्गुलौ सुस्वरौ द्वारि तिष्ठतः। काण्डपटान्तर्धानेन[1] तदीयं वचनमाकर्ण्य शब्देन परिज्ञाय सोपहासं तदीयं सतीत्वं प्रशस्य प्रविचार्य तस्यैव जयसेनपुत्रस्य राज्यं समर्प्य दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा स्वर्गं गतः।

खींचते हुए एक पंगु व्यक्ति देखा जो गीत गा रहा था। रानी उसमें आसक्त हो गयी, जिससे रानी ने कहा - तुम मुझे रख लो। पंगु ने कहा - तुम्हारे पति से मुझे डर है। रानी ने कहा - तुम उसकी चिन्ता मत करो, उसको मैं मार दूँगी, उसी समय वह भोजन ले करके आ गया तो उसकी स्त्री ने रोना प्रारम्भ कर दिया। देवरति ने पूछा - प्रिय! तुम क्यों रो रही हो? तब रक्ता ने कहा - आज तुम्हारी वर्षगांठ का दिन है किन्तु आज मैं हताश हूँ कि क्या करूँ? देवरति ने कहा - अरे प्रिये! दूसरी चीज की जरूरत ही क्या ? तुम ही मेरे लिए सब कुछ हो। फिर भी कुछ तो करना है, ऐसा कहकर फूल गूँथने की रस्सी से यमुना के किनारे देवरति को बाँध दिया और नदी में फेंककर पंगु के साथ आनन्द से रहने लगी। देवरति नदी के प्रवाह से बह गया किसी भी प्रकार नदी से निकलकर मंगलपुर में पहुँचा और बाहर ही वृक्ष के नीचे सो गया। वहाँ का राजा श्रीवर्धन था, जिसके कोई सन्तान नहीं थी और वह स्वयं मर गया था। इसलिए मंत्रियों के द्वारा कहे हुए राज हस्ती ने देवरति को भरे कलश से नहला दिया (अर्थात् मंत्रियों ने सोचा कि हाथी जिस किसी को इस भरे कलश से नहलायेगा उसी को राजा बना दूँगा) जिससे विधिपूर्वक देवरति को राज्य पर स्थापित किया गया। देवरति अब स्त्रियों को नहीं देखता और पंगु लोगों को कुछ भी दान नहीं देता। रक्ता एक टोकरे में (साफा की झोली में) पंगु को बिठाकर घूमती रहती कि यह मेरा पति है जिससे मेरा विवाह हुआ है, ऐसा लोगों को कहती हुई मंगलपुर में आ पहुँची। सब लोग उसे सती कहने लगे। जब वह राजमहल के सिंह द्वार पर पहुँची तो पहरेदारों ने राजा को इस बात की सूचना दी कि सती और पंगु सुरीला गाना गाते हुए द्वार पर बैठे हैं। राजा ने परदे में छुपकर उसके गीत को सुना और शब्दों से रक्ता को पहचान कर उपहास के साथ उसके सतीत्व की प्रशंसा की और विचारकर उसके जयसेन पुत्र को राज्य देकर दमधर आचार्य के पास जाकर दीक्षा ग्रहण कर ली और स्वर्ग चले गए।

---

1. कण्डपाटा

33. विच्छेदेर्ष्यावशतो गोपवतीमस्तकमित्यादि

ईसालुयाए गोववदीए गामकूडधूदियासीसं।
छिण्णं पहदो तध भल्लएण पासम्मि सोहबलो ॥ 950॥

अस्य कथा- पलाशग्रामे विषयिकसिंहबलो, भार्या गोपवती तच्चौरिकया पद्मिनीखेटग्रामे सिंहसेनग्रामकूटस्य पुत्रीं सुभद्रां परिणीतवान्। तच्छ्रुत्वा गोपवती कोपात्तत्र गत्वा तद्गृहं प्रविश्य मातृकाग्रे सुप्तायाः सुभद्राया मस्तकं गृहीत्वा व्याघुटिता। प्रभाते सुभद्रारुण्डं दृष्ट्वा लज्जित्वा पलाशग्रामे आगतः। गोपवत्या चाभ्यागतस्वागतं कृत्वा भोजनं दत्तम्। तच्चोद्वेगान्न रोचते तस्य। ततस्तयोक्तम्-सुभद्राया मुखं पश्य येन भोजनं रोचत इत्युक्त्वा तन्मस्तकं तद्भाजने क्षिप्तम्। ततो राक्षसीयमिति मत्वा भयत्रस्तो नश्यच्छल्येन विदार्य मारितः।

34. वीरमती संज्ञयेत्यादि

वीरवदीए सूलगदचोरदट्ठोट्ठिगाए वाणियगो।
पहदो दत्तो य तहा छिण्णो ओट्ठो त्ति आलविदो॥ 951॥

अस्य कथा - राजगृहनगरे अतीवेश्वरः श्रेष्ठिधनमित्रः, श्रेष्ठिनी धारिणी, पुत्रो दत्तः। भूमिगृहनगरे आनन्दमित्रवत्योः पुत्रीं वीरवतीं परिणीतवान्। तत्रैव चोरः प्रचण्डो ऽङ्गारनामा तस्यानुरक्ता वीरवती दत्ता। रत्नद्वीपे

---

33. गोपवती की ईर्ष्या

अर्थ : सिंहबल नामक मनुष्य के गोपवती नामक दुष्ट ईर्ष्यालु स्त्री थी, उसने अपनी सौत का मस्तक काटकर अपने पति को भी भाले से मार डाला।

कथा : पलाश ग्राम में एक सिंहबल नाम का व्यसनी व्यक्ति था, जिसकी रानी गोपवती थी। सिंहबल ने चोरी से पद्मिनी खेट गाँव में सिंहसेन ग्राम के मुखिया की पुत्री सुभद्रा को ब्याह लिया। यह सुनकर गोपवती क्रोध से वहाँ जाकर उसके घर में घुसकर माता के पास सोती हुई सुभद्रा के मस्तक को काटकर घर ले आयी। सुबह सुभद्रा के धड़ को देखकर सिंहबल को लज्जा आयी और वह पलाश गाँव में आ गया। गोपवती ने उसे आया देखकर उसका स्वागत किया और भोजन खिलाया, किन्तु सिंहबल को भय से कुछ भी नहीं रुचता। यह देख गोपवती ने उससे कहा सुभद्रा का मुख देख लो जिससे यह भोजन रुचने लगे, ऐसा कहते हुए उसने सुभद्रा के मस्तक को उसकी थाली में रख दिया यह देख सिंहबल भयभीत हो गया और यह राक्षसी है, ऐसा मानकर भय से भागा। गोपवती ने एक खपची से उसे भेद दिया जिससे वह सिंहबल मारा गया।

34. वीरमती की दुष्टता

अर्थ : शूल पर चढ़ाए हुए चोर के द्वारा जिसका ओष्ठ खण्डित किया गया था, ऐसी वीरमती नाम की स्त्री के दत्त ने मेरा ओष्ठ काटा है, ऐसा राजा से कहा और राजा के द्वारा अपने पति का उस दुष्टा ने घात कराया।

कथा : राजगृह नगर में अत्यन्त सम्पन्न एक सेठ धनमित्र थे। जिनकी धारिणी सेठानी थी। उन दोनों के एक पुत्र था जिसका नाम दत्त था। भूमिगृह नगर के आनन्द और मित्रवती की पुत्री वीरमती से उसका विवाह

गत्वा बहुभिर्दिवसैः बहुक्रियाणकानि गृहीत्वा आगतः। भार्याया उत्कण्ठितो निजविडादग्रे[?]भूत्वा श्वशुरगृहं गच्छन्नटव्यां सहस्रभटचोरेण दृष्टः। ततः स कौतूहलात्तदीयं कौतुकं द्रष्टुं तेन सहागतः। श्वशुरेणागतस्य महोत्सवः कृतः। तस्मिन्नेव दिने चौरिकायामङ्गारचोरः प्राप्तो राज्ञा शूलेन प्रोतः। रात्रौ सुप्तं दत्तं त्यक्त्वा वीरवत्या चौरसमीपं गच्छत्या पृष्ठतः सहस्त्रभटस्यागच्छतः पादसंचारं ज्ञात्वा मुक्तखड्गघातेन तदीयाङ्गुलिर्वटप्ररोहश्च छिन्नः। चौरेण सा भणिता-प्रिये मम म्रियमाणस्यालिङ्गय मुखेन ताम्बूलं देहि। मृतकनिचयं कृत्वा तस्योपरि चटित्वा मुखताम्बूलदानकाले स्त्रंसितो मृतकनिचयस्तेन म्रियमाणेन खण्डितो ऽधरस्तन्मुखे स्थितः। गृहमागत्य तया दत्तसमीपे पूत्कारः कृतोऽनेन ममैतत्कृतमिति। राज्ञा दत्तो मार्यमाणः सहस्रभटेन सर्वं वृत्तान्तं कथयित्वा रक्षितः।

35. सुरतस्य दयितस्य महिलाया इति

साधुं पडिलाहेदुं गदस्स सुरयस्स अग्गमहिसीए।

णट्ठं सदीए अंगं कोढेण जहा मुहुत्तेण॥ 1061॥

अस्याः कथा-अयोध्यानगर्यां राजा सुरतः, पञ्चशतान्तः पुराग्रमहिषी सती। तस्यामासक्तो महाराजकार्ये महामुन्यागमने च मां विज्ञापयेस्त्वं नान्यथेति प्रतीहारं भणित्वा अन्तःपुरे प्रविश्य स्थितः। दमधरधर्मरुचिमुनी मासोपवासिनौ चर्यायां प्रविष्टौ। सत्या मण्डितमुखे गोरोचनातिलकं कुर्वाणस्य राज्ञः प्रतीहारेण विज्ञप्तम्-

---

हुआ। वहीं पर एक प्रचण्ड चोर था, जिसका नाम था अंगार। वीरमती की उस चोर में आसक्ति होने से उसे दी गयी। बहुत दिनों बाद दत्त रत्नद्वीप से धन कमाकर वापस आया। अपनी पत्नी में उत्कण्ठित हुआ... श्वसुर के घर की ओर जाते हुए सहस्रभट चोर ने देख लिया। वह चोर विनोद से उसके कौतुक (चेष्टाओं) को देखने के लिए उसके साथ आ गया। श्वसुर ने आगत दत्त का सम्मान किया। उसी दिन ही चोरी में अंगार चोर पकड़ा गया। राजा ने उसे शूली पर चढ़ा दिया। रात्रि में दत्त को सोता हुआ छोड़कर वीरमती चोर के पास चल दी। जाते हुए सहस्रभट भी पीछे चल दिया। पद की आवाज से वीरमती ने जान लिया कि पीछे कोई है इसलिए उसने तलवार चला दी, जिससे सहस्रभट की अंगुलि के साथ बड़ की शाखा भी फट गयी। चोर के पास पहुँचकर अंगार ने उससे कहा प्रिये मैं कुछ ही क्षण में मरने वाला हूँ, मुझे आलिंगन कर मुख से पान दो। नीचे अन्य मृतकों के ढ़ेर लगाकर मरते हुए अंगार ने ओठों को काटा जो उसके मुख में ही रह गए। घर जाकर दत्त के पास वह चिल्लाने लगी कि इसी ने मेरा ऐसा हाल कर दिया। राजा ने दत्त को मारने की आज्ञा दी किन्तु सहस्रभट ने सब वृत्तान्त कह कर दत्त की रक्षा की।

35. मुनि निन्दा का फल

अर्थ : सुरत राजा की पटरानी बहुत ही सुन्दर थी। एक समय राजा मुनीश्वर को आहार देने के लिए गए और इधर मुनि निन्दा से अन्तर्मुहूर्त में ही रानी का शरीर कोढ़ से व्याप्त हो गया।

कथा : अयोध्या नगरी के राजा सुरत थे। उनकी पाँच सौ रानियाँ थीं। जिनकी पटरानी सती थी। वह राजा रानी में आसक्त रहता था। महामुनि के आगमन पर तुम महाराज के कार्य के लिए मुझे सूचित कर देना अन्यथा नहीं, इस प्रकार पहरेदार को कहकर राजा रनवास में प्रवेश कर गया। इधर दमधर और धर्मरुचि दो मुनि एक मास उपवास के बाद आहार चर्या के लिए प्रविष्ट हुए। सती के सजे हुए मुख पर राजा गोरोचन से तिलक

यावत्तिलको न शुष्यति तावद्देवि मुनिचर्यां कारयित्वा आगच्छामि लग्नो मा रोषं कुर्यास्त्वमित्युक्त्वा गतः। मुनी स्थापयित्वा चर्यां कारयित्वा शीघ्रमायातः। मुनिनिन्दाफलेन सत्या उदुम्बरकुष्ठगृहीतं शरीरमालोक्य सुरतो मुनिरभूत् सती च दीर्घं संसारं गता।

36. व्याघ्रभयादित्यादि

वग्घपरद्धो लग्गो मूले य जहा ससप्पबिलपडिदो।
पडिदमधुबिंदुभक्खणरदिओ मूलम्मि छिज्जंते॥
तह चेव मच्चुवग्घपरद्धो बहुदुक्खसप्पबहुलम्मि।
संसारबिले पडिदो आसामूलम्मि संलग्गो॥
बहुविग्घमूसगेहिं आसामूलम्मि तम्मि छिज्जंते।
लेहदि विभयविलज्जो अप्पसुहं विसयमधुबिंदुं ॥ 1063-65॥

अस्य कथा - कश्चित्पुरुषोऽटव्यां व्याघ्रेण खेदितो ऽन्धकूपे पतितस्तृणस्तम्बे लग्नो व्याघ्राभिहित-कूपतटागतवृक्षशाखाकम्पादुच्चलितमधुमक्षिकाभिः खाद्यमानसर्वाङ्गो मुखे पतितमृष्टमधुबिन्दुः स्तम्भमूलं च कृष्णश्वेतमूषिकौ कर्तयतः तले चतुर्दिशासु चत्वारो महासर्पा एतत्सर्वमविगणयन् मधुबिन्दुमेव वाञ्छति।

कर रहे थे। तभी राजा को द्वारपाल ने आकर मुनि आगमन की सूचना दी। राजा ने सती से कहा कि यह तिलक जब तक सूख नहीं पायेगा तब तक मैं मुनि की चर्या कराके आ पहुँचूंगा। तुम गुस्सा नहीं करना और चला गया। मुनि को बिठाकर उनकी चर्या कराके राजा शीघ्र ही आ गया, किन्तु मुनि निन्दा के फल से सती को उदुम्बर कुष्ठ रोग हो गया। उसके रुग्ण शरीर को देखकर सुरत मुनि हो गए और सती दीर्घ संसारी हो गयी।

36. संसार की विचित्रता

अर्थ : मारने के लिए जिसके पीछे व्याघ्र लगा है, ऐसा कोई पथिक, जिसमें सर्प हैं, ऐसे कुँए के भीतर तट पर लगी बेली के जड़ को पकड़ कर लटकने लगा, उस समय मधु के छत्ते से मधुबिंदु उसके ओष्ठ के अग्र भाग पर गिरने लगे और वह उसमें रत हो गया तथा भूल गया कि इसकी जड़ चूहों के द्वारा काटी जा रही हैं। इसी प्रकार इस मनुष्य के पीछे मृत्यु रूपी व्याघ्र लगा है। यह मनुष्य अनेक दुःख रूपी सर्प जिसमें निवास करते हैं, ऐसे संसार रूपी बिल में पड़ा है परन्तु आशा रूपी बेली की जड़ हाथ में पकड़ रखी है। वह जड़ भी अनेक विघ्न रूपी चूहों के द्वारा काटी जा रही है, फिर भी वह निर्भय और निर्लज्ज हो मधुबिंदु के समान अल्प सुख के रसास्वादन में मग्न है।

कथा : कोई मनुष्य एक जंगल में व्याघ्र के भय से अन्ध कुँए में गिर पड़ा। गिरते हुए उसने तृण की झाड़ी को पकड़ लिया। उधर व्याघ्र पीछा करते हुए तट के निकट आया, वृक्ष की शाखायें हिलने से मधुमक्खी उड़ने लगी, उस व्यक्ति के सर्वांग को मक्खियों ने खा लिया और मुख में शहद की बूँदें भी गिरने लगी। झाड़ी की जड़ों को एक काला और एक सफेद दो चूहे काट रहे थे, चारों दिशाओं में चार विकराल सर्प फुंकारने लगे। यह सब कुछ होते हुए भी कुछ कष्टों की चिन्ता किए बिना केवल शहद की बूँद की ही चाह रखता है।

37. जातश्च चारुदत्त इत्यादि

जादो खु चारुदत्तो गोट्ठीदोसेण तह विणीदो वि।
गणियासत्तो मज्जासत्तो कुलदूसओ य तहा ॥1082॥

अस्य कथा-चम्पानगर्यां राजा शूरसेनः, श्रेष्ठी भानुः, श्रेष्ठिनी सुभद्रा पुत्रार्थं कुदेवतानां सेवां करोति। एकदा चैत्यालये चारणमुनिं वन्दित्वा भगवन्मे तपो [?] भविष्यति न वेति तयोक्तम्। कथितं भगवता - तवोत्तमः पुत्रो भविष्यति। पुत्रि, मिथ्यादेवानां सेवां कृत्वा सम्यक्त्वम्लानतां मा कुरु इत्युक्त्वा मुनिर्गतः। तस्याः कतिपयदिनैश्चारुदत्तनामा पुत्रो जातः। सर्वार्थस्य मातुलस्य पुत्री मित्रवती परिणीता परं कामसेवां न करोति। ततः सुभद्रया गणिकाभिः व्यसनिभिश्च सह संसर्गः कारितो मांसादौ प्रवृत्तो वसन्तसेनया गणिकया सह द्वादशवर्षैः षोडशसुवर्णकोट्यः खादिताः। ततो मित्रवतीस्वकीयान्याभरणानि प्रेषितानि दृष्ट्वा कलिङ्गसेनया कुट्टिन्या भणितम्। पुत्रि, क्षीणद्रव्यो ऽयं त्यज्यतां सधनेऽन्यत्र नरे मनः क्रियताम्। ततोऽसौ त्यक्तो भार्याभरणानि गृहीत्वा मातुलेन सहोलूखलदेशे उशिरावर्तपत्तनं गतः। कार्पासमादाय तामलिप्तपुरीं गच्छतोऽटव्यां दवाग्निना कार्पासो दग्धः। उद्वेगान्मातुलस्याकथयत्समुद्रदत्तस्य प्रोहणेन पवनद्वीपं गतो धनमुपार्ज्यागच्छतः प्रोहणः स्फुटितः। एवं सप्तवारान् तस्य प्रोहणः स्फुटितः। फलकेन समुद्रमुत्तीर्य राजपुरपत्तनं गतो विष्णुमित्रपरिव्राजकेन गौरवेण निजमठे धृत्वा

---

37. चारुदत्त की कथा

अर्थ : ज्ञानी होकर भी चारुदत्त कुसंसर्ग से वेश्या में आसक्त हुआ, तदनन्तर उसने मद्य में आसक्ति कर अपने कुल को दूषित किया।

कथा : चम्पानगरी में एक राजा शूरसेन थे, वहीं एक सेठ भानु रहते थे। सेठानी का नाम सुभद्रा था। वह सन्तान की प्राप्त के लिए कुदेवताओं की सेवा करती रहती। एक बार चैत्यालय में चारण मुनि की वन्दना करके उसने पूछा कि भगवन्! मेरे पुत्र होगा या नहीं। तब मुनिराज ने कहा तुम्हारे उत्तम पुत्र होगा किन्तु पुत्री! तुम मिथ्या देवताओं की सेवा करके अपने सम्यक्त्व को मलीन मत करो, ऐसा कहकर मुनि चले गए। सुभद्रा के कुछ दिनों बाद चारुदत्त नाम का पुत्र हुआ। सर्वार्थ मामा की बेटी मित्रवती से चारुदत्त का विवाह हो गया पर वह काम क्रीड़ा नहीं करता। इसलिए सुभद्रा ने वेश्याओं और व्यसनी लोगों की संगति में चारुदत्त को करा दिया। जिससे चारुदत्त की माँस आदि खाने-पीने में प्रवृत्ति हो गयी। वह बसन्तसेना वेश्या के साथ बारह वर्ष तक रहा और सोलह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें खा गया। जब मित्रवती ने अपने दूसरे आभूषण भेजे तो यह देखकर कलिंगसेना वेश्या ने कहा पुत्रि! अब इसका धन चला गया इसको छोड़ दे और किसी दूसरे धनवान मनुष्य में अपने मन को लगा। यह सुनकर बसन्तसेना ने चारुदत्त को छोड़ दिया। वह अपनी स्त्री के आभूषणों को लेकर मामा के साथ उलूखल देश के उशिरावर्त नगर में पहुँचा। कपास को खरीदकर ताम्रलिप्त नगरी की ओर जा रहे थे तभी रास्ते में जंगल में दावाग्नि से कपास जल गया। दुःखित होता हुआ चारुदत्त मामा से कहकर समुद्रदत्त सेठ के जहाज से पवनद्वीप पहुँचा। वहाँ से धन कमाकर आ रहा था कि जहाज फट गया। इस प्रकार सात बार उसका जहाज फटा (अर्थात् वह धन कमाता और फिर जहाज से घर आने लगता तो जहाज फट जाता)। लकड़ी के फलक (तख्त) के सहारे समुद्र को पारकर राजपुर नगर में आया। वहाँ एक विष्णुमित्र संन्यासी ने उसे सम्मान के साथ अपने मठ में रखकर

भणितः। भीमाटव्यां पर्वतनितम्बे धातुरसस्तिष्ठति। तं ते पुत्र ददामि येन तव दारिद्र्यनाशो भवति। चारुदत्तेनोक्तम्-तातैवं कुरु। ततस्तेन वरत्राबद्धशिक्येन हस्ते तुम्बकं दत्वा तत्कूपे प्रवेशितः। रसं गृह्णन्नेकपुरुषेण स निषिद्धः। ततश्चारुदत्तेन पृष्टः कस्त्वम्। उज्जयिन्यां वणिक् धनदत्तोऽहम्। सिंहलद्वीपाद्व्याघुटितो भिन्नप्रोहणो ऽनेन परिव्राजकेन वञ्चयित्वा रसतुम्बकं गृहीत्वा अत्र वरत्रं कर्तित्वा निक्षिप्तो रसे। न भक्षितः प्राणा मे गच्छन्ति लग्ना इत्याकर्ण्य चारुदत्तेनोक्तम्-तर्हि रसोऽस्य न दीयते। तेनोक्तम् - यदि न दीयते तदा पाषाणादिनोपसर्गं करिष्यति। अतो रसतुम्बकं दत्वा द्वितीयवेलायां शिक्ये पाषाणे धृते दूरमाकृष्य शिक्यवरत्रां कर्तित्वा गतः परिव्राजकः। ततश्चारुदत्तेन स भणितः। त्वया मम जीवितं दत्तं तवेदानीं सुगतिप्राप्त्युपायं ददामीत्युक्त्वा संन्यासं पञ्चनमस्कारांश्च दत्वा चारुदत्तेन पृष्टः-अस्ति मे कोऽपि निःसरणोपायः। तेनोक्तं च- रसं पीत्वा अद्य गता गोधा प्रभाते गच्छन्त्यास्तस्याः पुच्छं धृत्वा निःसरत्वम्। ततस्तथा निर्गत्य महाटवीं परित्यज्य गच्छन् चारुदत्तो मातुलेन मिलितेन रुद्रदत्तेन दृष्टो रत्नद्वीपे चालितः। छागयोरारुह्याजपथेन पर्वतस्योपरि गतौ। रुद्रदत्तेन भणितो ऽपि चारुदत्तो निजच्छागं न मारयति। व्रतादुपकारान्न च हतः। सोऽपि रुद्रदत्तेनैव मारितः चारुदत्तेन तस्य संन्यासपञ्चनमस्काराश्च दत्ताः। छागयोश्चर्मभस्त्रामध्ये प्रविष्टौ तौ रत्नद्वीपायातभेरुण्डपक्षिभ्यां गृहीत्वा रत्नद्वीपाभिमुखं नीयमानयोरन्तराले रुद्रदत्तभस्त्रायां द्वयोर्भेरुण्डयोर्युद्धे समुद्रमध्ये पतितो रुद्रदत्तो मृत्वा दुर्गतिं गतः। चारुदत्तभस्त्रा तु रत्नद्वीपे रत्नचूलपर्वतस्योपरि मुक्ता। तां पाटयित्वा निर्गतः चारुदत्तः। नष्टो भेरुण्डः।

कहा, इस महान् जंगल में एक पर्वत है, जिसकी तलहटी में धातु रस है। हे वत्स! आओ उसे तुम्हें देता हूँ जिससे तुम्हारी दरिद्रता का नाश हो जाये। चारुदत्त ने कहा तात! ऐसा ही करो। तब संन्यासी ने रस्सी से बंधे सींके के सहारे हाथ में एक तुम्बी देकर कुँए में उतार दिया। वहाँ रस को ग्रहण करते हुए एक पुरुष ने उसे रोका। तब चारुदत्त ने पूछा तुम कौन हो? तब उस पुरुष ने बताया कि उज्जयिनी नगरी का व्यापारी धनदत्त हूँ। सिंहलद्वीप से आते हुए जहाज के टूट जाने से इसी संन्यासी ने छल से रस की तुम्बी को लेकर और रस्सी को काट दिया और इस रस में छोड़ दिया। कुछ खाया भी नहीं है, जिससे मेरे प्राण जाने को हैं। यह सुनकर चारुदत्त ने कहा तो फिर रस निकाल कर इसको नहीं देते हैं। धनदत्त ने कहा यदि रस नहीं दोगे तो वह ऊपर से पत्थर आदि के द्वारा उपसर्ग करेगा। इसलिए पहले तो रस की तुम्बी दे दी किन्तु दूसरी बार सींके में पत्थरों को रख दिया। उस सींके को दूर तक खींचकर सींके की रस्सी को काटकर वह संन्यासी चला गया। यह देख चारुदत्त ने उसको कहा तुमने मुझे जीवन दिया इसके बदले में अब तुम्हें सुगति की प्राप्ति का उपाय देता हूँ। ऐसा कहकर संन्यास दिलाकर पञ्च नमस्कार मंत्र दिया। तब पुनः चारुदत्त ने पूछा क्या मेरे निकलने का कोई उपाय है? तब धनदत्त ने कहा आज तो गोय रस पीकर चली गई। सुबह रस पीकर जब गोय जाये तो उसकी पूँछ पकड़कर तुम निकल जाना। इस प्रकार वहाँ से निकलकर चारुदत्त महाअटवी को छोड़कर जाते हुए मामा से मिला। रुद्रदत्त ने यह देख लिया और चारुदत्त को रत्नद्वीप की ओर ले गया। दो बकरों के ऊपर सवार होकर बकरी के चलने के मार्ग से पर्वत के ऊपर पहुँच गए। रुद्रदत्त के कहने पर भी चारुदत्त ने अपना बकरा नहीं मारा। हिंसा न करने का व्रत है एक बात और दूसरा इसने उपकार किया है इसलिए चारुदत्त ने नहीं मारा, किन्तु रुद्रदत्त ने उस बकरे को भी मार दिया। चारुदत्त ने उसको संन्यास दिलाया पञ्च नमस्कार मंत्र सुनाया। बकरे के खाल की थैली के बीच दोनों बैठ गए। रत्नद्वीप से आये हुए भेरुण्ड पक्षियों ने बकरों की थैली उठा ली और रत्नद्वीप की ओर चलने लगे। बीच में

तत्रातपनस्थं मुनिमालोक्य प्रणतवान्। पूर्णयोगेन मुनिनोक्तम्-कुशलं ते चारुदत्त। तेनोक्तम्-भगवन्, क्वाहं त्वया दृष्टः। मुनिः कथयति। अमितविद्याधरो ऽहं चम्पायां कदलीवने वसन्तश्रीभार्यया सह क्रीडितुं गतः। वसन्तश्रियं दृष्ट्वा धूमसिंहविद्याधरो मां छलेन वृक्षे विद्यया कीलित्वा तां गृहीत्वा गतः। तस्मिन्प्रस्तावे त्वया तत्र क्रीडितुं गतेनाहं दृष्टः। मया चोक्तम्-अस्मिन् फरके तिस्र ओषधयः सन्ति। मित्रैताः पिष्ट्वा मे शरीरे देहि येनोत्कीलितो भवामि। तासु तथा दत्तासु गत्वाष्टापदगिरौ धूमसिंहं जित्वा भार्यां मोचयित्वा व्याघुट्य त्वं भणितो ऽसि मित्र वरं प्रार्थयेति। त्वया चोक्तम्- न मे वरेण किंचित्प्रयोजनमिति। ततो दक्षिणश्रेण्यां शिवमन्दिरे पुरे कियत्कालं राज्यं कृत्वा सिंहयशोवराहग्रीवपुत्रयो राज्यं समर्प्य चारणमुनिर्भूत्वात्र तपः करोमि। अत्र प्रस्तावे पुत्रयोर्वन्दनाभक्त्यर्थम् आगतयोश्चारुदत्तवृत्तान्तः कथितः। अत्र प्रघट्टके छागचरदेवेनागत्य चारुदत्तस्य प्रणामः कृतः। ततश्चारुदत्तेनोक्तम्-गुरौ सति मम प्रणामः कर्तुं देव तवानुचितः। देवेनोक्तम्- त्वमेव मे गुरुः रुद्रदत्तेन मार्यमाणस्य मे संन्यासपञ्च नमस्काराश्च त्वया दत्तास्तन्माहात्म्यात्सौधर्मे स्वर्गे देवो जात इत्युक्त्वा दिव्यहारादिभिः पूजां कृत्वा स्वर्गे गतः। सिंहयशोवराहग्रीवौ चारुदत्तं चम्पायां नीत्वा अक्षयद्रव्यं दत्वा निजनगरं गतौ। चारुदत्तोऽपि कतिपयदिनैः सुन्दरपुत्राय श्रेष्ठिपदं समर्प्य मुनिर्भूत्वा स्वर्गं गतः।

दोनों भेरुण्ड के बीच लड़ाई हो गयी, जिससे रुद्रदत्त की थैली बीच समुद्र में गिर गयी और रुद्रदत्त मरकर दुर्गति का पात्र हुआ, किन्तु चारुदत्त की थैली रत्नद्वीप में रत्नचूल पर्वत के ऊपर छोड़ दी, उसको खोलकर चारुदत्त निकल आया, भेरुण्ड उड़ गया। वहीं पर्वत पर आतापनयोग में स्थित मुनि को देखकर प्रणाम किया। योग पूर्णकर मुनिराज ने कहा - चारुदत्त तुम कुशलपूर्वक हो? चारुदत्त ने पूछा भगवन्! आपने मुझे कहाँ देखा, तब मुनि ने कहा - मैं अमित विद्याधर हूँ। चम्पापुरी के कदली वन में वसन्तश्री पत्नी के साथ क्रीड़ा के लिए गया था। वसन्तश्री को देखकर धूमश्री विद्याधर ने मुझको छल से वृक्ष में विद्या से कीलित कर दिया और वसन्तश्री को लेकर चला गया। उसी समय तुम वहाँ क्रीड़ा करने आये। मैंने देख लिया तब मैंने कहा इस फलक में तीन औषधियाँ हैं, मित्र! इन्हें पीसकर मेरे शरीर में लगा दो, जिससे मैं विद्या कीलन से मुक्त हो जाऊँ। आपने वैसा ही किया, तब मैंने जाकर अष्टापद पर्वत पर धूमसिंह को जीतकर अपनी पत्नी को छुड़ाकर आकर तुमसे कहा - हे मित्र! तुम कुछ भी वर माँग लो। तब तुमने कहा मुझे किसी वर से कोई मतलब नहीं। तदुपरान्त दक्षिण श्रेणी में शिवमन्दिर नगर में कुछ काल तक राज्य किया फिर सिंहयश और वराहग्रीव पुत्रों को राज-काज सौंपकर मैं यहाँ चारण मुनि हो तप करता हूँ। इसी बीच विद्याधर के दोनों पुत्र वन्दना भक्ति करने के लिए आ गए। उन्हें चारुदत्त का वृत्तान्त सुनाया। इसी समय बकरा का जीव जो देव हुआ था उसने आकर चारुदत्त को प्रणाम किया। तब चारुदत्त ने कहा हे देव! गुरु के होने पर मुझे प्रणाम करना अनुचित है, देव ने कहा तुम ही मेरे गुरु हो। रुद्रदत्त ने मुझे मार दिया तो मुझको संन्यास और पञ्च नमस्कार मंत्र आपने दिया। जिसके प्रभाव से मैं सौधर्म स्वर्ग में देव हो गया। ऐसा कहकर दिव्य हार आदि के द्वारा पूजा करके वह चला गया। इधर सिंहयश और वराहग्रीव चारुदत्त को चम्पापुरी ले गए और अक्षय द्रव्य देकर अपने नगर चले गए। चारुदत्त भी कुछ दिनों बाद सुन्दरपुत्र को सेठ पद सौंपकर मुनि हुए और अन्त में स्वर्ग गए।

38. जैनीसंसर्गतः शकट इत्यादि

सगडो हु जइणिगाए संसग्गीए दु चरणपब्भट्ठो।

अस्य कथा- कौशाम्बीपुर्यां नवतिवार्षिकः पथश्रान्तशकटमुनिश्चर्यायां प्रविष्टः। अशीतिवर्षिकया सूत्रकर्तनजीविन्या जैनीब्राह्मण्या चर्यां कारयित्वा पृष्टः। केन कारणेन मुने त्वया तपो गृहीतम्। कथितं तेन- अस्यां कौशाम्ब्यां ब्राह्मणः सोमशर्मा, ब्राह्मणी काश्यपी तत्पुत्रो ऽहं शकटः, रोहिणी मम भार्या, अतीव वल्लभा मृता। ततो मया तपो गृहीतम्। वृद्धे त्वमपि कथं जीवसि। कथितं तया अत्र ब्राह्मणः शिवशर्मा, ब्राह्मणी सोमिल्ला, अहं तत्पुत्री जैनी शंकरब्राह्मणेन परिणीता। मृते तस्मिन्कार्पासं कर्तित्वा जीवामीत्याकर्ण्य शकटेन हसित्वोक्ता सा त्वं स्मरसि यदुपाध्यायगृहे त्वया मया च सह पठितम्। तयोक्तम्- सर्वं स्मरामीति संसर्गस्नेहाद्भग्नः॥

39. कूचवारोऽपि।

गणियासंसग्गीए य कूववारो तहा णट्ठो॥ 1100॥

अस्य कथा- पाटलिपुत्रनगरे राजा अशोको, राज्ञी अशोका। अशोकराजस्य भ्राता कूचवारनामा अतीव शूरः। एकदा ससंघो वरधर्मनामा गणधरदेवः समायातः। तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्भूत्वा महाटव्यां मध्यमन्दिरपर्वतोपरि महातपः कर्तुं लग्नः। शत्रुभिरागत्य पाटलिपुत्रे वेष्टिते दुःखितेनाशोकराजेनोक्तम्- कूचवारेण

---

38. शकट मुनि की कथा

गाथार्थ : शकट नाम के मुनि जैनी नाम की ब्राह्मणी के संसर्ग से चारित्र से च्युत हो गए।

कथा : कौशाम्बी नगरी में रास्ते में चलने से थके हुए 90 वर्ष के शकटमुनि चर्या के लिए आये। वहीं एक अस्सी वर्ष की जैनी ब्राह्मणी थी, जो सूत कातकर जीवन चलाती। चर्या कराके उसने पूछा - किस कारण से हे मुने! आपने दीक्षा ग्रहण कर ली तो मुनि ने कहा - इस कौशाम्बी नगरी में एक ब्राह्मण सोमशर्मा थे और ब्राह्मणी काश्यपी। उन दोनों के मैं शकट नाम का पुत्र हुआ। मेरी पत्नी रोहिणी थी जो मुझे बहुत प्रिय थी। वह मर गयी इसलिए मैंने दीक्षा ग्रहण कर ली, किन्तु तुम इस वृद्धावस्था में जीवन कैसे बिताती हो? तब उसने कहा यहाँ एक ब्राह्मण शिवशर्मा और ब्राह्मणी सोमिल्ला थी मैं उनकी पुत्री जैनी हूँ। शंकर ब्राह्मण से मेरा विवाह हुआ। उनके मरने पर मैं कपास कातकर अपना जीवन चलाती हूँ। यह सुनकर शकट ने हँसकर कहा वह तुम्हें याद है जब हम और तुम उपाध्याय के घर साथ-साथ पढ़ते थे। ब्राह्मणी ने कहा - सब याद है और संसर्ग कर स्नेह के कारण भग्न हो गया।

39. स्त्री संसर्ग का दुष्परिणाम

गाथार्थ : तथा कूचवार मुनि भी वेश्या के संसर्ग से चारित्र भ्रष्ट हो गए।

कथा : पाटलिपुत्र नगर में राजा अशोक थे और रानी अशोका। अशोक राजा का भाई कूचवार था, जो अत्यन्त शूर (योद्धा) था। एक बार वरधर्म नाम के गणधर आचार्य संघ सहित पधारे। कूचवार उनके पास में धर्म सुनकर मुनि हो गए। भयंकर जंगल के बीच पर्वत के ऊपर तप करने में संलग्न रहते। इधर शत्रुओं ने आकर पाटलिपुत्र को घेर लिया, राजा अशोक ने दुःखी होकर कहा कूचवार के बिना मेरी अवस्था किस प्रकार हो गयी

विना कीदृशी मेऽवस्था जाता। ततो वीरमतिविलासिन्या भणितम्- देव, मा दुःखितो भव, तं कूचवारमहमानयामि। राजवचनेन बहुगणिकाभिः सहार्यकारूपेण तत्र पर्वतेन गता कपटेनैकां धूर्तीं पर्वततले धृत्वा तत्समीपं गत्वा वन्दित्वा भणितम्-भगवन्नेकार्यकावग्रहविशेषेणागता गिरिं चटितुं न शक्नोति गत्वा तस्याः पादान् दर्शय। ततः स आगतो धूर्त्या दर्शितशरीरावयवया नाशितः शत्रूपद्रवं श्रुत्वा आगत्य निर्जिताः शत्रवः॥

40. रुद्रपाराशरेत्यादि

रुद्दो परासरो सच्चई य रायरिसी देवपुत्तो य।

महिलारूवा लोई णट्ठा संसत्तदिट्ठीए॥ 1101॥

रुद्रस्य सात्यकिकथाप्रघट्टके कथा भविष्यति। पाराशरस्य लौकिकी कथा- हस्तिनागपुरे गङ्गभटधीवरेण महामत्सी जालेन धृत्वा तदुदरे विपाट्यमाने रूपवती कन्या दुर्गन्धा निर्गता सत्यवतीति नामा कृत्वा पोषिता। एकदा गङ्गभटेनावशे सत्यवतीं च धृत्वा गङ्गभटो गृहं गतः। मध्याह्ने दूरादागतेन शान्तेन पाराशरमुनिना द्वितीयतटस्थिता आकारिता सा-पुत्रि, शीघ्रमेहि मामुत्तारयेति। आगत्य तया गङ्गामध्ये नीयमानेन तेन तस्या रूपमालोक्य क्षुभितेनोक्तम्- मामिच्छ। तयोक्तम्- दुर्जातिर्दुर्गन्धा चाहं त्वं च महातपस्वी शापानुग्रहसमर्थ इति। ततस्तस्या दुर्गन्धतामपनीय कुवलयगन्धता कृता। पुनरपि तयोक्तम्। लोकाः पश्यन्ति। ततो धूमरी कृता। नौमध्ये

है। तब वीरमती वेश्या ने कहा प्रभो! दुखी मत हो, तुम्हारे कूचवार को मैं ले आती हूँ। राजा के आदेश से बहुत वेश्याओं के साथ आर्यिका रूप बना लिया और पर्वत के पास पहुँची। कपट से एक धूर्ती को पर्वत के नीचे बिठाकर मुनि के पास गयी और वन्दना कर कहा - भगवन्! एक आर्यिका नियम विशेष के लिए आयी है वह पहाड़ पर चढ़ने में समर्थ नहीं है, इसलिए उसको चलकर चरणों के दर्शन दे दो। जिससे कूचवार मुनि आ गए। उस धूर्ती ने अपने शरीर के अवयवों को दिखाकर मुनि का मुनित्व नाश कर दिया। बाद में कूचवार ने सुना कि शत्रुओं ने राज्य पर उपद्रव किया है तो कूचवार ने आकर शत्रुओं को जीत लिया।

40. रुद्र पाराशर की कथा

अर्थ : रुद्र, पाराशर मुनि, सात्यकी मुनि, राजर्षि नामक मुनि और देवपुत्र नामक मुनि स्त्रियों का रूप देखने में आसक्त हुई दृष्टि से नष्ट भ्रष्ट हो गए।

कथा : रुद्र की कथा सात्यकि की कथा के प्रसङ्ग में कहेंगे, जो इस प्रकार है - पाराशर की कथा लौकिक है। हस्तिनागपुर में गंगभट धीवर ने एक बड़ी मछली को जाल से निकाला और उसके उदर को फाड़ा। उस मछली के अंदर से एक रूपवान कन्या दुर्गन्ध युक्त निकली। जिसका नाम धीवर ने सत्यवती रखा और उसका पालन-पोषण करने लगा। एक बार गंगभट सत्यवती को नाव में स्वतन्त्र छोड़कर घर आ गया। मध्याह्न में दूर से आते हुए शान्त पाराशर मुनि ने दूसरे तट पर खड़ी उस कन्या को बुलाया। पुत्रि! शीघ्र आओ और मुझे उस तट पर उतार दो। सत्यवती आयी और पाराशर को ले जाने लगी। तब गंगा के बीच में पहुँचते हुए मुनि उसका रूप देखते हुए क्षुब्ध हो गया और कहा तुम मुझे स्वीकार कर लो। सत्यवती ने कहा अरे मैं तो नीच जाति की हूँ, मेरा शरीर दुर्गन्ध युक्त है और आप महान् तपस्वी हैं, शाप देने में एवं उपकार करने में समर्थ हैं। यह सुनकर पाराशर ने उसकी दुर्गन्धता मिटाकर कमल की गन्ध से पूर्ण कर दिया। फिर भी सत्यवती ने कहा - यहाँ लोग

कामसेवां कुर्वाणा न जीवामीत्युक्ते तेन द्वीपं कृत्वा परिणीता सेविता च। तत्क्षणे पञ्चकूर्चजटायज्ञोपवीतादियुक्तो व्यासनामा पुत्रो जातो ऽभिवादनं कृतवान्॥

41. सात्यकिरुद्रयोः कथा

गन्धारदेशे महेश्वरपुरे राजा सत्यंधरो, राज्ञी सत्यवती, पुत्रः सात्यकिः। सिन्धुदेशे विशालानगर्यां राजा चेटको, राज्ञी सुभद्रा, सप्तपुत्र्यः प्रियकारिणी सुप्रभा प्रभावती मृगावती ज्येष्ठा चेलिनी चन्दना चेति। श्रेणिकनिमित्तमभयकुमारेण नीयमानया चेलिन्या सुरङ्गद्वारे आभरणव्याजेन वञ्चिता ज्येष्ठा। चेटकभगिनी यशस्विनीकन्तिकासमीपे आर्यका जाता। सा च सात्यकेर्दत्ता आसीत्। अतः सात्यकिरपि तां वार्तां श्रुत्वा समाधिगुप्तमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा वर्धमानस्वामितीर्थंकरदेववन्दनाभक्त्यर्थं यशस्विनीकन्तिकाप्रभृत्यार्यका गच्छन्त्योऽटवीप्रदेशेऽकालवृष्टयोपद्रुता इतस्ततो गताः। ज्येष्ठा कालागुहायां प्रविश्य वस्त्रनिपीलनं कुर्वाणा अन्धकारे ध्यानस्थितेन सात्यकिना दृष्टा। क्षुभितेन कामिता। इङ्गितैर्ज्ञात्वा यशस्विनीकन्तिकया चेलिनीसमीपे नीता वार्ता च कथिता। तया प्रच्छन्नस्थाने धृता नवमासैः पुत्रं प्रसूता। श्रेणिकेन चेलिन्याः पुत्र इति प्रघोषः कृतः। एकदा रौद्रभावे परपुत्रकुट्टनात् रुद्र इति चेलिन्या नाम कृतम्। एकदा रुष्टयान्येन जातोऽन्यं संतापयतीत्युक्तम्। ततो वितर्क्याभोजनं कृत्वा निजपितरौ पृष्टौ महाकष्टेन कथितौ। ततो गत्वा सात्यकिमुनिसमीपे मुनिरभूत्। एकदा

देखते हैं तब पाराशर ने आकाश में धुँआ कर दिया, उसके बाद सत्यवती ने कहा कि इस नाव में काम सेवन करती हुई मैं नहीं जी पाऊँगी, ऐसा कहने पर पाराशर ने वहीं द्वीप बना दिया और उससे विवाह कर उसका सेवन किया। उसी समय पञ्च कूर्च जटा, यज्ञोपवीत आदि से युक्त एक व्यास नाम का पुत्र हुआ और उत्पन्न होते ही उसने नमस्कार किया।

41. सात्यकि और रुद्र की कथा

कथा : गन्धार देश में महेश्वरपुर के राजा सत्यंधर थे। जिनकी रानी सत्यवती थी। उनके एक पुत्र था जिसका नाम सात्यकि था। सिन्धु देश में एक विशाल नगर में राजा चेटक थे, जिनकी रानी सुभद्रा थी, उनके सात पुत्रियाँ थी। प्रियकारिणी, सुप्रभा, प्रभावती, मृगावती, ज्येष्ठा, चेलिनी और चन्दना जिनके नाम थे। अभयकुमार श्रेणिक के लिए चेलिनी को ले जा रहा था तो सुरंग द्वार पर आभरण के छल से उसने ज्येष्ठा के साथ छल किया (अर्थात् ज्येष्ठा को आभूषणों को लेने के बहाने घर भेज दिया) जिससे ज्येष्ठा बहिन यशस्विनी आर्यिका के पास जाकर आर्यिका हो गयी। वह पहले सात्यकि को दी गयी थी इसलिए सात्यकि भी उसकी आर्यिका बनने की बात सुनकर समाधिगुप्त मुनि के पास जाकर मुनि हो गए। एक बार वर्धमान स्वामी तीर्थंकर की देववन्दना के लिए यशस्विनी आर्यिका और अन्य आर्यिकायें भी जा रही थीं। जंगल में अकालवृष्टि का उपद्रव होने से वे इधर-उधर चली गयीं। ज्येष्ठा आर्यिका कालगुफा में प्रवेश कर गयी और वस्त्र निचोड़ने लगी। अन्धकार में सात्यकि ध्यान करते बैठे थे, उसने देख लिया। सात्यकि का मन व्याकुल हो गया और उसने ज्येष्ठा के साथ इच्छित कार्य किया। यशस्विनी ने ज्येष्ठा के चिह्नों को जानकर उसे चेलिनी के पास ले जाकर सब बात बता दी। तब चेलिनी ने उसे गुप्त स्थान पर रखा और नौ महीने के बाद एक पुत्र का जन्म हुआ। श्रेणिक ने घोषणा की कि चेलिनी के पुत्र हुआ है। एक बार वह पुत्र रौद्रभावों से दूसरे लड़के को पीट रहा था, तभी चेलिनी ने उसका नाम रुद्र रखा। एक बार चेलिनी ने क्रोध से कहा कि किसी ने इसको जना है और किसी को यह परेशान करता है। तब उसे सन्देह हुआ। उसने भोजन किए बिना अपने माता-पिता से पूछा, बड़ी कठिनता से उन्होंने सही बात बतायी।

एकादशाङ्गदशपूर्वपाठे पञ्चशतमहाविद्याः सप्तशतक्षुल्लकविद्याश्च सिद्धाः। गोकर्णपर्वतापनस्थ सात्यकिमुनि-वन्दनार्थं गतभव्यजनान् सिंहव्याघ्रादिरूपेण त्रासयति। तदाकर्ण्य सात्यकिना स भणितः। स्त्रीनिमित्तं तव तपोभङ्गो भविष्यतीत्याकर्ण्य सामान्यजनागम्ये कैलासे गत्वा आतापनयोगेन स्थितो यावत्तावत्कथान्तरम्। विजयार्धदक्षिण-श्रेण्यां मेघनिबद्धमेघनिचयमेघनिनादेषु त्रिषु पुरेषु राजा कनकरथो, राज्ञी मनोरमा, पुत्रौ देवदारुविद्युज्जिह्वौ। एकदा राजा देवदारुपुत्राय राज्यं दत्वा गणधरमुनिपार्श्वे मुनिरभूत्। कतिपयदिनैर्विद्युज्जिह्वेन युद्धे निर्धाटितो देवदासो गत्वा कैलासे स्थितः। अष्टौ तत्कन्या अप्रतिरूपाः कञ्चुकिरक्षिता महावाप्यां स्नातुमागताः। वापीसमीप स्थातापनस्थेन तेन मुनिना ता आलोक्य तद्रूपासक्तेन तासां वस्त्राभरणानि विद्यया अपहृतानि। स्नात्वा व्याकुलाभि-स्ताभिरागत्य मुनिः पृष्टः-अस्माकं वस्त्राभरणानि केन नीतानि। तेनोक्तम्-मामिच्छथ यदि तदा दर्शयामि। ताभिरुक्तम् -यदि पिता ददाति तदेच्छामः। ततः समर्पितानि। ताभिर्गत्वा पितुर्वार्ता कथिता। तेन च मुनिसमीपे प्रधानः प्रेषितः। यदि विद्युज्जिह्वं हत्वा त्रिपुरीराज्यं ददासि तदा दीयते कन्याः। मुनिनोक्तम् - सर्वं करोमि। ततो देवदारुराजेन स निजगृहे आनीतः। तेन च विजयार्धे गत्वा विद्युज्जिह्वं हत्वा देवदारुस्त्रिपुरेषु राजा कृतः। तेन च ताः कन्यास्तस्मै दत्तास्तथान्याश्च।

सात्यकि मुनि के पास जाकर वह मुनि हो गया। एक बार ग्यारह अंग और दश पूर्व पढ़ने पर उसे पाँच सौ महाविद्या और सात सौ छोटी विद्यायें सिद्ध हो गयी। सात्यकि मुनि गोकर्ण पर्वत पर आतापन योग धारण किए थे उनकी वन्दना को जाते हुए भव्यजनों को यह रुद्र, सिंह, व्याघ्र आदि रूप बनाकर डराता। यह सुनकर सात्यकि ने उसको कहा, तेरा तप स्त्री का निमित्त पाकर भंग होगा। यह भविष्यवाणी सुनकर सामान्य जनों के लिए अगम्य ऐसे कैलास पर्वत पर जाकर आतापन योग से खड़ा हो गया, इसी बीच दूसरी कथा आती है।

विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में मेघनिबद्ध, मेघनिचय और मेघनिनाद ऐसे तीन नगर हैं। जिनमें राजा कनकरथ राज्य करता था। जिसकी रानी मनोरमा थी। उनके दो पुत्र देवदारु और विद्युज्जिव्हा थे। एक बार राजा देवदारु को राज्य देकर गणधर मुनि के पास मुनि हो गए। कुछ दिनों के बाद विद्युज्जिव्हा ने युद्ध में देवदास (देवदारु) को हरा दिया, जिससे देवदारु कैलास पर जाकर रहने लगे। देवदारु की आठों कन्याएँ अति सुन्दरी थीं, वे एक बार चोली पहने हुए एक बड़े तालाब में स्नान करने के लिए आयीं। तालाब के निकट ही स्थित रुद्र मुनि ने उनको देखा और उनके रूप में आसक्त होकर उनके वस्त्र आभूषण आदि विद्या के द्वारा चुरा लिए। स्नान करके वे सब व्याकुलित होती हुई मुनि के पास आयीं और पूछा मेरे वस्त्र, आभूषण कौन ले गया? रुद्र ने कहा तुम लोग मुझे स्वीकारो तो वस्त्र दे दूँगा, उन कन्याओं ने कहा यदि पिताजी दे देते हैं तो मैं आपको स्वीकार कर लूँगी। यह सुनकर रुद्र ने वस्त्रादि उन्हें वापस दे दिए। उन कन्याओं ने जाकर पिता से सब बात कही। देवदारु ने मुनि के पास एक प्रधान को भेजा। उसने कहा कि यदि आप विद्युज्जिव्हा को मारकर तीनों नगरी का राज्य मुझे दिला दें तब कन्या देना स्वीकार है। मुनि ने कहा - मैं सब कुछ ऐसा ही करता हूँ। तब देवदारु राजा रुद्र को अपने घर ले आये। रुद्र ने जाकर विजयार्ध पर विद्युज्जिव्हा को मारकर देवदारु को तीनों नगरी का राजा बना दिया, तब उसने वे कन्या उसके लिए दे दीं, साथ में अन्य कन्यायें भी दीं।

42. राजश्रीकथा

मिथिलानगर्यां राजा मेरुको, राज्ञी धनसेना, पुत्रः पद्मरथो नमिश्च। एकदा मेरुकः पद्मरथाय राज्यं दत्वा नमिना सह दमधरमुनिसमीपे मुनिरभूत्। अन्यदा नमिर्जले निजशरीरच्छायां पश्यन् गुरुणा भणितः–स्त्रीनिमित्तेन तव व्रतभङ्गो भविष्यति। एतदाकर्ण्यासौ महाटव्यामेकाकी दुर्धरं तपः कर्तुं लग्नः। एकदा सागरदत्तसार्थवाह-स्तत्राटव्यामायातः। तेन सह गोविन्दनट आगतः। स च नटविद्यायामतीव कुशलः। तद्भार्या रुद्रा, पुत्री काञ्चनमाला। मुनिसमीपदेशे गोविन्दो गुणनिकायां काञ्चनमालां नर्तयति। तमालोक्य तद्रूपासक्तेन भणितं नमिमुनिना– न मिलति नृत्यवाद्ययोः। अयं सर्वमिदि जानातीति संप्रधार्य सा काञ्चनमाला तस्मै दत्ता। कतिपयदिनैः पूर्वसमुद्रतटे मुण्डीरस्वामिपत्तने गुर्विणी सा भणिता– प्रसूता मासावसानदिने निजपुत्रमुद्याने अशोकवृक्षतले धरेस्त्वं राजा भविष्यतीत्युक्त्वा पुनर्मुनिरभूत्। तया च पुत्रे जाते तथा कृतम्। तत्र विश्वसेनो राजा ऽपुत्रो मृतः। मन्त्रिणा विधिना पट्टहस्ती भणितः– निजस्वामिनं गृहाण। ततस्तेन स गृहीत्वा निजमस्तके धृतो दुर्मुखनामा राजा जातः। स नमिमुनिः कालप्रियपत्तने एकदा गतस्तत्र कुम्भकारगङ्गदेवभार्या विमला, तत्पुत्री विश्वदेवी अतिशयेन रूपवती अकस्मादकालवृष्टौ तेन बहुभाजनानि प्रविष्टुमसमर्थामालोक्य नमिमुनिनोक्तम्–यदि मामिच्छसि तदा प्रवेशयामि तव भाण्डानि। तयोक्तम्–पितृदत्ता इच्छामि। ततो विद्यया झगिति प्रवेशितानि। आर्तौ पितरौ समायातौ। वार्तामाकर्ण्य सा तस्मै दत्ता। एकदा गुर्विणी भणिता प्रसूता निजपुत्रं मासावसाने नदीतटे आम्रवृक्षतले धरेस्त्वं राजा

---

42. राजश्री कथा

कथा : मिथिला नगरी के राजा मेरुक था। रानी धनसेना थी। उनके पुत्र पद्मरथ और नमि थे। एक बार मेरुक पद्मरथ को राज्य देकर नमि के साथ दमधर मुनि के समीप मुनि हो गए। एक बार नमि जल में अपने शरीर की छाया को देख रहे थे तब गुरु ने कहा – स्त्री के निमित्त तुम्हारा व्रत भंग होगा यह सुनकर वह नमि एक भयानक जंगल में अकेले ही दुर्धर तप करने लगे। एक बार सागरदत्त व्यापारी उस जंगल में आये। उनके साथ गोविन्द नाम का नट भी आया। वह नट विद्या में अत्यन्त कुशल था। गोविन्द की स्त्री का नाम रुद्रा था और पुत्री का नाम काञ्चन माला। मुनि के निकटवर्ती स्थान पर ही गोविन्द काञ्चनमाला को नृत्यकला का अभ्यास कराता। काञ्चनमाला को देखकर नमि मुनि उसके रूप में आसक्त हो गया। जिससे नमि ने कहा, यह नृत्य इन वाद्ययंत्रों के साथ मेल नहीं खाता। यह सब नृत्य आदि करना यह मुनि जानता है, इस प्रकार समझकर गोविन्द ने वह काञ्चनमाला नमि के लिए दे दी। कुछ दिनों के उपरान्त पूर्व समुद्र के किनारे मुण्डीरस्वामि के नगर में उस गर्भवती को कहा, महीने के अन्तिम दिन अपने पुत्र को बगीचे में अशोक वृक्ष के नीचे रख देना, तुम राजा होओगे ऐसा कहकर वह पुनः मुनि हो गया। काञ्चनमाला ने पुत्र के होने पर ऐसा ही किया। वहीं एक विश्वसेन राजा था जिसके कोई पुत्र नहीं था, वह मर गया तब मन्त्री ने विधिपूर्वक पट्टहस्ती को कहा, अपने स्वामी को ले आओ। तब हस्ती उस पुत्र को अपने माथे पर उठाकर ले आया। वह दुर्मुख नाम का राजा हुआ। वह नमि मुनि कालप्रिय नगर में एकबार गए। वहाँ कुम्भकार गंग देव था, उसकी पत्नी विमला थी। उनके एक पुत्री विश्वदेवी थी जो अतिशय रूपवती थी। अचानक अकाल में वारिश होने से विश्वदेवी ने बहुत सारे बर्तनों को अन्दर ले जाना चाहा, उसकी असमर्थता देखकर नमि मुनि ने कहा यदि तुम मुझे स्वीकारो तो तुम्हारे बर्तनों को अन्दर प्रवेश करा दूँ। विश्वदेवी ने कहा पिता देंगे तो स्वीकारूँगी। तभी नमि ने विद्या से शीघ्र ही सभी बर्तन अन्दर कर दिए। दुःखी माता-पिता नमि के पास आये। वार्ता को सुनकर विश्वदेवी नमि के लिए दे दी, एक बार उस गर्भवती को कहा

भविष्यतीत्युक्त्वा मुनिरभूत्। तथा च पुत्रे जाते तथा कृतम्। तत्र देवरतिनामा राजाऽपुत्रो मृतः। मन्त्रिवचनाद्विधि-प्रयुक्तपट्टहस्तिना निजस्कन्धे धृतः। करकण्डो नाम राजा जातः। स नमिमुनिर्मरुदेशे मूलस्थाननगरे गतः। तत्र राजा सिंहसेनो, राज्ञी सिंहसेना, पुत्री वसन्ततिलका। कुमारीं तां दृष्ट्वा तस्याः स आसक्तो रात्रावादित्यरूपेणागत्य तत्सेवां करोति। आदित्येन गर्भः कृत इति प्रसिद्धौ नग्नकिनामा पुत्रो जातः एवं नमिरादित्यरूपेण प्रभाते मुण्डीरस्वामिपुरे मध्याह्ने कालप्रिये अस्तमनवेलायां मूलस्थाने भोगान् भुक्त्वा त्रिभिः पुत्रैः सह मुनिरभूत्। ते चत्वारोऽपि विहरन्तः कुम्भकारग्रामे कुम्भकारपाकबहिःशयनेन स्थिताः। कुम्भकारेणागत्य पाके अग्निर्दत्तः। तम् उपसर्गं प्राप्य निर्वाणं गताः।

43. देवपुत्रो ब्रह्मा तस्य लौकिकी कथा

यथा इन्द्रादीनुद्वालयित्वा सर्वोत्तमपदान्यात्मनो वाञ्छन् महाटव्यां दिव्यार्धचतुर्वर्षसहस्राणि वायुभक्षणं कुर्वाण एकपादेनोर्ध्वबाहुः स्थितो दिव्यं तपः करोति। तपःशक्त्या महादेववासुदेवेन्द्रादीनामासनानि कम्पितानि। ततो भीतैस्तैर्ब्रह्मणस्तपश्चालनार्थं सपेटिका तिलोत्तमा तस्याग्रे नर्तितुं प्रेषिता। तद्रूपालोकनासक्तो ब्रह्मा क्रमेणैकैकवर्षसहस्रतपस्सामर्थ्येन चतुर्मुखो जातः। उपरि नृत्यन्त्यास्तस्याः पञ्चशतवर्षतपसा गर्दभमस्तकमुपरि जातम्।

– पुत्र जन्म होने पर महीने के अन्त में नदी के किनारे आम्र वृक्ष के नीचे रख देना, तुम राजा होगे ऐसा कहकर वह मुनि हो गया। उस विश्वदेवी ने पुत्र के होने पर वैसा ही किया। वहीं देवरति नाम का राजा था, जिसके कोई पुत्र न था, राजा का मरण हुआ तो मन्त्री के कहने से विधि पूर्वक भेजा गया पट्टहाथी अपने कन्धे पर उस पुत्र को ले आया वह करकण्ड नाम का राजा हुआ। वह नमि मुनि मरुदेश के मूलस्थान नगर में गए। वहाँ राजा सिंहसेन और रानी सिंहसेना की पुत्री वसन्ततिलका थी। उस कुमारी को देखकर नमि मुनि उसमें आसक्त हो गए। रात्रि में आदित्य का रूप बना उसका सेवन किया करता, जिससे वह वसन्ततिलका गर्भवती हुई। 'आदित्य से इसका गर्भ हुआ है' ऐसी प्रसिद्धि होने पर नग्नकि नाम का पुत्र हुआ। इस प्रकार नमि आदित्य के रूप में रहा। सुबह मुण्डीर स्वामिपुर में, मध्याह्न में कालप्रिय नगर में और शाम को मूल स्थानपुर में भोगों को भोगकर तीनों पुत्रों के साथ नमि मुनि हो गए। वे चारों ही मुनि विहार करते हुए कुम्भकार ग्राम में कुम्भकार के पाक के बाहर शयन कर रहे थे, कुम्भकार ने आकर पाक में अग्नि लगा दी। उस उपसर्ग को सहनकर वे चारों ही निर्वाण को प्राप्त हुए।

43. लौकिक ब्रह्म की कथा

कथा : देव पुत्र ब्रह्मा इन्द्र आदि के पद को छीनकर, स्वयं के लिए सर्वोत्तम पद की इच्छा करते हुए महाजंगल में दिव्य साढ़े चार हजार वर्ष तक वायु का भक्षण करते हुए, एक पैर पर खड़े होकर भुजा को ऊँचा करके दिव्य तप करते। उनके तप की शक्ति से महादेव, वासुदेव, इन्द्र आदि के आसन कम्पायमान हो गए। यह देखकर डरे हुए उन देवताओं ने ब्राह्मण को तप से चलायमान करने के लिए अन्य नृत्यांगनाओं के साथ तिलोत्तमा को ब्रह्मा के आगे नाचने के लिए भेजा। उसके रूप को देख उसमें आसक्त हुए ब्रह्मा ने एक-एक हजार वर्ष के तप के फल से चार मुख बनाये। जब तिलोत्तमा ऊपर स्थित होकर नाचने लगी तो पाँच सौ वर्ष का तप गधे का मुख बनाने से चला गया।

विशेषार्थ : इस कथा का सारांश यह है कि मनचलापन कर आसक्ति से इन्द्रियों की प्रवृत्ति करने से बहुत समय तक किया गया तप भी नष्ट हो जाता है। इसलिए तपस्वियों को अपने तप की रक्षा के लिए इन्द्रिय विषयों से मन को हटाना चाहिए।

44. ग्रन्थो भयं नराणामिति

गंथो भयं णराणं सहोदरा एयरत्थजा जं ते।
अण्णोण्णं मारेदुं अत्थणिमित्तं मदिमकासी॥ 1128॥

एतयोः कथा - दशार्णदेशे एकरथ्यनगरे धनदत्तः श्रेष्ठी, भार्या धनदत्ता, पुत्रौ धनदेवधनमित्रौ, पुत्री धनमित्रा। मृते धनदत्ते धनदेवधनमित्रौ दरिद्रौ कौशाम्ब्यां मातुलसमीपं गतौ। तेन धनदत्तवृत्तान्ते श्रुते अष्टानर्घ्यमणयः समर्पिताः। आगच्छद्भ्यां ताभ्यां मणिनिमित्तं परस्परमारणं चिन्तितम्। निजनगरप्रवेशे पश्चात्तापं कृत्वा स्वभावं कथयित्वा वेत्रवतीनद्यां मणीन् क्षिप्त्वा गृहमागतौ। मणयो मत्स्येन गिलिताः। स धीवरेण हत्वा विक्रीतो धनदत्तया गृहीतः। खण्डयन्त्या मणयो लब्धाः। पुत्रपुत्रीणां मारणं चिन्तयित्वा पश्चात्तापं कृत्वा धनमित्राया दत्ताः। तया भ्रातृमातृणां मारणं चिन्तयित्वा पश्चात्तापं कृत्वा भ्रात्रोः समर्पिताः। तौ च तान् मणीन्परिज्ञाय त्यक्त्वा च ताभ्यां सह दमधराचार्यसमीपे तपो गृहीतवन्तौ।

45. धनहेतोर्भयमभवच्चौराणामित्यादि

अत्थणिमित्तमदिभयं जादं चोराणमेक्कमेक्केहिं।
मज्जे मंसे य विसं संजोइय मारिया जं ते ॥ 1129॥

---

44. परिग्रह ही भय का कारण है

अर्थ : परिग्रह भय का हेतु होने से, भय को ही परिग्रह कहा। एक माता के उदर से उत्पन्न हुए भाई भी एकरथ नाम के नगर में एक दूसरे को मारने के लिए उद्यत हुए थे। यह विचार कर बुद्धिमान लोग परिग्रह में अभिलाषा नहीं रखते हैं।

कथा : दशार्ण देश में एकरथ नाम के नगर में एक सेठ धनदत्त रहता था, जिसकी पत्नी धनदत्ता थी। उनके दो पुत्र धनदेव और धनमित्र थे तथा पुत्री का नाम धनमित्रा था। धनदत्त का मरण हो जाने पर धनदेव और धनमित्र दोनों दरिद्र हो गए। वे कौशम्बी नगरी में अपने मामा के पास गए। मामा ने धनदत्त के हाल को सुनकर उन्हें आठ बहुमूल्य मणि प्रदान की। वे दोनों भाई जब वापस घर जा रहे थे तो उन्होंने मणि के लिए एक-दूसरे को मारने का विचार किया। जब उन्होंने अपने नगर में प्रवेश किया तो दोनों ने पश्चात्ताप करके अपने-अपने भावों को कह दिया। पश्चात् वेत्रवती नदी में मणियों को फेंककर घर आ गए। मणियों को एक मछली ने निगल लिया। एक धीवर ने मछली को मारकर उन मणियों को बेच दिया, फिर धनमित्र की माँ धनदत्ता को वे मणि प्राप्त हुईं। यदि मैं इन पुत्र-पुत्री को मार दूँ तो ये मणि मुझे ही मिल जायेंगी, इस प्रकार पुत्र-पुत्री को मारने का विचार कर धनदत्ता ने पश्चात्ताप करके उन मणियों को पुत्री धनमित्रा के लिए दे दीं। धनमित्रा ने भी भाइयों को मारने का विचार किया बाद में पश्चात्ताप करके भाइयों को वे मणि दे दीं। दोनों भाइयों ने उन मणियों को प्राप्त होने का हाल जानकर मणियों को छोड़ दिया। दोनों साथ-साथ दमधर आचार्य के पास गए और दीक्षा धारण कर ली।

45. धन ही अनर्थ की जड़ है

अर्थ : इस धन के निमित्त से चार चोरों को महाभय उत्पन्न हुआ था अर्थात् इन्होंने मद्य और माँस में परस्पर में मालूम न पड़े, इस प्रकार विष मिला दिया जिससे सभी मर गए।

अत्र कथा – कौशाम्बीनगर्यां धनमित्रधनदत्तादयो द्रव्याढ्या वणिजो वाणिज्येन राजगृहनगरे चलिताः। अटव्यां चौरैर्गृहीताः। ते च चौरा द्रव्यार्थं परस्परमारणनिमित्तं कृतविषाहारं रात्रौ भुक्त्वा मृताः। तेषां मध्ये सागरदत्तो वणिक् रात्रिभोजने निवृत्तो न मृतः। तेषां मृत्युमालोक्य द्रव्यं त्यक्त्वा वैराग्यान्मुनिरभूत्॥

46. संगो महाभयमित्यादि

संगो महाभयं जं विहेडिदो सावगेण संतेण।
पुत्तेण चेव अत्थे हिदम्हि णिहिदिल्लगे साहुं॥1130॥
दूओ बंभण विग्घो लोओ हत्थी य तह य रायसुयं।
पहिय णरो वि य राया सुवण्णयारस्स अक्खाणं ॥1131॥
वण्णर णउलो विज्जो वसहो तावस तहेव चूदवणं।
रक्ख सिवण्णी दुंडुह मेदज्जमुणिस्स अक्खाणं॥ 1132॥

अस्य कथा – मणिवतदेशे मणिवतनगरे राजा मणिवतो, राज्ञी पृथ्वी, पुत्रो मणिचन्द्रः। एकदा पृथिवीदेव्या राज्ञो मस्तके केशान्विरलयन्त्या पलितमेकमालोक्य राज्ञो हस्तेन दत्तम्। ततो वैराग्यात्स मणिचन्द्राय राज्यं दत्वा मुनिरभूत्। एकाकी विहरन्नुज्जयिन्यां श्मशाने रात्रौ मृतकशय्यायां स्थितः। कापालिकेन भट्टारकसमीपे मृतकद्वयमानीय मस्तकत्रयचुल्ल्यां वेतालविद्यासाधनार्थं मनुष्यकपाले चरुकं राद्धुं प्रारब्धम्। मुनिमस्तके ससादाद्याच्चालिते

कथा : कौशम्बी नगरी से धनमित्र, धनदत्त आदि सेठ व्यापारी व्यापार के लिए राजगृह नगर की ओर चले। जंगल में जाते हुए चोरों ने पकड़ लिया। वे सेठ और चोर सब उस धन के लिए एक-दूसरे को मारने के लिए सोचने लगे। रात्रि में उन्होंने विष मिला हुआ भोजन कर लिया जिससे सब मर गए। उनके बीच में एक सागरदत्त व्यापारी था, जो रात्रि भोजन से विरत था। जिससे वह नहीं मरा। उन सब लोगों की मृत्यु को देखकर वह उस धन को छोड़कर वैराग्य धारण कर मुनि हो गया।

46. धन विवेक हीन बना देता है

अर्थ : एक श्रावक पुत्र ने अपने पिता का जमीन में गाड़ा हुआ धन चुरा लिया, पिता को धन नहीं मिलने से उस स्थान पर चार्तुमास करने वाले मुनि में संदेह कर साधु को निम्न कथाएँ कहकर बाधायें दीं। दूत, ब्राह्मण, व्याघ्र, लोक, हाथी, राजपुत्र, पथिक, राजा और सोनार इनकी कथायें तथा वानर, नौला, वेद्य, बैल, तपस्वी, चूतवन, सिवनी और सर्प सोलह कथायें परस्पर में हुईं।

कथा : मणिवत देश के मणिवत नगर में राजा मणिवत रहते थे। जिनकी रानी पृथ्वी थी और पुत्र मणिचन्द्र। एक बार पृथ्वीदेवी राजा के माथे पर केशों का विरलन कर रही थी तभी एक सफेद केश को देखकर राजा को अपने हाथ से निकालकर दे दिया। जिससे राजा को वैराग्य हो गया। राजा मणिचन्द्र को राज्य देकर मुनि हो गए। एकाकी विहार करते हुए उज्जयिनी में श्मशान में रात्रि में मृतकों की शय्या पर लेटे थे। एक कापालिक ने अपने भट्टारक के पास दो मुर्दो को लाकर (मुनि के मस्तक के साथ) तीन मस्तकों की चूली वेताल विद्या को सिद्ध करने के लिए बनायी। मनुष्य की खोपड़ी में उसने नैवेद्य पकाने का उपक्रम प्रारम्भ किया। बहुत अधिक

[?] कपाले पतिते भयान्नष्टः कापालिकः। प्रभाते मुनिः तथा दृष्ट्वा केनचिज्जिनदत्तश्रेष्ठिनः कथितम्। तेन च गृहे समानीतः वैद्य औषधं पृष्टः। तेन कथितम्-सोमशर्मभट्टगृहे लक्षपाकं तैलमस्ति। तैलाभ्यङ्गादग्निदग्धो नीरोगो भवति। गत्वा श्रेष्ठिना तद्भार्या तुङ्कारी तत्तैलं याचिता। भणितं तया-श्रेष्ठिन् घटमेकं गृहाण। तैलघटं गृहीत्वा निर्गच्छतः स्फुटितो घटः। भीतेन तुङ्कार्याः कथितम्। ततस्तयोक्तमन्यं तैलघटं गृहाण। तथा द्वितीयस्तथा तृतीयोऽपि स्फुटितः। पुनस्तयोक्तम्। श्रेष्ठिन्मा भयं कुरु यावता प्रयोजनं तावद् गृहाण इति। चिन्तितं श्रेष्ठिना-अहो अस्या अद्वितीया क्षमा। पृष्टा च - किं कारणं कोपं न करोषि त्वम्। कथितं तया-श्रेष्ठिन् कोपस्य फलं मया प्राप्तं तेन तं न करोमि।

तद्यथा - आनन्दपुरे भट्टः शिवशर्मा, भार्या कमलश्रीः, पुत्राः शिवभूत्यादयोऽष्ट, अहं नवमी पुत्री भट्टा नाम, न क्वापि मां तुं भणति। एकदा शिवशर्मणा नगरमध्ये घोषणा दापिता- मा कोऽपि भट्टां चुंचुं करोतु। ततश्चुंकारिकेति नाम जातम्। न कदाचिदपि चुं करोमीति व्यवस्थया सोमशर्मब्राह्मणेन परिणीयोज्जयिनीमानीता। एकदा सोमशर्मा रात्रौ नाट्यमालोक्य.वेलातिक्रमे समायातः। कपाटमुद्घाटयेति भणिते मया कोपात्ते नोद्घाटिते। ततो बृहद्वेलायां रोषात्तेन चुंकारिता रुष्टा द्वारमुद्घाट्य निर्गताहं नगराद्बहिर्गच्छन्ती चौरैराभरणमादाय पल्लिकायां विजयसेनभिल्लस्य दर्शिता। स मे शीलखण्डनं कुर्वाणो वनदेवतयोपसर्गं कृत्वा निवारितः। भीतेन तेन पूजयित्वा सार्थवाहस्य समर्पिता। तेनापि मम शीलखण्डनं कर्तुं न शक्तम्। परतीरं नीत्वा कृमिरागकम्बलविक्रयिणो दत्ता।

पीड़ा आदि के हो जाने से वह कपाल मुनि के मस्तक से चलायमान हो गया। कपाल (खोपड़ी) के गिर जाने से कापालिक भयभीत होकर भागा। सुबह मुनि को इस प्रकार की स्थिति में देखकर किसी ने जिनदत्त सेठ को यह हाल कहा। सेठ घर में उन्हें अच्छी तरह लाये। वैद्य से औषधि पूछी। वैद्य ने कहा सोमशर्मा भट्ट के घर पर एक लक्षपाक तेल है। उस तेल की मालिश करने से अग्नि से जला शरीर नीरोग हो जाता है। सेठ ने जाकर सोमशर्मा की पत्नी तुंकारी से उस तैल को मांगा, उसने कहा सेठ जी एक घड़े को ले लो, उस घड़े को लेकर सेठ बाहर निकले, जाता हुए घड़ा फूट गया। भयभीत होते हुए तुंकारी से कहा तो उसने कहा कि दूसरा तेल का घड़ा ले लो। इसी प्रकार दूसरा भी फिर तीसरा भी घड़ा फूट गया। उसने कहा - सेठजी भय मत करो, जब तक आपका कार्य न हो तब तक लेते रहो। इस प्रकार कहने पर सेठजी ने सोचा अरे! इसकी क्षमा तो अद्वितीय है, सेठजी ने पूछा - आप किस कारण से क्रोध नहीं करती हो, तब तुंकारी ने कहा - सेठजी! मैंने क्रोध का फल पा लिया है इसलिए नहीं करती हूँ। बात ऐसी है, आनन्दपुर में एक ब्राह्मण शिवशर्मा थे। जिनकी पत्नी कमलश्री थी। उनके शिवभूति आदि आठ पुत्र थे। मैं उनकी नौवीं पुत्री भट्टा नाम की हूँ। मुझे कोई भी 'तूँ' नहीं कहता। एक बार शिवशर्मा ने नगर में घोषणा करा दी कि कोई भी भट्टा को चुं चुं न कहे। जिससे मेरा नाम चुंकार पड़ गया। मैं कभी चुं नहीं करूँगा, इस प्रकार बात मानकर सोमशर्मा ब्राह्मण से विवाह करके मैं उज्जयिनी लायी गयी। एक बार सोमशर्मा रात्रि में नाटक देखकर देर से आये, किवाड़ खोलो, इस प्रकार कहने पर भी मैंने क्रोध से दरवाजा नहीं खोला, जिससे बहुत देर हो गयी तो क्रोध में आकर सोमशर्मा ने चुंकार कह दिया। जिससे गुस्सा में द्वार खोलकर मैं बाहर निकल गयी। नगर से बाहर जाती हुई चोरों ने मेरे आभूषण लेकर एक छोटे से गाँव में विजयसेन भील को दिखाया। वह भील मेरे शील का खण्डन करने में लगा तो वन देवता ने उस पर उपसर्ग करके मुझे बचाया। उस भील ने डरकर मेरी पूजा करके मुझे एक व्यापारी को सौंप दिया। वह भी मेरा शील खण्डन

तेन तत्कम्बलनिमित्तं जलूकाभिर्मद्रुधिरं बहुदिनान्याकर्षितम्। उज्जयिनीराजेन यो मे भ्राता धनदेवः पारसकुलराजपार्श्वे दूतः प्रेषितस्तेन कृतकार्येणाहं दृष्ट्वा तं राजानं याचयित्वा आनीय पुनः सोमशमर्णः समर्पिता। रक्तक्षयान्मे शरीरं वातेनाभिभूतं वैद्येन शतसहस्रतैलं पक्वम्। तेन नीरोगा जाता। मुनिसमीपे धर्माधर्ममाकर्ण्य च सम्यक्त्वं व्रतं च गृहीत्वा न कस्याप्युपरि मया कोपः कर्तव्य इति व्रतं गृहीतम्। श्रेष्ठिस्तैलं नीत्वा भट्टारकं नीरोगं कुरु। श्रेष्ठिना तां प्रशस्य तैलघटमानीय भट्टारको नीरोगः कृतः। तेन मुनिना तस्यैव चैत्यालये वर्षाकाले योगो गृहीतः। श्रेष्ठिना अनर्घ्यरत्नपूर्णस्ताम्रकलशः सप्तव्यसनाभिभूतकुबेरदत्तनिजपुत्रभयान्मुनिसंस्तरसमीपे निखन्य धृतः। मुनिना कुबेरदत्तेन च स दृष्टः। एकदा कुबेरदत्तेन चैत्यालयप्राङ्गणे स कलशो निखन्य धृतः। मुनिरुदासीनः स्थितः। पूर्णयोगे श्रेष्ठिनं पृष्ट्वा मुनिश्चलितः। पत्तनाद् बहिः स्वाध्यायं गृहीत्वा उपविश्य स्थितः। श्रेष्ठी च तं कलशं ग्रहीतुं गतो न पश्यति। भट्टारक एव जानाति तं गृहीत्वा गत इति संचिन्त्य पृष्ठतो लग्नः। त्वया विना भगवन्मम न रतिरिति मायया व्यावर्त्यानीतः। श्रेष्ठिना मुनिः सद्धर्मकथां पृष्टो मुनिनोक्तम्–त्वमपि कथय चिरश्रावकत्वात्। ततो ऽभिमतार्थं कटाक्षयता तेन कथा कथ्यते। यदा पद्मरथनगरे वसुपालराज्ञा कोशलाधिपतेर्जितशत्रोर्दूतः प्रेषितः स महाटव्यां तृषितो मूर्च्छया वृक्षतले पतितो वानरेण तं कण्ठगतप्राणमालोक्य स्वच्छसरोवरे निमज्ज्यागत्य तस्योपरि निजशरीरं विधूयाग्रे गत्वा तेन तस्य जलं दर्शितम्। स च जलं पीत्वाग्रे गमननिमित्तं तं वानरं हत्वा जलखल्लां कृत्वा गतः।

करने में सफल नहीं हुआ, तब उसने दूसरे नदी के किनारे ले जाकर कृमिराग के कम्बल बनाने वाले को दे दिया। वह बहुत दिनों तक कम्बल के लिए जौंक के द्वारा मेरे खून को निकाला करता। उसी समय उज्जयिनी के राजा ने धनदेव को जो कि मेरा भाई है दूत बनाकर पारस कुलराजा के पास भेजा। धनदेव ने अपना कार्य कर लिया। बाद में मुझे देखकर राजा से प्रार्थना कर वापस लाया और पुनः सोमशर्मा को सौंप दिया। रक्त के क्षय हो जाने से मेरे शरीर में वात का प्रकोप हो गया, तब वैद्य ने लक्षतैल बनाया, जिससे मैं नीरोग हुई। मुनि के पास धर्म और अधर्म की महिमा सुनकर मैंने सम्यक्त्व और व्रत ग्रहण किए और एक नियम लिया कि किसी के ऊपर मैं क्रोध नहीं करूँगी। इसलिए सेठजी तेल ले जाकर मुनिराज को नीरोग बनाओ। सेठ ने उसकी प्रशंसा करके तेल का घट लाकर भट्टारक (मुनिराज) को नीरोग किया। तब उन मुनिराज ने वर्षाकाल में उसी के चैत्यालय में योग धारण किया। सेठ ने बहुमूल्य रत्नों से पूर्ण एक ताम्र कलश को अपने पुत्र कुबेरदत्त जो कि सप्तव्यसनों से लिप्त था, उसके भय से मुनि के संस्तर (सोने के स्थान) के समीप जमीन खोदकर रख दिया। मुनि ने और सेठ के पुत्र कुबेरदत्त ने भी यह कार्य देख लिया। एक बार कुबेरदत्त ने उस चैत्यालय के प्रांगण से वह कलश निकालकर रख लिया। मुनि महाराज इस स्थिति को जानकर उदासीन ही रहे। योग पूर्ण होने पर सेठजी को पूछकर मुनि चले गए। नगर से बाहर स्वाध्याय को ग्रहण कर तिष्ठ गए। इधर सेठ उस कलश को लेने गया किन्तु वहाँ नहीं मिला। मुनिराज ही यह रहस्य जानते थे, वे ही इसे लेकर चले गए, इस प्रकार सोचकर उनके पीछे लग गया। भगवन्! आपके बिना मेरा मन अन्यत्र नहीं लगता, इस प्रकार मायाचारी से मुनिराज को वापस बुलाकर ले आया। सेठ ने मुनि को धर्म सम्बन्धी कथा के लिए पूछा तो मुनिराज ने कहा – अब तुम भी कुछ कहो, बहुत समय से श्रावक बने हुए हो। जिससे सेठ ने अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए कटाक्ष रूप से कथा कही – जब पद्मरथ नगर के राजा वसुपाल थे तब उन्होंने कौशलदेश के अधिपति जितशत्रु के पास एक दूत भेजा। वह दूत महा जंगल में प्यास से मूर्च्छित होकर एक वृक्ष के नीचे गिर पड़ा। एक वानर ने उसके कण्ठगत प्राणों को देखकर स्वच्छ सरोवर में डुबकी लगाकर, अपने शरीर को उस पर छिड़क दिया, बाद में आगे जाकर बन्दर ने दूत को जल

भगवन् किं तस्य वानरमारणं कर्तुं युक्तम्। न युक्तमित्युक्त्वा आत्मना निर्दोषत्वं कथयन्मुनिः कथामाह।

कौशाम्ब्यां नगर्यां ब्राह्मणः शिवशर्मा, ब्राह्मणी कपिलाऽपुत्रा। ब्राह्मणेनाटव्यां नकुलपिल्लिको दृष्ट आनीय कपिलायाः पुत्र इति समर्पितः। शिक्षितो भणितं करोति। कपिलाया यः पुत्रो जातस्तं मञ्चके सुप्तं नकुलस्य समर्प्य सा तण्डुलान् खण्डितुं गता। सर्पेण पुत्रो भक्षितो मृतः। नकुलः सर्पं मारयित्वा रक्तलिप्तमुखः कपिलायाः समीपे गतः। तया पुत्रोऽनेन मारित इत्याशङ्क्य मुसलेनाहत्य मारितः। गृहे आगत्य मारितं सर्पं दृष्ट्वा पश्चात्तापः कृतः। श्रेष्ठिन् किं सर्पापराधे नकुलमारणं युक्तं तस्याः स्यात्। न युक्तमिति पुनः श्रेष्ठी कथां कथयति।।

वाणारस्यां राजा जितशत्रुर्वैद्यो धनदत्तो, भार्या धनदत्ता, पुत्रौ धनमित्रधनचन्द्रौ न पठितौ। मृते वैद्ये जीवनमन्यवैद्यस्य दत्तम्। धनमित्रधनचन्द्रौ चम्पायां शिवभूतिवैद्यपार्श्वे वैद्यशास्त्रं ज्ञात्वा व्याघुटितौ। अटवीमध्ये अक्षिरोगपीडितं व्याघ्रमालोक्य लघुना ज्येष्ठः निषिद्धेनापि परीक्षणार्थमौषधं लोचनयोर्दत्तम्। तत्क्षणान्नीरोगेण तेन स एव भक्षितः। एतत्किं तस्य युक्तम्।

मुनिः कथयति। चम्पायां सोमशर्मब्राह्मणस्य द्वे ब्राह्मण्यौ, सोमिल्या सोमशर्मा च। सोमिल्यायाः पुत्रो जातः। तत्रैको वृषभो भद्रो गृहेऽशनघासं लभते कस्यापि कथमपि न त्रासं ददाति। वन्ध्यया सोमशर्मया एकदा तं

दिखाया। जल पीकर आगे रास्ते के लिए उस वानर को मारकर बन्दर की खाल में जल भरकर चला गया। हे भगवन्! क्या उस व्यक्ति को बन्दर को मारना युक्ति युक्त था। मुनिराज ने कहा यह ठीक नहीं, तब स्वयं की निर्दोषता को बताने के लिए मुनि ने एक कथा कही –

कौशाम्बी नगरी में एक ब्राह्मण शिवशर्मा थे। जिनकी ब्राह्मणी कपिला थी। उसके कोई पुत्र नहीं था। एक बार ब्राह्मण ने एक जंगल में नेवले के बच्चे को देखा और लाकर, यह कपिला का पुत्र है, इस प्रकार कहकर सौंप दिया बाद में उसे शिक्षा दी। जैसा कहते थे वह वैसा ही करता था। फिर कपिला के जो पुत्र हुआ उसे एक पालने में सुलाकर नकुल को सौंपकर वह चावल कूटने के लिए चली गयी। इधर सर्प ने पुत्र को खा लिया, जिससे पुत्र मर गया। नकुल (नेवला) ने सर्प को मार दिया और खून से सने मुँह को लेकर कपिला के पास गया। मेरे पुत्र को इसने मार दिया इस आशंका से उसने मुसल से नेवले को मार दिया। घर आकर सर्प को मरा देखकर उसने पश्चात्ताप किया। बताओ सेठ! क्या नकुल का मारना उसके लिए ठीक था? जबकि अपराध सर्प का था। सेठ ने कहा यह ठीक नहीं किया। पुनः सेठ ने एक कथा कही –

बनारस के राजा जितशत्रु थे। वहीं एक धनदत्त वैद्य रहते थे। वैद्य की स्त्री का नाम धनदत्ता था। उनके दो पुत्र धनमित्र और धनचन्द्र थे, जो पढ़ते नहीं थे, वैद्य का मरण हो जाने पर उन्हें अन्य वैद्य ने जीवन दिया। तब धनमित्र और धनचन्द्र चम्पा में शिवभूति वैद्य के पास वैद्य शास्त्र को जानकर वापस लौटे। जंगल में उन्होंने एक शेर को देखा जो आँख में किसी रोग के कारण पीड़ित था। बड़े भाई के मना करने पर भी छोटे भाई ने परीक्षा करने के लिए औषध व्याघ्र की आँखों में लगा दी। उसी क्षण वह व्याघ्र निरोग हो गया। जिससे उसने छोटे भाई को खा लिया। क्या इस प्रकार सिंह का खा जाना ठीक लगता है?

तब मुनि श्री कहते हैं –चम्पानगरी में सोमशर्मा ब्राह्मण की दो स्त्रियाँ थीं। एक सोमिल्या दूसरी सोमशर्मा। सोमिल्या के एक पुत्र हुआ। वहीं एक भद्र बैल था। वह घर में ही जाकर घास खाता था। वह कभी

बालं मारयित्वा तस्य शृङ्गे प्रोतश्चानेन बालो मारित इति। ब्राह्मणजातिभिः स सर्वैस्त्यक्तः। क्वापि प्रवेशं न लभते। एकदा जिनदत्तराजश्रेष्ठिनो भार्या परदारदोषं प्राप्यात्मशुद्धिं कुर्वाणा दिव्यग्रहणार्थं तप्तफालसमीपे बहुजनमध्ये स्थिता प्रस्तावं प्राप्य भद्रवृषभेणात्मविशुद्ध्यर्थं फालो मुखेन गृहीतः। ततः सर्वैर्निर्दोषो भणितः। अपर्यालोच्य तस्य दोषो दातुं किं युक्तो जनस्य।।

जिनदत्तः कथयति। गङ्गोपकण्ठे लघुकलभो गर्तायां पतितो विश्वभूतितापसेन दृष्टो निजपल्लिकायां नीत्वा प्रतिपालितः। महान् हस्ती सर्वलक्षणोपेतो जातः। श्रेणिकेनाकर्ण्यागत्य याचयित्वा नीतो बन्धनाङ्कुशाभिघातं दृष्ट्वा स्तम्भं भङ्क्त्वा तापससमीपमायातस्तत्पृष्ठे समायातलोकानां संबोध्य समर्प्यमाणेन मारितस्तापसः। तत्किं हस्तिनस्तापसमारणं युक्तम्।

मुनिः कथयति। हस्तिनागपुरे पूर्वस्यां दिशि विश्वसेनेन राज्ञा उद्यानवनं कारितम्। सर्पं गृहीत्वा सौलिका आम्रवृक्ष उपविष्टा। सर्पविषं फले पतितम्। तच्च फलं विषोष्मणा पक्वमुद्यानपालेन तद्राज्ञो दर्शितम्। तेन च धर्मसेनाया राज्ञ्या दत्तम्। तद्भक्षणात् सा मृता। रुष्टेन राज्ञा सर्वमुद्यानं खण्डितम्। परदोषेण किं युक्तं च तस्य कर्तुं खण्डनम्।।

जिनदत्तः कथयति। कश्चित्पुरुषो महाटव्यां गच्छन् सिंहमागच्छन्तमालोक्य भयात्सन्नपल्लीवृक्षं

भी किसी को भी त्रास नहीं देता था। एक बार सोमशर्मा बाँझ ने उस सोमिल्या के पुत्र को मारकर उस भद्र बैल के सींग पर लटका दिया। इसी ने बालक को मारा है, इस प्रकार कहा। उस बैल को सभी ब्राह्मण जाति वालों ने छोड़ दिया। अब वह बैल कहीं भी प्रवेश नहीं पाता। एक बार जिनदत्त राजसेठ की 'पत्नी पर स्त्री है' इस प्रकार दोष को प्राप्त करके अपनी आत्म शुद्धि करते हुए शपथ ग्रहण करने के लिए एक तप्त लोहे के टुकड़े के समीप बहुत लोगों के बीच खड़ी हुई। इस अवसर को पाकर भद्र बैल ने अपनी आत्म विशुद्धि के लिए उस तप्त टुकड़े को मुख से ग्रहण कर लिया तब सभी लोगों ने उसे निर्दोष कहा। बिना सोचे समझे उसे दोष देना क्या उन लोगों के लिए ठीक था?

तब जिनदत्त सेठ कहते हैं - गंगा के निकट एक गड्ढे में एक हाथी का बच्चा गिर गया। विश्वभूति तापस ने यह देखा तो अपने आश्रम में लाकर उसका पालन-पोषण किया। बाद में वह एक महान् हस्ती हुआ जो सभी लक्षणों से युक्त था। श्रेणिक ने जब यह सुना तो आकर उस हाथी को माँगा और माँगकर ले गए। वहाँ बन्धन द्वारा अंकुश से कष्ट पाते देखकर वह खम्भे को उखाड़कर तापस के पास आ गया। उसके पीछे आये हुए लोगों को समझाकर जब पुनः समर्पित करना चाहा तो हाथी ने तापस को ही मार दिया। बताइये क्या हाथी का तापस को मारना ठीक था?

पुनः मुनिराज ने कहा - हस्तिनापुर की पूर्व दिशा में विश्वसेन राजा ने एक उद्यान वन बनाया। एक चील सर्प को लेकर आम्र के वृक्ष पर बैठ गयी। सर्प का विष एक फल पर गिर गया। वह फल विष की गर्मी से पक गया, बगीचे के माली ने उसे राजा को दिखाया, राजा ने उसे धर्मसेना रानी को दे दिया, उस फल को खाने से वह मर गयी। राजा ने क्रुद्ध होकर पूरे बगीचे को उखाड़ दिया। क्या दूसरे के दोष से पूरे बगीचे को उखाड़ देना ठीक है?

जिनदत्त ने कहा - कोई पुरुष महाजंगल में जा रहा था। सिंह को दौड़ते हुए आता देख भय से निकट

महान्तमारुह्य स्थितः। गते सिंहे मार्गे गच्छता भेरीनिमित्तं महान्तं काष्ठमन्वेषयतां राजपुरुषाणां सन्नवृक्षो दर्शितः। तैश्च स खण्डितः। एतत्किं तस्य युक्तम्।

मुनिः कथयति। कौशाम्ब्यां राजा गान्धर्वानीकस्तस्य सुवर्णकारो ऽङ्गारदेवो रत्नसंस्कारकः। तेनैकदा राजकीयमुकुटाग्रपद्मरागमणिमुज्ज्वालयता चर्यायां प्रविष्टो मेदज्जमुनिः स्थापितः। कर्मशालायां मुनिः प्रवेशितः। तत्समीपे मणिं धृत्वा भार्याया वार्ता कथयितुं गतः। स मणिः क्रौञ्चपक्षिणा मांसं मत्वा भक्षितो गले लग्नः। आगतेन तेन मणिमपश्यता मुनिः पृष्टः। मुनिना दयापरेण तं जानतापि मौनं कृतम्। पुनस्तेनोक्तम्-मम सकुटुम्बस्य मरणं भविष्यतीति कथय त्वम्। तथापि मौनमेव मुनेः। ततो रूष्टेन तेन चौरोऽयमिति मुनिर्बद्धः आहतश्च काष्ठैः प्रहरतश्च एकं काष्ठं क्रौञ्चगले लग्नम्। निर्गतो मणिः। गृहीतो हाहाकारं कृत्वा मुनिपादयोर्लग्न इति। यथा तेन स क्रौञ्चभक्षितो मणिर्न कथितः तथाहं जानन्नपि न कथयामि तं येन नीतः कलशः। ततः कुबेरदत्तेन महामुनेः कियन्तमुपसर्गं करिष्यतीति भणित्वा आनीय पितुः कलशः समर्पितः। ततो मुनिं क्षमापयित्वा जिनदत्तकुबेरदत्तौ तत्पार्श्वे मुनी जातौ।

47. पिण्याकगन्धः

अत्थणिमित्तं घोरं परितावं पाविदूण कंपिल्ले।
लल्लकं संपत्तो णिरयं पिण्णागगंधो क्खु॥1140॥

स्थित एक बहुत ऊँचे अशोक वृक्ष पर चढ़कर बैठ गया। सिंह के चले जाने पर मार्ग में भेरी के लिए बड़े काठ की तलाश में जाते हुए राजा के लोगों को वही अशोक वृक्ष दिखाई नहीं दिया। उन लोगों ने उसी वृक्ष को काट दिया। क्या उस पुरुष का ऐसा करना ठीक था?

मुनिराज ने कहा - कौशाम्बी नगरी में राजा गान्धर्व सैनिक थे। उनका एक सुवर्णकार अंगारदेव था जो रत्नों को संस्कारित करता था। वह एक बार राजा के मुकुट के आगे की पद्मराग मणि को उज्ज्वलित कर रहा था तभी चर्या के लिए आये हुए एक मेदज्ज मुनि को बिठाया। कर्मशाला में मुनि को प्रवेश कराया। उन्हीं के पास मणि रखकर पत्नी से वार्ता करने के लिए चला गया। उस मणि को एक क्रौञ्च पक्षी ने माँस समझकर खा लिया। मणि गले में लग गयी। जब स्वर्णकार ने आकर मणि को नहीं देखा तो मुनि से पूछा। मुनि ने दया में चतुर होने से जानते हुए भी मौन धारण कर लिया। पुनः उसने कहा मेरा पूरे परिवार के साथ मरण हो जायेगा, इसलिए आप बताइये कि मणि कहाँ है? फिर भी मुनिराज मौन रहे। मुनि के मौन होने से उसने क्रोधित होकर कहा यह चोर है उसने मुनि को बाँध दिया और लकड़ी से मारने लगा। मारते हुए एक काष्ठ क्रौञ्च पक्षी के गले में लगा जिससे मणि बाहर निकल आयी। उसे लेकर हा हा कार करता हुआ वह स्वर्णकार मुनि के चरणों में गिर पड़ा। जिस प्रकार उन मुनिराज ने क्रौञ्च पक्षी से खायी हुई मणि का हाल नहीं कहा उसी प्रकार मैं जानता हुआ भी उसका नाम नहीं कहूँगा जो कि कलश ले गया है। तब कुबेरदत्त ने आ करके कहा इन महामुनि पर कितना उपसर्ग करोगे? और लाकर पिता को कलश समर्पित कर दिया। तब मुनिराज से क्षमा माँगकर जिनदत्त और कुबेरदत्त उनके पास में मुनि हो गए।

47. पिण्याक गन्ध की कथा

अर्थ : इस धन के निमित्त पिण्याकगंध नामक मनुष्य नरक में - लल्लक नरक बिल में जन्म लेकर तीव्रतम दुःख भोगा।

अस्य कथा - काम्पिल्यनगरे राजा रत्नप्रभो, राज्ञी विद्युत्प्रभा, राजश्रेष्ठी जिनदत्तश्रावकः! अपरश्रेष्ठी पिण्याकगन्धो द्वात्रिंशत्कोटिद्रव्येश्वरः। लोभात्पिण्याकः खलं भक्षयति। तस्य भार्या सुन्दरी, पुत्रो विष्णुदत्तः। तत्रैकदा राजकीयतडागं खनतैकेन वृद्धोड्डेन किट्टम्रक्षितसुवर्णकुशीशतमंजूषा लब्धा। एका कुशी जिनदत्तेन लोहमयीति मत्वा लोहमूल्येन गृहीता सुवर्णं ज्ञात्वा जिनप्रतिमा कारिता। प्रतिष्ठापिता च। द्वितीया कुशी जिनदत्तेन न गृहीता। पिण्याकगन्धेन गृहीता तेन तां सुवर्णमयीं ज्ञात्वा स भणितोऽन्या अपि देहि। ततोऽष्टानवति-दिनैरष्टानवतिकुश्यो दत्ताः। अन्यस्मिन्दिने पिण्याकगन्धस्य या भगिनी सुमित्रा पिप्पलग्रामे सागरदत्तश्रेष्ठिना परिणीता। सा निजपुत्री सूर्यमित्रपरिणयनसमये पिण्याकगन्धं निमन्त्रयितुमायाता। स च कुशीलोभात्पुत्रं कुशीग्रहणे निरूप्य तत्र गतः। उड्डे कुशीं गृहीत्वा आयाते किमनया प्रयोजनमिति विष्णुदत्तेन न गृहीता। उड्डुस्यान्यत्र गच्छतो राजपुरुषेण खननार्थमुद्वालिता सा। खनता च सुवर्णकुशीशतमित्यक्षराण्यवलोक्य राज्ञः कथितम्। स आनीतः। तेन च कथितम्-जिनदत्तस्यैका कुशी दत्ता पिण्याकगन्धस्याष्टानवतिः। आकारितो जिनदत्तो यथार्थं कथयित्वा प्रतिमां दर्शयित्वा राजपूजितो गृहं गतः। पिण्याकगन्धस्य गृहं गृहीतं कुटुम्बं च खोटके निक्षिप्तम्। विवाहानन्तरं पिण्याकगन्धेन शीघ्रमागच्छता मार्गे गृहवार्तां श्रुत्वा इमौ पादौ ग्रामं गताविति पाषाणेन तौ चूर्णयित्वा महतार्तेन मृत्वा षष्ठनरके लल्लकप्रस्तरके नारको जातः।

कथा : काम्पिल्य नगर के राजा रत्नप्रभ थे, रानी विद्युत्प्रभा। वहीं एक राज सेठ श्रावक जिनदत्त रहते थे। वहीं एक ओर सेठ पिण्याकगन्ध रहता था, जो बत्तीस करोड़ द्रव्य का स्वामी था, किन्तु लोभ से पिण्याक खल खाया करता था, उसकी पत्नी सुन्दरी और पुत्र विष्णुदत्त थे। वहाँ एक बार राजकीय तालाब को खोदते हुए पत्थर खोदने वाले एक वृद्ध ने किट्ट लगी हुई सैकड़ों सोने की सलाई वाला एक सन्दूक पाया। उनमें से एक कुशी (सलाई) जिनदत्त ने यह मानकर ली कि यह लोहे की है। बाद में जब ज्ञात हुआ कि यह सोने की सलाई है तो जिनदत्त ने उसकी एक जिन प्रतिमा बनवा दी और प्रतिष्ठा करवा दी। दूसरी बार जब वह वृद्ध दूसरी सलाई लाया तो जिनदत्त ने उसे नहीं ली। जब पिण्याकगन्ध ने वह सलाई ली तो वह सोने की है, ऐसा जानकर उसने कहा और भी दे देना। तब उस वृद्ध ने अट्ठानवे दिनों में अट्ठानवे सलाई दे दीं। तभी दूसरे दिन पिप्पल गाँव में पिण्याकगन्ध की बहिन सुमित्रा सागरदत्त सेठ से विवाही थी। उसने अपनी पुत्री और सूर्यमित्र के विवाह के समय पिण्याकगन्ध को निमन्त्रण कर बुलाया। पिण्याकगन्ध सलाई के लोभ से पुत्र को सलाई लेने के बारे में बताकर वहाँ चला गया। वह वृद्ध जब सलाई लेकर आया तो विष्णुदत्त ने कहा इससे मुझे क्या मतलब और उसने वह सलाई नहीं ली। वृद्ध को अन्यत्र जाते समय एक राजपुरुष ने वह सलाई उससे खोदने के लिए ले ली और उसको साफ किया। खोदने पर यह सौ सोने की सलाई हैं, इस प्रकार अक्षर को लिखा देख उसने राजा को कहा। वृद्ध आया, उसने कहा, इसमें से एक सलाई जिनदत्त को दी और पिण्याकगन्ध को अट्ठानवे। जिनदत्त को बुलाया गया, उसने सत्य बात बताकर प्रतिमा को दिखाया, जिससे राजा ने उसकी पूजा की तब वह घर चला गया। पिण्याकगन्ध के घर को जब्त कर लिया तथा परिवार वालों को एक खोटक में डाल दिया। विवाह के बाद पिण्याकगन्ध शीघ्र ही आ रहा था तो रास्ते में अपने घर का हाल सुनकर उसने अपने पैरों को एक पत्थर से तोड़ लिया कि ये पैर ही ग्राम को गए थे, जिससे ऐसा हुआ। बाद में महान् दुःखित होकर मरा और छठवें नरक के लल्लक पटल में नारकी हुआ।

48. लब्धस्य सर्वधनिनः फटहस्तस्येत्यादि

पडहत्थस्स ण तित्ती आसी य महाधणस्स लुद्धस्स।

संगेसु मुच्छिदमदी जादो सो दीहसंसारी ॥1144॥

अस्य कथा- चम्पानगर्यां राजा अभयवाहनो, राज्ञी पुण्डरीका, वणिक् लुब्धश्रेष्ठी, श्रेष्ठिनी नागवसुः, पुत्रौ गरुडदत्तनागदत्तौ। लुब्धश्रेष्ठिना लक्ष्मीयक्षगजतुरङ्गादीनां सुवर्णमययुगलानि कर्णाक्षिपुच्छखुरादिषु रत्नखचितानि गृहे कारितानि। बलीवर्द एक एव। द्वितीयबलीवर्दनिमित्तमेकदा सप्ताहोरात्रवृष्टौ जातायां गङ्गाप्रवाहमध्यात्काष्ठान्यानयन्तं प्रासादोपरि राजसमीपे उपविष्टाया पुण्डरीकया तं लुब्धश्रेष्ठिनमालोक्य भणितम्-देव तवापि राज्ये कोऽपि महादरिद्रः पश्येत्थं काष्ठान्याकर्षति धनं दीयतामस्य। एतदाकर्ण्याकार्य पुनः स भणितो राज्ञा-वर्तनार्थं यावता प्रयोजनं तावद्द्रव्यं गृहाण। तेनोक्तम्- ममैको बलीवर्दस्तिष्ठति द्वितीयबलीवर्देन प्रयोजनम्। राज्ञोक्तम्- अस्मदीयबलीवर्देषु मध्ये गृहाण। राजकीयबलीवर्दानवलोक्य तेनोक्तम्-नास्ति देवास्मद्बलीवर्दसमानोऽत्र बलीवर्दः। कीदृशो भवद्बलीवर्दो मे दर्शयेत्युक्ते राज्ञो गृहे बलीवर्दो दर्शितः। विस्मयेन[1] राज्ञा तवेदृशो बलीवर्द इत्युक्तम्। नागवसुश्रेष्ठिन्या महार्घरत्नसुवर्णपूर्णस्थालं श्रेष्ठिनो दत्तं भणितं च-राज्ञः समर्पय। तत्समर्पयतस्तस्य कृपणस्य हस्ताङ्गुलयः फटासुदृशास्तथा जाताः। ततो राज्ञा स्थालं त्यक्त्वा स फटहस्तो भणितः। एकदा तेन फटहस्तेन

---

48. लुब्ध सेठ की कथा

अर्थ : पटहस्त नामक वैश्य बड़ा धनिक और अतीव लोभी था। इस परिग्रह से उसकी तृप्ति नहीं हुई, इन परिग्रहों में लुब्ध होकर ही उसने प्राण छोड़े और दीर्घ संसारी हुआ।

कथा : चम्पानगरी में राजा अभयवाहन और रानी पुण्डरीका थी। वहीं एक व्यापारी लुब्ध सेठ और सेठानी नागवसु थी। जिनके दो पुत्र गरुड़दत्त और नागदत्त थे। लुब्ध सेठ ने घर में लक्ष्मी, यक्ष, हाथी, घोड़ा आदि के सोने के जोड़े बनाये और उनके कान, आँख, पूँछ, सींग इत्यादि में रत्न जड़वाये, किन्तु बैल एक ही बना था, बैल की जोड़ी बनाने के लिए वह एक बार जब सात दिन-रात से लगातार पानी बरस रहा था तब गंगा प्रवाह के बीच से काठ को लेकर आया। महल के ऊपर राजा के पास बैठी पुण्डरीका रानी ने उस लुब्ध सेठ को देखकर कहा - प्रभो! आपके राज्य में भी कोई महादरिद्र है, देखो! इस प्रकार वर्षा में काठ को बीनकर ला रहा है, इसको धन दे दो। यह सुनकर उसको बुलाया और पुनः राजा ने उससे कहा तुम्हें जीवन चलाने के लिए जितने धन की जरूरत हो उतना ले लो, तब उस लुब्ध ने कहा मेरे पास एक बैल है, अब मुझे दूसरे बैल की जरूरत है, राजा ने कहा मेरे पास जो बैल हैं, उनमें से एक बैल ले लो। राजा के बैलों को देखकर लुब्ध ने कहा है प्रभो! इसमें मेरे बैल के समान एक भी बैल नहीं है। राजा ने कहा - आपका बैल कैसा है मुझे दिखाओ। ऐसा कहने पर राजा को घर में बैल दिखाया। राजा ने अचम्भे से कहा तुम्हारा बैल ऐसा है। नागवसु सेठानी ने बहुमूल्य रत्नों, सुवर्णों से भरे थाल को सेठजी को दिया और कहा इसे राजा को समर्पित कर दो। उसको सौंपते हुए उस कंजूस सेठ के हाथों की अंगुली जैसे सर्प का फण फैलता है, ऐसी हो गयी। जिससे राजा ने थाल को छोड़कर उसका 'फट हस्त' नाम कहा। एकबार वह फट हस्त सेठ दूसरे बैल के लिए जहाज से सिंहलद्वीप में गया वहाँ उसने बारह

1. राज्ञोक्तम्

द्वितीयबलीवर्दार्थं प्रोहणेन द्वादशवर्षैः सिंहलद्वीपादिषु गच्छता चतस्रः सुवर्णकोट्यो ऽर्जिताः। सिन्धुविषये सिन्धुसागरे प्रोहणे ब्रुडिते मृत्वा निजगृहे निधिपालकसर्पो जातः। कस्यापि ग्रहीतुं न ददाति। रुष्टेन गरुडदत्तेन मारितश्चतुर्थनरके नारको जातः।

49. चक्रे यथा विशिष्ट इत्यादि

कुद्धो वि अप्पसत्थं मरणे पत्थेदि परवधादीयं।
जह उग्गसेणघादे कदं णिदाणं वसिट्ठेण ॥1218॥

अस्य कथा - मथुरानगर्यां राजा उग्रसेनो, राज्ञी रेवती, श्रेष्ठी जिनदत्तः, तद्दासी प्रियङ्गुलता। यमुनातीरे तापसो विशिष्टो जलमध्ये बुड्डिकां दत्वा पञ्चाग्निसाधनं करोति। ततो नगरजनो अतिभक्तो जातः। पानीयहारिकाश्च नित्यं तं प्रदक्षिणीकृत्य प्रणमन्ति। प्रियङ्गुलता च ताभिर्भण्यमानापि न प्रणमति। हस्तपादे धृत्वा ताभिस्तस्य पादयोः पात्यमानया तया भणितम्-यद्यस्य प्रणमामि तदा बृहद्धीवरस्य किं न प्रणमामि। एतदाकर्ण्य सर्वासां तापसो रुष्टस्ताश्च नष्टाः। तापसेनोग्रसेनस्य कथितम्-जिनदत्तश्रावकेणाहं धीवरो भणितः। आनीतो जिनदत्तः। देवायं तापसः प्रमाणं यदि मया भणितः। तापसेनोक्तम्- अस्य चेटिकया भणितः। मुनेः सत्यवचनं हसित्वा राज्ञा साप्याकारिता। तां दृष्ट्वा कुपितेन तापसेनोक्तम्-ब्राह्मणकुलोत्पन्नं वायुभक्षं कथं धीवरसमानं मां भणसि रण्डे। तयोक्तम्- धीवरोऽपि मत्स्यान् मारयति, त्वमपि इति कस्ततो विशेषस्तवेति। जटाभारं झाटय। झाटिते तस्मिन्

वर्षों में चार करोड़ का सोना कमा लिया। सिन्धु देश के सिन्धुसागर में जहाज के डूब जाने पर मरकर अपने घर में धन की रक्षा करने वाला सर्प हुआ। किसी को भी वह धन नहीं लेने देता। गरुड़दत्त ने क्रोध से उस सर्प को मार दिया, जिससे वह चौथे नरक का नारकी हुआ।

49. वशिष्ठ मुनि की कथा

अर्थ : मरण समय में क्रुद्ध होकर शत्रु वधादिक की इच्छा करना यह भी अप्रशस्त निदान है, वशिष्ठ नामक मुनि ने उग्रसेन राजा का वध करने का निदान किया।

कथा : मथुरा नगरी में राजा उग्रसेन राज्य करते थे, उनकी रानी रेवती थी। वहीं एक सेठ जिनदत्त थे। उनकी दासी प्रियंगुलता थी। यमुना नदी के किनारे एक वशिष्ठ तापस जल में डुबकी लगाकर पञ्चाग्नि तप करता था। जिससे नगर के लोग उस तापस के अतिभक्त हो गए। पानी भरने के लिए गयी हुई सुन्दरियाँ उसकी प्रदक्षिणा लगाकर नमस्कार करती। प्रियंगुलता दासियों के कहने पर भी तापस को प्रणाम नहीं करती। एक बार उन दासियों ने उसके हाथ-पैर को पकड़कर तापस के चरणों में रख दिया। गिरती हुई प्रियंगुलता ने कहा - यदि इसको प्रणाम करती हूँ, तब किसी बड़े धीवर को क्यों न प्रणाम करूँ। यह सुनकर तापस उन सभी पर क्रोधित हुआ जिससे वे दासियाँ भाग गयी। तापस ने उग्रसेन राजा से कहा कि जिनदत्त श्रावक ने उसे धीवर कहा है। जिनदत्त बुलाया गया। जिनदत्त ने कहा - प्रभो! यह तापस ही इस बात का प्रमाण है, यदि मैंने इसी को धीवर कहा हो। तब तापस ने कहा इसकी दासी ने कहा था। तापस मुनि के सत्य वचनों पर हँसकर राजा ने दासी को भी बुलाया। दासी को देखकर तापस ने क्रोधित हो कहा - राँड! तूने मुझको धीवर समान कैसे कहा, मैं ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ, वायु का भोजन करता हूँ। तब दासी ने कहा धीवर भी मछलियों को मारता है और तू भी तो, तुझमें और धीवर में

पतिता नानाप्रकारा मत्स्याः। ततो राज्ञा जिनधर्मप्रशंसां कृत्वा तापसो निःसारितः। गङ्गागन्धवत्योः संगमे गत्वा पञ्चाग्निसाधनं कर्तुं लग्नः। पञ्चशतयतिभिः सह तत्र वीरभद्राचार्यः समायातः। तत्रैकेन मुनिनोक्तम्–तापसस्योग्रं तपः। आचार्येणोक्तम्–दयाहीनमज्ञानिनां तपः किं प्रशस्यते। रुष्टेन तेनोक्तम्–कथमहमज्ञानी। आचार्येणोक्तम्–यदि त्वं ज्ञानी तदा तव गुरुर्मृत्वा क्व संजातः। तेनोक्तम्–स्वर्गे। आचार्येणोक्तम् – अस्य त्वया दह्यमान-काष्टस्याभ्यन्तरे स सर्पो दह्यमानस्तिष्ठति। रुष्टेन तेन काष्ठे स्फाटिते सर्पो दृष्टः। ततो गर्वं मुक्त्वा धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः। मथुरायां गोवर्धनगिरौ मासोपवासाद्युग्रतपः कुर्वाणस्य विद्यादेवताः सिद्धाः, भणन्ति ताः– भगवन् किं कुर्मः। तेनोक्तम्–यदा मे प्रयोजनं तदा आगच्छत यूयम्। मासोपवासे पूर्णे आदरवतोग्रसेनेन घोषणा दापिता–मा कोऽपि वसिष्ठमुनिं स्थापयतु। अहं स्थापयिष्यामि। तत्र प्रथमपारणके मदादुद्भ्रान्तः पाटवर्धनहस्ती स्तम्भमुन्मूल्य निर्गतः। अतस्तद्व्याकुलो राजा जातः। नगरे राज्यकुले च भ्रमित्वा मुनिरलाभेन गतः। द्वितीयमासोपवासपारणके नगर्यामग्निदाहे राजा व्याकुलः। तृतीयमासोपवासपारणके जरासन्धप्रेषितराजादेशो राजा व्याकुलः। अलाभेन नगर्या निर्गच्छन्तं[1] मूर्च्छाविह्वलं तं मुनिं दृष्ट्वा एकडोकरिकया भणितम्–स्थापयन्तो लोका निवारिताः स्वयं च न स्थापयति मारितोऽनेनायं महातपाः। एतदाकर्ण्य रुष्टेन गोवर्धनं गत्वा भणितास्ता विद्याः–पापमुग्रसेनं मारयत। भणितं ताभिः– भगवन्न युक्तमिदं तवानेन रूपेण। जन्मान्तरे तर्हि मदीया आज्ञा कर्तव्या। अमुमुग्रसेनमन्यभवे मारयिष्यामीति निदानं कृत्वा मृत्वा रेवतीगर्भेऽवतीर्णः क्षीयमाणशरीरां रेवतीं महादेवीं दृष्ट्वा पृष्टा–केन कारणेन

कौन-सी विशेषता है। अपने जटा के भार को झड़ा। तापसी ने जटा झड़ायी तो उसमें से अनेक प्रकार की मछलियाँ गिर पड़ी। तब राजा ने जिनधर्म की प्रशंसा करके तापसी को बाहर निकाल दिया। वह गंगा और गन्धवती के संगम स्थान पर जाकर पञ्चाग्नि तप की साधना करने लगा। वहीं वरभद्र आचार्य पाँच सौ यतियों के साथ आ पहुँचे। वहाँ तापस को देख एक मुनि ने कहा – तापसी का तप तो उग्र है। आचार्य देव ने कहा अरे! दयाहीन अज्ञानियों के तप की प्रशंसा क्यों करते हो? तापस ने क्रोध से कहा – मैं अज्ञानी कैसे हूँ? आचार्य देव ने कहा – यदि तुम ज्ञानी हो तो बताओ – तुम्हारे गुरु मरकर कहाँ पैदा हुए? तापस ने कहा, स्वर्ग में। आचार्य देव ने कहा तुम जो लकड़ी जला रहे हो, उसके अन्दर वह सर्प बना है, जो जल रहा है। क्रोध से तापस ने लकड़ी को फाड़ा तो सर्प दिखा। तब उस तापस ने घमण्ड छोड़कर धर्म को सुना और मुनि हो गया। मथुरा में गोवर्धन पर्वत पर मासोपवास आदि उग्र तप करते हुए मुनि को विद्या देवता सिद्ध हो गए। उन्होंने कहा भगवन्! हम सब क्या करें? तब मुनि ने कहा जब मुझे आवश्यकता हो तब सब आना। मासोपवास के पूर्ण होने पर आदरवान उग्रसेन राजा ने घोषणा करवा दी कि कोई भी वशिष्ठ मुनि को नहीं पड़गायेगा। मैं ही उनको अपने यहाँ स्थापित करूँगा। तभी प्रथम पारणा में मद से बौखलाया एक पाटवर्धन नाम का हाथी खम्भे को उखाड़कर निकल पड़ा, जिससे राजा व्याकुल हो गया। इधर नगर में और राजकुल में भ्रमणकर मुनि ने अलाभ कर दिया। दूसरी मासोपवास की पारणा में नगर में अग्निदाह हो जाने से राजा व्याकुल हो गया। तृतीय मासोपवास की पारणा में जरासंध के द्वारा राजा को भेजे हुए आदेश के कारण राजा व्याकुल हो गया। अलाभ से नगर के बाहर जाते हुए मूर्च्छा से पड़े हुए उन मुनि को देखकर एक डोकरी ने कहा, दूसरे लोगों को मुनि की स्थापना करने के लिए मना करता है और स्वयं भी उनको बुलाता नहीं है, राजा ने इस प्रकार से इस महान् तपस्वी को मार दिया। यह सुनकर क्रोधित हुए वशिष्ठ मुनि ने गोवर्धन पर जाकर उन विद्याओं को कहा – पापी उग्रसेन को मार दो। विद्याओं ने कहा हे भगवन्! आपको इस रूप में ऐसा करना ठीक नहीं है तो फिर दूसरे जन्म में तुम मेरी आज्ञा का पालन करना,

1. नगर्यादिनि

तव शरीरं क्षीयते। कथितम्-पापिष्ठ दोहलकवशात्। कीदृशो दोहलकः। देव कथयितुं नायाति। अत्याग्रहेण पृष्टया कथितम्-यथा तव हृदयं विदार्य हस्तद्वयेन रक्तं पिबामीति। लेप्यमयदोहलके तथाभूते पुत्रो जातः। उग्रसेनस्य तन्मुखमवलोकयतः क्रूरां दृष्टिं कृत्वा मुष्टिर्बद्धा। तत उग्रसेननामाङ्कित- मुद्रिकारत्नकम्बलाभ्यां सह कंसं मञ्जूषायां धृत्वा यमुनायां प्रवाहितः। कौशाम्ब्यां गङ्गभट्टकल्पपालस्य रञ्जोदर्या भार्यया जलार्थं गतया आनीता सा मञ्जुषा। कंसनामा पुत्रः पोषितः। अष्टवार्षिकः परपुत्रपिट्टनोपालम्भान्निर्धाटितः। शौरिपुरे वसुदेवस्य शिष्यः सर्वशास्त्रदक्षोऽभूत् वरं च लब्धवान्। अथ यथार्थनामा सिंहरथो राजा जरासन्धस्य न सिध्यति। ततः सर्वसामन्तानां जरासन्धेन घोषणा दापिता। यः सिंहरथं बन्धयित्वा आनयति तस्मै जीवद्यशापुत्रीं वाञ्छितदेशं च ददामि। ज्येष्ठभ्रातृसमुद्रविजयादेशेन सर्वबलसमेतो वसुदेवो गतः। पोदनपुरसमीपे कटकं धृत्वा सार्थवाहरूपेण पोदनपुरे गत्वा सिंहानां गूथमूत्राण्यानीय निजबलस्य तद्गूथसहनं कारयित्वा संग्रामे सिंहरथं विरथं कृत्वा वसुदेवेन कंससारथिर्भणितः-सिंहरथं बन्धय। तेन च बद्धः। तमादाय गतो वसुदेवो जरासन्धेन भणितः - मत्पुत्रीमभिमतदेशं च गृहाण। तेनोक्तम्-कंसेनायं बद्धोऽस्मै देहि। कुलं पृष्टेन कल्पपाली निजजननी कथिता। तमालोकयन् तस्याः पुत्रोऽयमिति न निर्णयः। साप्यानीता। भीतायान्ती मञ्जूषामादाय गतया भणितम्-देवास्या मञ्जूषायाः पुत्रोऽयम्।

इस उग्रसेन को मैं दूसरे भव में मारूँगा, इस प्रकार निदान करके मुनि मर गया और रेवती रानी के गर्भ में अवतरित हुआ। देवी रेवती के शरीर को कृश होता देखकर राजा ने पूछा, देवी! किस कारण से आपका शरीर क्षीण होता जा रहा है। रानी ने कहा - किसी पापी के दोहले के कारण। कैसा दोहला? नाथ! मैं कहने में समर्थ नहीं हूँ। अति आग्रह से पूछने पर रानी ने कहा, मुझे दोहला ऐसा होता है कि आपका हृदय फाड़कर दोनों हाथों से खून पीऊँ। राजा ने लेप से वैसा ही आकार बना दोहले को पूरा किया, कुछ दिन बाद पुत्र हुआ। उसने उग्रसेन के मुख को देखा तो क्रूर दृष्टि करके मुट्ठी बाँध ली। तब उग्रसेन नाम लिखी हुई एक अँगूठी और रत्नकम्बल के साथ एक कांसे की सन्दूक में रखकर यमुना नदी में उस बालक को प्रवाहित कर दिया। कौशाम्बी में गंगभट्ट शराब बेचने वाले को रञ्जोदरी नाम की पत्नी जब जल लेने के लिए गयी तो वह सन्दूक ले आयी। उसका नाम कंस रखकर उसका पालन-पोषण किया। जब वह आठ वर्ष का हुआ तो दूसरे लड़कों को मारने पीटने लगा, जिससे उसे घर से निकाल दिया। बाद में यह शौरीपुर में वसुदेव का शिष्य हुआ तथा सर्वशास्त्रों में निपुण हुआ और श्रेष्ठता प्राप्त की। अथानन्तर यथार्थ नाम को धारण करने वाले राजा सिंहरथ थे, किन्तु जरासंध को उन पर विजय प्राप्त नहीं हुई। इसलिए सभी योद्धाओं को जरासंध ने घोषणा करवा दी कि जो सिंहरथ को बाँधकर ले आयेगा, उसके लिए जीवद्यशा पुत्री और उसका मन चाहा देश देऊँगा। अपने बड़े भाई समुद्रविजय के आदेश से वसुदेव समस्त सैन्य बल से युक्त होकर गया। पोदनपुर के निकट अपने कटक (सैन्य बल) को रखकर एक व्यापारी के रूप में पोदनपुर में गया। वहाँ से सिंहों का मल और मूत्र लेकर अपने बल (सेना) को उस मल से समर्थ बनाकर संग्राम में सिंहरथ को रथ से रहित कर दिया तब वसुदेव ने कंस सारथि से कहा सिंहरथ को बाँध लो। कंस ने सिंहरथ को बाँध लिया। उसको लेकर वसुदेव जरासंध के पास गया। जरासंध ने कहा -

मेरी पुत्री और इच्छित देश को ले लो। तब वसुदेव ने कहा - कंस ने सिंहरथ को बाँधा है इसलिए। यह सब इसके लिए दे दो। जरासंध ने कंस से उसका कुल पूछा तो उसने शराब बेचने वाले कुल में अपनी माता को बताया। जरासंध ने कंस को देखकर कहा - यह उसका पुत्र है मुझे यह निश्चित नहीं होता। तब उसकी माता को

तत्र रत्नकम्बलम् उग्रसेननामाङ्कितमुद्रिकां च दृष्ट्वा स ज्ञातो मम भागिनेय इति। राजपुत्रीं परिणीय रुष्टेन तेनोग्रसेनदेशं गृहीत्वा संग्रामे स धृतो नगरीगोपुरसमीपे पञ्जरमध्ये धृतोऽलवणकञ्जिकेन कोद्रवकूरं भोजितोऽतिमुक्त ककुमारोऽनिष्टान्मुनिरभूत्। कंसेन वसुदेवो गुरुरात्मसमीपमानीतः। मृत्तिकावतीपुर्यां कुरुवंश्यो राजा, देवकी भार्या, धनदेवी पुत्री, देवकी सा प्रतिपन्नभगिनी कंसेन वसुदेवाय दत्ता। एकदा देवक्याः प्रथमपुष्पचीरं शिरसि गृहीत्वा तूर्येण पुरीमध्ये नृत्यन्त्या जीवद्यशसा चर्यागतो ऽतिमुक्तकमुनिर्दिव्यज्ञानी दृष्टो भणितः। देव त्वमपि[1] महोत्सवे नृत्यं कुरु। मुनिनोक्तम्- न मे कल्पते नृत्यम्। ततो मार्गं रुद्ध्वा स्थिता सा। अतिकदर्थितेन मुनिनोक्तम्-मूढे किं नृत्यसि देवक्याः पुत्रेण तव भर्ता हन्तव्य इत्याकर्ण्य तच्चीरं तया पादेन मर्दितम्। पुनर्मुनिनोक्तम्- तव पिता तेनैव हन्तव्य इत्याकर्ण्य तच्चीरं स्फाटितम्। पुनरुक्तं मुनिना-तव कुलमपि निर्मूलयितव्यं तेनैव। इत्याकर्ण्य दुःखिता गृहे आगत्य पतित्वा स्थिता। कंसेन पृष्ट्या तन्मुनिवचनं कथितम्। नान्यथा मुनिभाषितमिति संचिन्त्य मत्वा प्रणम्य कंसेन वसुदेवः पूर्ववरं याचितो लब्धश्च। देवकीजातपुत्रो मया हन्तव्यः। देवकी च मम गृहे प्रसूतिं कुर्यादिति। तदाकर्ण्य देवक्या वसुदेवो भणितः-अहं तपो गृह्णामि पुत्रमरणदुःखं द्रष्टुं न शक्नोमि। ततो देवक्या सह गत्वा वसुदेवेनोद्याने फलिताम्रतले स्थितोऽतिमुक्तकमुनिः पृष्टः- भगवन्, केन मत्पुत्रेण कंस-जरासन्धौ हन्तव्यौ। तत्प्रस्तावे हस्तधृताम्रशाखा देवक्या मुक्ता। तस्यास्त्रीणि फलयुगलान्यूर्ध्वं गतानि। एकं च फलं भूमौ पतितम्। पुनरेकमूर्ध्वं गतम्। तन्निमित्तमालोक्योक्तं मुनिना-देवक्यास्त्रीणि पुत्रयुगलानि निर्वाणगामीनि। सप्तमपुत्रेण

बुलाया गया। भय से दौड़ती हुई वह सन्दूक को लेकर जरासन्ध के पास गयी और कहा- प्रभो! यह पुत्र इस सन्दूक का है। तब रत्न कम्बल और उग्रसेन नाम लिखी हुई मुद्रिका को देखकर उसे मालूम हुआ कि यह मेरी बहिन का पुत्र है। तब राजपुत्री को ब्याह कर कंस ने क्रोध से उन उग्रसेन के राज्य को घेरकर युद्ध में उनको पकड़ लिया और नगरी में गोपुर के पास एक पिंजड़े में डाल दिया। वह उन्हें बिना नमक की छाछ से कोदों का भात खिलाता जिसे देख अतिमुक्तक कुमार को अच्छा नहीं लगा। वह मुनि हो गए। कंस ने वसुदेव गुरु को अपने पास ही बुलाया। मृत्तिकावती पुरी में कुरुवंश के राजा की पत्नी देवकी थी उनकी एक पुत्री धनदेवी थी। वह भी देवकी नाम वाली थी, जिसे कंस ने अपनी बहिन स्वीकार किया था। उसे वसुदेव के लिए दे दिया। एक बार देवकी के प्रथम पुष्प चीर को शिर पर रखकर नगर के बीच में वाद्य यन्त्रों के साथ नाचते हुए जीवद्यशा (जो कि कंस की पत्नी थी) ने चर्या के लिए निकले हुए अतिमुक्तक मुनि, जो कि दिव्य ज्ञानी थे, उन्हें देखकर कहा - हे देव! तुम भी इस महोत्सव में नृत्य करो। मुनि ने कहा - मुझे नाचना अच्छा नहीं। तब मार्ग को रोककर वह खड़ी हो गयी। जब मुनि अति परेशान हो गए तो मुनि ने कहा - अरे मूर्खे! नाचती क्यों है? देवकी के पुत्र से तुम्हारा पति मारा जायेगा। यह सुनकर उस कपड़े को उसने अपने पैरों से कुचल दिया। जब मुनि ने पुनः कहा तुम्हारा पिता भी उसी के हाथों से मरेगा, यह सुनकर उसने कपड़े को फाड़ दिया। मुनि ने पुनः कहा - तेरा कुल भी इस प्रकार निर्मूल उसके द्वारा होगा। यह सुनकर दुःखी होकर वह घर आयी और पड़ी रही। कंस के पूछने पर उसने मुनि के वचन कह दिए। कंस ने सोचा कि मुनि अन्यथा नहीं बोलते हैं, इसलिए वसुदेव को नमस्कार कर उसने वसुदेव से पहले दिए गए वर की प्रार्थना की और वर प्राप्त कर लिया कि देवकी के जो पुत्र होगा वह मैं मारूँगा। इसलिए देवकी को मेरे घर में प्रसूति करनी चाहिए। यह सुनकर देवकी ने वसुदेव को कहा मैं तो दीक्षा ले लेती हूँ। पुत्र का मरण देखने की मुझमें सामर्थ्य नहीं। तब देवकी के साथ वसुदेव एक बगीचे में गए, जहाँ पके हुए आम्र वृक्ष के नीचे अतिमुक्तक मुनि बैठे थे। वसुदेव ने पूछा - भगवन्! मेरे किस पुत्र के द्वारा कंस और जरासंध की मौत होगी? उसी समय देवकी जिस आम की शाखा पर हाथ रखे थी वह छूट गयी जिससे शाखा के तीन युगल फल ऊपर चले

1. देवरत्नमपि

हन्तव्यौ। अष्टमोऽपि निर्वाणगामी पुत्रो भविष्यति। एवमेकदा देवकी कंसगृहे पुत्रयुगलं प्रसूता। तच्च देवतया भद्रिलपुरे श्रुतदृष्टिश्रेष्ठिनोऽलकाश्रेष्ठिन्यास्तत्समये प्रसूतायाः समर्पितं तत्प्रसूतं मृतपुत्रयुगलं च देवक्यग्रे धृतं तच्च कंसेन शिलायामाहतम्। एवं तस्यास्त्रीणि पुत्रयुगलानि तत्र नीतानि। रोहिण्याष्टम्यां रात्रौ जले पतति सप्तममासेऽपि सप्तमपुत्रं प्रसूता। वसुदेवेन स गृहीतः। बलभद्रेण छत्रं धृतम्। वृषभरूपेण श्रृङ्गदीपिका सा देवताग्रे चलिता। वासुदेवपादाङ्गुष्ठस्पर्शात्प्रतोलीकपाटयुगलमुद्घाटितम्। जलभृतां यमुनां दत्तमार्गामुत्तीर्य मातृकागृहे प्रविश्य तस्याः पृष्ठे बालकं धृत्वा प्रच्छन्नौ स्थितौ। विवाहकाले देवक्याः क्षीरगृहं दत्तम्। तत्र यो महत्तरो नन्दनामा ऽपुत्रया तद्भार्यया यशोदया गन्धपुष्पादिभिर्मातृका पुत्रार्थमाराधिता। तस्यां रात्रौ तस्याः पुत्री जाता। रुष्टा यशोदा मातृकाग्रे तां धृत्वा निःसरन्ती वसुदेवेन बालिकां मातृकापृष्ठे धृत्वा बालकं चाग्रे धृत्वा भणिता-हे यशोदे, पुत्रं गृहाण। तं गृहीत्वा तुष्टा गता। प्रभाते देवक्यग्रे तां पुत्रिकामालोक्य कंसेन नासिका तस्या भग्ना न मारिता। अथ गोष्ठे वासुदेवे वर्धमाने कंसेन निजगृहे नक्षत्रपाताद्युत्पातानालोक्य शकु[न]शर्मनामा नैमित्तिकः पृष्टः-किमुत्पाता जाताः। तेनोक्तम्- येन त्वं हन्तव्यः स गोष्ठे वर्धमानस्तिष्ठतीति। ततः पूर्वभवसिद्धा विद्यादेवताः स्मरणमात्रादेवागताः। भणिताश्च कंसेन-गोष्ठे मम शत्रुं मारयथ। बालकाले पूतना विद्या विषदुग्धस्तनी समायाता

गए और एक भूमि पर गिर गया पुनः एक फल ऊँचा चला गया। इस निमित्त को देखकर मुनिराज ने कहा - देवकी के तीन युगल पुत्र (अर्थात् छह पुत्र) तो निर्वाणगामी होंगे, सातवें पुत्र के द्वारा कंस और जरासंध की मृत्यु होगी तथा आठवाँ पुत्र भी निर्वाणगामी होगा। इस प्रकार देवकी ने कंस के घर में युगल पुत्रों को जन्म दिया। उसी समय भद्रिलपुर में श्रुतदृष्टि सेठ की अलका सेठानी से पुत्र हुए। वह पुत्र युगल मरे हुए थे। देवता ने उन युगलों को देवकी के आगे रख दिया और देवकी के पुत्रों को अलका सेठानी को सौंप दिया। कंस ने उन पुत्रों को एक शिला पर पटक दिया। इसी प्रकार देवकी के तीनों बार पुत्रों की जोड़ी वहाँ पहुँच गयी। रोहिणी नक्षत्र में अष्टमी को रात्रि में जब जल गिर रहा था, तब सातवें महीने में ही सातवाँ पुत्र हुआ। वसुदेव ने उसे ले लिया। बलभद्र ने उस पुत्र पर छत्र लगाया। वह देवता बैल का रूप बना उसके सींगों पर दीप जलाता हुआ आगे-आगे चला। वसुदेव के पुत्र के पैर का अँगूठा लगते ही शहर के बाहर के दोनों किवाड़ खुल गए। यमुना नदी जल से भरी हुई थी। उस मार्ग को साहस से पार करके माता के घर में प्रवेश कर उसके पीछे बालक को रख दिया और स्वयं दोनों छिप गए। विवाह के समय देवकी को क्षीरग्रह (गोकुल) दिया था। वहीं एक गाँव का मुखिया नन्द नाम का रहता था। उसकी पत्नी यशोदा के कोई पुत्र नहीं था। यशोदा गन्ध, पुष्प आदि के द्वारा माता की पुत्र के लिए आराधना करती थी। उसी रात को यशोदा के पुत्री हुई। यशोदा क्रोधित होकर उसे माता के आगे ही रख आयी। वसुदेव ने बालिका को माता के पीछे रख दिया और बालक को माता के आगे रखकर बाहर निकलती हुई यशोदा से कहा- हे यशोदे! पुत्र को ग्रहण कर। पुत्र को पाकर यशोदा संतुष्ट हुई। सुबह होने पर देवकी के आगे उस पुत्री को देखकर कंस ने उसकी नाक काट दी किन्तु मारा नहीं। इधर व्रज में वसुदेव का पुत्र दिनों दिन बढ़ रहा था और कंस के घर में नक्षत्रपतन आदि उपद्रव हो रहे थे। इन अपशकुनों को देख कंस ने शर्म नाम के नैमित्तिक से पूछा- कि हमारे यहाँ यह उपद्रव क्यों बढ़ रहा है? तब उसने कहा कि जिससे तुम्हारी मृत्यु होगी वह व्रज में बढ़ रहा है। तब पूर्व भव में सिद्ध विद्या देवता स्मरण करने मात्र से आ गए। कंस ने उनसे कहा व्रज में मेरा शत्रु है, उसको मार दो। बाल्यकाल में पूतना विद्या दुग्ध स्तन पर विष लगा कर आयी और दुग्ध पिलाकर भाग खड़ी हुई। तदुपरान्त

पीत्वा निर्धाटिता। काकदेवी चञ्चुपक्षत्रोटनेन निर्धाटिता। यमलार्जुना देवी चैकपादबद्धोलूखलेन भग्ना। शकटादेवी पादप्रहारेण। तरुणकाले वृषभदेवी गलभञ्जनेन। अश्वदेवी गलमोटनेन। मेघदेवी सप्तदिने गोवर्धनोद्धरणेन। काली नागदेवी दमने पद्मानयनम्। चाणूरमल्लदेवी मर्दनैः। कंसो मारितः। उग्रसेनो राज्ये धृतः।

50. लक्ष्मीमतिर्मानात्

कुणदि य माणो णीयागोदं पुरिसं भवेसु बहुगेसु।
पत्ता हु णीयजोणी बहुसो माणेण लच्छिमदी ॥1236॥

अस्याः कथा – मगधदेशे लक्ष्मीग्रामे सोमदेवब्राह्मणस्य ब्राह्मणी लक्ष्मीमतिः रूपयौवनसौभाग्यैश्वर्यगर्विता सदा मण्डप्रिया। एकदा पक्षोपवासिनं समाधिगुप्तमुनिं चर्यायां धृत्वा प्रिये मुनिं भोजयेत्युक्त्वा प्रयोजनान्तरेण बहिर्गतः। सा चासनस्था मुखमादर्शे पश्यन्ती गर्विता मुनेर्दुर्वचनानि दत्वा[1] विचिकित्सां कृत्वा द्वारं पिधाय स्थिता। तत्पापात्सप्तदिनैरुदुम्बरकुष्ठिनी जाता। सर्वैस्त्यक्ता अग्निं प्रविश्य मृता। तत्रैव रजकस्य गर्दभी जाता। दुग्धपानरहिता मृता। तत्रैव गर्तायां सूकरी। तत्रैव कुर्कुटी। पुनस्तत्रैव कुर्कुरी वने दवाग्निना दग्धा मृता। भृगुकच्छे नर्मदातीरे धीवरपुत्री दुर्गन्धा काणानामा जाता। नावा लोकमुत्तारयति। एकदा तं समाधिगुप्तमुनिं नदीतीरे दृष्ट्वा

काकदेवी गयी उसकी चौंच लेने से वह भी भाग गयी। यमुलार्जुना देवी को भी एक पैर बाँधकर उसे ओखली से मारा। शकटादेवी को पाद प्रहार से। तरुण अवस्था में वृषभदेवी का गला काटकर, अश्वदेवी का गला मरोड़कर भगाया। सातवें दिन मेघदेवी को गोवर्धन उखाड़कर भगा दिया। काली नागदेवी के दमन के लिए वासुदेव ने पद्म को बुलाया। चाणूर मल्लदेवी का मर्दन कर दिया और अन्त में कंस को मार दिया तथा उग्रसेन को राज्य दे दिया।

50. लक्ष्मीमति का मान

अर्थ : मान कषाय से मनुष्य अनेक जन्मों तक नीचगोत्र में जन्म लेता है। ऐसा ही तीव्र मानकर लक्ष्मीमति को अनेक जन्मों तक नीचकुल में उत्पन्न होना पड़ा।

कथा : मगध देश के लक्ष्मी गाँव में सोमदेव ब्राह्मण की ब्राह्मणी लक्ष्मीमति थी, जो रूप, यौवन, सौभाग्य और ऐश्वर्य के मद में रहती थी। हमेशा साज शृंगार में लगी रहती थी। एक बार पन्द्रह दिन के उपवास के बाद समाधिगुप्त मुनि चर्या को निकले। सोमदेव ने उन्हें उच्चासन पर बिठाकर कहा – प्रिये! मुनि को आहार करा देना और स्वयं किसी काम से बाहर चले गए। इधर ब्राह्मणी अपने आसन पर बैठी थी। अपने मुख को देख रही थी। घमण्ड से उसने मुनि को दुर्वचन कहे और उनसे घृणा करके द्वार को बन्द कर लिया। मुनि निन्दा के पाप से सात दिन में ही वह उदुम्बर कोढ़ी हो गयी। सभी लोगों ने उसे छोड़ दिया जिससे वह आग में प्रवेश कर मर गयी। मरकर वहीं वह एक धोबी के गधी हुई। वहाँ दुग्धपान न मिलने से मर गयी। फिर उसी गाँव में एक गड्ढे में सूकरी हुई। उसके बाद उसी गाँव में मुर्गी बनी। पुनः उसी गाँव में कुतिया बनी। वन में दावाग्नि से जलकर मर गयी। तत्पश्चात् भृगुकच्छ में नर्मदा के किनारे एक धीवर की पुत्री हुई, वह दुर्गन्ध देह वाली थी, उसका नाम काणा रखा। वह नाव से लोगों को उस पार उतारती। एक बार उन्हीं समाधिगुप्त मुनि को नदी के किनारे देखकर उसने प्रणाम कर कहा प्रभो! मैंने आपको कहीं देखा है। मुनिराज ने पूर्व का सारा वृत्तान्त कहा। तब जातिस्मरण

---

1. मुनिदुर्वचनानीता

तया प्रणम्योक्तम्-भगवन्मया क्वापि दृष्टोऽसि। मुनिना कथितः पूर्ववृत्तान्तः। ततो जातिस्मरीभूय धर्ममादाय क्षुल्लिका जाता। मृत्वा स्वर्गं गता। तत आगत्य नर्मदातटे कुण्डिनपुरे राजा भीष्मो, राज्ञी यशस्वती, तयोः पुत्री रूपिणी जाता, वासुदेवेन परिणीतेति॥

51. मायाशल्याद्बभूव पूतिमुखी इत्यादि

पब्भट्ठबोधिलाभा मायासल्लेण आसि पूदिमुही।

दासी सागरदत्तस्स पुप्फदंता हु विरदा वि ॥1286॥

अस्याः कथा- अजितावर्तनगरे राजा पुष्पचूलो, राज्ञी पुष्पदत्ता। अमरगुरुमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य राजा मुनिरभूत्। ब्रह्मिलार्यिकासमीपे राज्ञी आर्यिका जाता। सा राज्ञी कुलैश्वर्यमदेनार्यिकानां वन्दनां न करोति। सुगन्धद्रव्येण शरीरसंस्कारं कुर्वाणा निषिद्धापि मायया उत्तरं ददाति। कन्तिके स्वभावेन सुगन्धि शरीरं मे। एवं मायादोषेण मृत्वा चम्पायां राजश्रेष्ठिसागरदत्तस्य पूतिमुखी दासी बभूव।

52. मरीचिभ्रमितश्चिरकालम्

मिच्छत्तसल्लदोसा पियधम्मो साधुवच्छलो संतो।

बहुदुक्खे संसारे सुचिरं पडिहिंडिओ मरीची ॥1287॥

अस्य कथा - एकदा समवसरणे भरतेन वृषभदेवः पृष्टः। योऽयोध्यायां भरतचक्रवर्तिनः पुत्रो मरीचिः

होने से उसने धर्म को ग्रहण कर क्षुल्लिका व्रत धारण किया और मरकर स्वर्ग गयी। वहाँ से आकर नर्मदा के किनारे बसे कुण्डिनपुर में राजा भीष्म और रानी यशस्वती के यहाँ पुत्री हुई, जो रूपवान थी। वह वासुदेव से ब्याही गयी।

51. पुष्पदंता की मायाशल्य

अर्थ : पुष्पदंता नाम की आर्यिका मायाशल्य से दीक्षा के विचार से रहित हो गयी और मरकर सागरदत्ता के यहाँ पूतिमुखी नाम की दासी हुई।

कथा : अजितावर्त नगर के राजा पुष्पचूल थे और रानी पुष्पदंता। एक बार अमरगुरु मुनि के पास धर्म को सुनकर राजा मुनि हो गए तथा ब्रह्मिला आर्यिका के पास जाकर रानी आर्यिका हुई। वह रानी कुल और ऐश्वर्य के मद से अन्य आर्यिकाओं की वन्दना नहीं करती तथा सुगन्धित पदार्थों से शरीर का संस्कार आदि भी करती। आर्यिका के मना करने पर भी छल से कह देती कि - हे आर्यिके! मेरा शरीर तो स्वभाव से ही सुगन्धित है। इस प्रकार मायाचारी के दोष से मरकर चम्पानगरी में राजसेठ सागरदत्त के यहाँ पूतिमुखी दासी हुई।

52. मरीचि की मिथ्यात्व शल्य

अर्थ : जिसका धर्म पर प्रेम था, जिसका साधुओं के प्रति वात्सल्य था, ऐसे मरीचि नामक मुनि ने मिथ्यात्व शल्य दोष से चिरकाल तक अनेक दुःखों से व्याप्त संसार में भ्रमण किया।

कथा : एक बार समवसरण में राजा भरत ने भगवान् वृषभदेव से पूछा - प्रभो! जो अयोध्या में भरत

वृषभदेवेन सह मुनिरभूत्। अग्रे त्रयोविंशतितीर्थकरा भविष्यन्ति। तेषां मध्ये कोऽपि जीवस्तव समवसरणे किमस्ति न वा। कथितं देवेन-तव पुत्रो ऽयं मरीचिमुनिरन्तिमतीर्थकरो भविष्यति। तदाकर्ण्य सम्यक्त्वं व्रतं च परित्यज्य परिव्राजकादिरूपेण सांख्यादिमतं प्रवर्त्य संसारे बहुतरकालं भ्रान्तः।

53. अयोध्यानगरे स गन्धमित्रोऽपीत्यादि।

सरजूए गंधमित्तो घाणिंदियवसगदो विणीदाए।
विसगंधपुप्फमग्घाय मदो णिरयं च संपत्तो ॥1355॥

अस्य कथा - अयोध्यायां राजा विजयसेनो, राज्ञी विजयमतिः, पुत्रौ जयसेनगन्धमित्रौ। वैराग्याज्जयसेनाय राज्यं दत्वा गन्धमित्राय युवराजपदं च दत्वा सागरसेनमुनिसमीपे मुनिरभूत्। गन्धमित्रेण राज्यमुद्वाल्य निर्धाटितो जयसेनः। स च तस्य मारणोपायं चिन्तयति। गन्धमित्रश्च घ्राणेन्द्रियासक्तः स्त्रीभिः सह सरयूनद्यां नित्यं जलक्रीडां करोति। तेन ज्ञात्वा जयसेनेन विषवासितनानासुगन्धकुसुमानि उपर्युपायेन मुक्तानि। तान्याघ्राय मृतो गन्धमित्रो नरकं गतः।

54. पञ्चालगीतशब्देन मूर्च्छिता गन्धर्वसेना इति

पाडलिपुत्ते पंचालगीदसद्देण मुच्छिदा संती।
पासादादो पडिदा णट्ठा गंधव्वदत्ता वि ॥1356॥

चक्रवर्ती का पुत्र मरीचि वृषभदेव के साथ मुनि हुए। आगे तेईस तीर्थंकर होंगे। उनमें से क्या कोई जीव आपके समवसरण में है या नहीं? तब प्रभो ने कहा तुम्हारा पुत्र यह मरीचि मुनि अन्तिम तीर्थंकर होगा। यह सुनकर मरीचि ने सम्यक्त्व और व्रत को छोड़कर परिव्राजक आदि का रूप धारण कर सांख्य आदि मत का प्रवर्तन किया। जिससे उसे संसार में बहुत काल तक परिभ्रमण करना पड़ा।

53. घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत गंधमित्र की कथा

अर्थ : सरयू नदी में विनीता नगरी में गंधमित्र नाम का राजा घ्राणेन्द्रिय के वशीभूत होकर विष गंध पुष्प को सूंघकर मर गया और नरक में उत्पन्न हुआ।

कथा : अयोध्यानगरी के राजा विजयसेन थे, जिनकी रानी विजयमति थी। उनके दो पुत्र जयसेन और गन्धमित्र थे। विजयसेन महाराज को वैराग्य हो जाने से उन्होंने जयसेन को राज्य दे दिया और गन्धमित्र को युवराज का पद देकर सागरसेन मुनि के पास जाकर मुनि हो गए।

गन्धमित्र ने राज्य को जीतकर जयसेन को भगा दिया। जिससे वह गन्धमित्र को मारने का उपाय सोचने लगा। गन्धमित्र घ्राण इन्द्रिय में आसक्त था, वह स्त्रियों के साथ सरयू नदी में हमेशा जल क्रीड़ा करता। यह जानकर जयसेन ने विष से युक्त नाना सुगन्धित पुष्प ऊपर से उपाय पूर्वक छोड़ दिए। जिन्हें सूँघकर गन्धमित्र मर गया और नरकगति को प्राप्त हुआ।

54. कर्णेन्द्रिय के वशीभूत गंधर्वदत्ता की कथा

अर्थ : पाटलिपुत्र में पांचाल नामक गायनाचार्य का गाना सुनकर गंधर्वदत्ता नामक वेश्या मूर्च्छित हो गई और प्रासाद से गिरकर मर गई।

अस्याः कथा – पाटलिपुत्रे राजा गन्धर्वदत्तो, राज्ञी गान्धर्वदत्ता, पुत्री गान्धर्वसेना गान्धर्वमदगर्विता। यो मां गान्धर्वेण जेष्यति स मे भर्ता भविष्यतीति गृहीतप्रतिज्ञा। ततो बहवः क्षत्रियादयस्तया जिताः। तां वार्तां श्रुत्वा पोदनपुरात्पाञ्चालोपाध्यायः पञ्चशतच्छात्रैः सह वादार्थी पाटलिपुत्रमायातः। बहिरुद्याने स्थित्वा यदि कोऽपि परिचितः समायाति तदा मामुत्थापयिष्यथेति छात्रान् भणित्वा श्रान्तोऽशोकतले सुप्तः। छात्राः पुरं द्रष्टुं गताः। सा गान्धर्वसेना विलासिनी तं द्रष्टुमायाता। एकच्छात्रं पृष्ट्वा वीणासमूहमध्ये तं च सुप्तं परिज्ञाय लालाप्रवाहार्दितविकृताननमदन्तुरमालोक्य विरक्ता गन्धवस्त्रादिभिरशोकं पूजयित्वा गता। पाञ्चालेनाशोकं पूजितमालोक्य वृत्तान्तमाकर्ण्य विरूपकं जातमित्युक्त्वा राजानं दृष्ट्वा गान्धर्वसेनासमीपे प्रासादो याचितः। तत्र स्थित्वा परमेश्वरस्य रात्रौ वीणायाः सुस्वरं गीतमारब्धम्। गान्धर्वसेना च तदाकर्ण्य सक्ता तत्सन्मुखमागच्छन्ती प्रासादात्पतिता मृता संसारं दीर्घं गता।

55. मानुषमांसासक्त इत्यादि

माणुसमंसपसत्तो कंपिल्लवदी तदेव भीमो वि।

रज्जं भट्ठो णट्ठो मदो य पच्छा गदो णिरयं ॥1357॥

अस्य कथा–काम्पिल्यनगरे राजा भीमो, राज्ञी सोमश्रीः, पुत्रो भीमदासः। कुलक्रमेण नन्दीश्वराष्टदिनेषु जीवघातनिषिद्धघोषणायां दापितायां तेन भीमेन जिह्वेन्द्रियासक्तेन सूपकारो मांसं याचितः। तेन च श्मशानान्मृतं

कथा : पाटलिपुत्र के राजा गन्धर्वदत्त थे, जिनकी रानी थी गन्धर्वदत्ता। उनकी पुत्री गान्धर्व सेना गान्धर्व विद्या के मद से युक्त थी। जो मुझे इस गान्धर्व विद्या में जीतेगा वही मेरा पति होगा, इस प्रकार प्रतिज्ञा ग्रहण कर ली। इसलिए कितने ही क्षत्रियों को उसने जीत लिया। यह बात सुनकर पोदनपुर से पाञ्चाल उपाध्याय पाँच सौ छात्रों के साथ वाद करने के लिए पाटलिपुत्र में आये। नगर के बाहर एक उद्यान में रुक कर उपाध्याय ने छात्रों को कहा कि यदि कोई भी परिचित व्यक्ति आये तो तभी मुझे उठा देना और थके होने से अशोक वृक्ष के नीचे सो गए। इधर छात्र नगर देखने को चले गए। वह गान्धर्व विलासिनी उनको देखने के लिए आयी।

एक छात्र को पूछकर वीणा के समूह के बीच में सोता जानकर और लार के बहने से गीला हुआ विकृत मुख को दाँतों से रहित देखकर वह विरक्त हो गयी। तब वह गन्ध वस्त्र आदि से अशोक वृक्ष की पूजा करके चली गयी। पाञ्चाल ने अशोक वृक्ष की पूजा को देखकर स्त्री आने के वृत्तान्त को सुना तो गड़बड़ हो गया, ऐसा कहकर राजा को देखकर गान्धर्व सेना के समीप ही एक महल की प्रार्थना की। वहाँ रुककर परमेश्वर का रात्रि में दीपक की लौ में वीणा के द्वारा अच्छे स्वर से गीत गाना प्रारम्भ किया। गान्धर्व सेना उस गीत को सुनकर उसमें मगन हो गयी। उसके पास आती हुई अपने महल से गिर पड़ी और मरकर दीर्घ संसारी हुई।

55. जिह्वेन्द्रिय के वशीभूत राजा भीम की कथा

अर्थ : काम्पिल्य नगर का राजा भीम माँसभक्षण करने में लुब्ध हुआ था। इस माँसासक्ति दोष से वह राज्य भ्रष्ट होकर मृत्यु को प्राप्त हुआ और नरक में उत्पन्न हुआ।

कथा : काम्पिल्य नगर के राजा भीम थे, उनकी रानी का नाम सोमश्री था। उनके एक पुत्र था भीमदास। कुलक्रम से चले आ रहे नन्दीश्वर पर्व के आठ दिनों में जीवघात न करने की घोषणा की गयी, किन्तु

बालकमानीय संस्कृत्य दत्तम्। तेन च तुष्टेन पृष्टः - किं कारणमिदं मृष्टम्। लब्ध्वाऽभयेन सत्यं कथितम्। तेनेदमेव मे देहीत्युक्तम्। ततः सूपकारो लडुकेन प्रपञ्चेन नित्यनित्यमेकैकं बालं मारयित्वा ददाति। जनेन ज्ञात्वा मन्त्रि [णः] कुमारेण कथितम्। ततो भीमदासो राज्ये प्रतिष्ठापितः। भीमः सूपकारेण सह निःसारितः। विन्ध्यमध्ये सूपकारोऽपि तेन भक्षितः। मेखलपुरे गतो वासुदेवेन मारितो नरकं गतः।

56. चोरो बली सुवेग इत्यादि

चोरो वि तह सुवेगो महिलारूवम्मि रत्तदिट्ठीओ।
विद्धो सरेण अच्छीसु मदो णिरयं च संपत्तो ॥1358॥

अस्य कथा- भद्रिलपुरे इभो धनपतिः, भार्या धनश्रीः, पुत्रो भर्तृमित्रस्तस्य भार्या देवदत्ता। एकदा भर्तृमित्रादयो द्वात्रिंशदीश्वरवणिक्पुत्राः सभार्याः क्रीडितुमुद्यानं गताः। तत्र वसन्तसेनस्य श्रेष्ठिपुत्रस्योत्सङ्गे मस्तकं धृत्वा वसन्तमालाभार्या सुप्ता। तथा भर्तृमित्रस्य देवदत्ता वसन्तमालया वसन्तसेनो भणितः-चूतमञ्जरीमिमां देहि कर्णपूरं करोमि। तेनोक्तम्-किमेवं स्थितो ददामि। [1]उद्धो भूत्वा वा एवं स्थितो देहीत्युक्ते तेन बाणः पुङ्खपरम्पराविधिनानीय दत्ता। तमालोक्य देवदत्तया भर्तृमित्रोऽपि मञ्जरीं तथा याचितः। स च धनुर्वेदमजानन् लज्जितोऽलीकोत्तरं दत्वा निजोत्तरीयं वस्त्रं तस्याः गण्डूकं कृत्वा निर्गतो द्रोणाचार्यसमीपे बहुरत्नानि दत्वा विशिष्टो

उस भीम ने जिह्वा इन्द्रिय में आसक्त होने से रसोइये से माँस की प्रार्थना की। उस रसोइये ने श्मशान से एक मरे हुए बालक को लाकर उसे बनाकर दे दिया। राजा ने संतुष्ट होकर पूछा किस कारण से यह आज स्वादिष्ट लग रहा है। यह सुनकर उसने बिना डर के सत्य बात बता दी। तब राजा ने कहा - मुझे यह ही माँस रोजाना देना। इसलिए रसोइया रोजाना छल से लड्डू के बहाने रोज-रोज एक-एक बालक को मारकर माँस राजा को खिलाता। लोगों से यह बात जानकर मन्त्रियों ने कुमार भीमदास को कहा - जिससे भीमदास को राज्य पद पर बिठाया गया। भीमदास ने राजा और रसोइये को साथ-साथ बाहर निकाल दिया। विन्ध्य के बीच जाकर राजा ने रसोइया को ही खा लिया। फिर मेखलपुर में गया और वासुदेव से मारा गया और नरक गया।

56. काम के वशीभूत चोर सुवेग की कथा

अर्थ : सुवेग नाम का चोर स्त्रियों के रूपावलोकन में मुग्ध होकर बाणों से विद्ध होकर तत्काल मरण को प्राप्त हुआ और नरक में उत्पन्न हुआ।

कथा : भद्रिलपुर में इभ नाम का एक धनपति था। जिसकी स्त्री धनश्री थी। उनका पुत्र भर्तृमित्र था। भर्तृमित्र की पत्नी देवदत्ता थी। एक बार भर्तृमित्र आदि बत्तीस सेठपुत्र अपनी पत्नियों के साथ क्रीड़ा करने के लिए एक बगीचे में गए। वहाँ सेठपुत्र वसन्तसेन की गोद में मस्तक रखकर उसकी पत्नी वसन्तमाला सो गयी। इसी प्रकार देवदत्ता भी भर्तृमित्र की गोद में सो गयी। वसन्तमाला ने वसन्तसेन से कहा मुझे वो आम के फूलों की कली लाकर दो, मैं अपने कानों मे लगाऊँगी। वसन्तसेन ने कहा क्या ऐसी स्थिति में (लेटे हुए) ही लाकर दूँ? तो वसन्तमाला ने कहा - चाहे उठकर लाओ या इसी स्थिति में लाओ। तब वसन्तसेन ने बाण के पंख वाले भाग से विधि पूर्वक लाकर आम के फूल दिए। उसे देखकर देवदत्ता ने भी भर्तृमित्र से आम्रमंजरी की उसी प्रकार याचना की। भर्तृमित्र धनुष विद्या को नहीं जानने से लज्जित हुआ और झूठ उत्तर देकर अपने उत्तरीय वस्त्र का उसके लिए तकिया बनाकर निकल गया। द्रोणाचार्य के पास उन्हें रत्न देकर विशिष्ट धनुर्विद्याओं में शिक्षित हुआ। मेघपुरनगर

---

1. रूद्रो भूत्वा

धनुर्वेदः शिक्षितः। मेघपुरपत्तने राजा मेघसेनो, राज्ञी मेघवती, पुत्री मेघमालां सुरूपा सकलकलाकुशला। नैमित्तिकादेशात्तस्याश्चन्द्रवेधो रचितः। न कोऽपि तद्वेद्धुं समर्थः। भर्तृमित्रेणागत्य चन्द्रवेधं कृत्वा मेघमालां परिणीय द्वादशवर्षाणि तत्र स्थितः। धनपतिधनश्रीभ्यां वार्तां ज्ञात्वा भर्तृमित्रस्यानयनाय लेखाः प्रेषिताः। मेघमालया गृहीत्वा ते तस्य न दर्शिताः। धूर्तैकलेखवाहकेन बहिर्निर्गतस्य दर्शितो लेखस्तमवधार्य विधिनैकरथेन मेघमालया सहागच्छन्महाटव्यां सुवेगभिल्लाधिपतिचौरेण ग्रहीतुमारब्धः। युद्धे सर्वायुधक्षये हस्ते बाणमेकमालोक्य भर्तृमित्रेण मेघमाला भणिता। प्रिये, रथादवतर त्वम्। तस्या अवतरन्त्याः सुवेगो रूपं पश्यन्नासक्तो भर्तृमित्रेणाक्ष्णोर्बाणेन विद्धो मृतो नरकं गतः।

57 गृहपतिगृहिणीत्यादि

फासिंदिएण गोवे सत्ता गिहवदिपिया वि णासक्के
मारेदूण सपुत्तं धूसाए मारिदा पच्छा॥1359॥

अस्य कथा – आभीरदेशे नासिक्यनगरे गृहपतिः सागरदत्तो, भार्या नागदत्ता, पुत्रः श्रीकुमारः, पुत्री श्रीषेणा। निजेन नन्दगोपालकेन सह नागदत्ता कुकर्मरता जाता। एकदा नागदत्तासंकेततो नन्दः शरीरकारणमिषं कृत्वा गृहे स्थितः। सागरदत्तः पश्चिमरात्रौ गोधनं गृहीत्वा अटव्यां गतस्तत्र सुप्तश्च नन्देन गत्वा मारितः। ततो नागदत्तानन्दौ कामासक्तौ स्थितौ। श्रीकुमारो नागदत्ताया उपरि नित्यं जूरयति। ततो रुष्टया नागदत्तया भणितो

में राजा मेघसेन और रानी मेघवती की पुत्री मेघमाला रूपवती थी और सभी कलाओं में कुशल थी। नैमित्तिक के अनुसार उसने एक चन्द्रवेध की रचना की, कोई भी जिसको भेदने में समर्थ नहीं था। भर्तृमित्र ने आकर चन्द्र को भेदकर मेघमाला को ब्याह लिया और बारह वर्ष तक वहीं रहा। धनपति और धनश्री को जब भर्तृमित्र का समाचार मिला तो उन्होंने भर्तृमित्र को बुलाने के लिए पत्र भेजे। मेघमाला ने पत्र को ले जाकर भर्तृमित्र को नहीं दिखाये। एक धूर्त पत्रवाहक ने बाहर जाते हुए भर्तृमित्र को पत्र दिखा दिया। उसे समझकर भर्तृमित्र तैयारी के साथ एक रथ से मेघमाला को साथ ले चल दिया। तभी महाजंगल में जाते हुए भीलों के अधिपति सुवेग चोर ने उन्हें पकड़ने का प्रयत्न किया। युद्ध में भर्तृमित्र के सभी अस्त्र समाप्त हो गए मात्र एक बाण रह गया, जिसे देखकर भर्तृमित्र ने मेघमाला को कहा – प्रिये! तुम रथ से उतर जाओ। उसको उतरता हुआ सुवेग ने जब देखा तो वह उसके रूप में आसक्त हो गया, उसी समय भर्तृमित्र ने उस एक बाण के द्वारा उसकी आँखों को भेद दिया, जिससे सुवेग मरकर नरक गया।

57. नागदत्ता की कथा

अर्थ : नासिक्य नगर में अपने पाले हुए ग्वाले पर आसक्त हुई एक ग्रामकूट की भार्या ने अपने पुत्र का वध किया तदनन्तर अपनी लड़की के द्वारा मारे जाने पर मरकर नरक में उत्पन्न हुई।

कथा : आभीर देश के नासिक्य नगर में एक गृहस्थ सागरदत्त थे, जिनकी पत्नी नागदत्ता थी। श्री कुमार पुत्र थे और पुत्री श्रीषेणा। अपने ही नन्द नाम के ग्वाल के साथ नागदत्ता कुकर्म अर्थात् दुष्प्रवृत्तियों में रत रहती। एक बार नागदत्ता के इशारे से नन्द शरीर के कारणों का बहाना बनाकर घर में ही रह गया। सागरदत्त अर्ध रात को गोधन लेकर जंगल चला गया, वह वहाँ सोया हुआ था तो नन्द ने वहाँ जाकर उसे मार दिया। अब नागदत्ता और नन्द दोनों काम क्रीड़ा में आसक्त होकर रहते। श्रीकुमार नागदत्त के ऊपर हमेशा क्रोधित रहता। जिससे क्रोधित होकर नागदत्ता ने नन्द को कहा श्रीकुमार को भी मार दो। पुत्री श्रीषेणा को यह ज्ञात हो गया। एक बार नन्द घर

नन्दः- श्रीकुमारमपि मारय। श्रीषेणयापि तच्च ज्ञातम्। एकदा नन्दो गृहे शरीरकारणव्याजेन स्थितः। श्रीकुमारः पश्चिमरात्रौ गोधनं गृहीत्वा गच्छन् भगिन्या भणितः - यथा तव पिता नन्देन मारितः तथा नागदत्तावचनेनाद्य त्वमपि मार्यसे लग्नो यत्नं कुर्याः। ततोऽटव्यां काष्ठमेकं निजवस्त्रेण प्रच्छाद्य श्रीकुमारस्तिरोहितः स्थितः। नन्देनागत्य खड्गेनाहतो काष्ठे। पृष्ठे सेल्लेनाहत्य नन्दो मारितः। प्रभाते दोहनार्थं गोधनं गृहीत्वा श्रीकुमारो गृहमागतो जनन्या पृष्टः - मया नन्दस्त्वां गवेषयितुं प्रेषितः। स क्व तिष्ठति। तेनोक्तम् - मे सेल्लोऽयं जानाति। सेल्लं रक्तलिप्तमालोक्य रुष्टया तया स उपविष्टो मुसलेनाहत्य मारितः। श्रीषेणया च सा मुसलेनाहत्य मारिता। सर्वे नरकं गताः।

58 दग्धा द्वीपायनेत्यादि

बारवदी य असेसा दड्ढा दीवायणेण रोसेण।

बद्धं च तेण पावं दुग्गदिभयबंधणं घोरं ॥1374॥

अस्य कथा- द्वारावतीनगर्यां राजानौ नवमबलभद्रवासुदेवौ। एकदोर्जयन्तपर्वतेऽरिष्टनेमिं समवसरणस्थं वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य बलभद्रेण पृष्टम्- भगवन्, कियत्कालमीदृशी विभूतिर्वासुदेवस्य भविष्यति। भगवतोक्तम्- द्वादश वर्षाणि। ततो मद्याद् यादवानां विनाशो भविष्यति। तव मातुलद्वीपायनकुमारकोपाग्निना द्वारावत्या दाहः। अनया तव क्षुरिकया जरत्कुमारहस्तेन वासुदेवस्य मरणम्। एतदाकर्ण्य गत्वा मद्यमूर्जयन्तगुहायां निक्षिप्तम्।

में शरीर की अस्वस्थता का बहाना बनाकर रुक गया। श्री कुमार आधी रात को गोधन को लेकर चला, तब बहिन श्रीषेणा ने कहा जैसे आपके पिता को नन्द ने मार दिया था, उसी प्रकार वह तुम्हें भी मारने में लगा है। इसलिए आप यत्नपूर्वक रहना। वहाँ जंगल में जाकर एक लकड़ी को अपने कपड़े से ढाककर श्रीकुमार छिपकर बैठ गया। नन्द ने आकर तलवार से लकड़ी पर प्रहार किया। इधर पीछे से उसने एक भाले के द्वारा नन्द को घायल कर मार दिया। सुबह होने पर गाय दुहने के लिए श्रीकुमार घर आया तो माता ने पूछा मैंने नन्द को तुम्हें ढूँढने के लिए भेजा था, वह कहाँ है तब श्रीकुमार ने कहा मेरा यह भाला इस बात को जानता है। भाले को खून से लिप्त देखकर क्रोधित होकर उसने वहीं पड़े हुए मूसल से उसे घायल कर मार दिया। बाद में श्रीषेणा ने नागदत्ता को मूसल के प्रहार से मार दिया। इस प्रकार सब नरक गति को प्राप्त हुए।

58. द्वीपायन मुनि की कथा

अर्थ : द्वीपायन मुनि ने क्रोधवश होकर सम्पूर्ण द्वारका नगरी दग्ध की थी। इससे उनको दुर्गति का भय उत्पन्न करने वाला घोर पाप बन्ध हुआ।

कथा : नगरी द्वारावती में नवमें बलभद्र और वासुदेव राजा थे। एक बार ऊर्जयन्त पर्वत पर समवसरण में अरिष्ट नेमिनाथ भगवान् स्थित थे। उनकी वन्दना करके धर्म का श्रवण कर बलभद्र ने पूछा - भगवन्! इस प्रकार यह विभूति वासुदेव के पास कितने समय तक रहेगी। भगवान् ने कहा - बारह वर्ष तक। उसके बाद शराब से यादवों का विनाश होगा। तुम्हारा मामा द्वीपायनकुमार के द्वारा क्रोध अग्नि से यह द्वारावती जलेगी और बलभद्र तुम्हारी इस छुरी के द्वारा जरत्कुमार के हाथ से वासुदेव की मृत्यु होगी। यह सब सुनकर बलभद्र ने जाकर शराब को ऊर्जयन्त की एक गुफा में फिकवा दिया और द्वीपायन मुनि होकर पूर्व देश को चले गए। बलभद्र ने छुरी को

द्वीपायनो मुनिर्भूत्वा पूर्वदेशं गतः। बलभद्रेण क्षुरिका अतीव घृष्ट्वा सूक्ष्मा समुद्रे निक्षिप्ता मत्स्येन गृहीता। तस्मात्पारम्पर्येण विन्ध्यप्रविष्टजरत्कुमारेण प्राप्य बाणाग्रे दत्ता। ततो द्वादशवर्षेषु गतेषु द्वीपायनमुनिरधिक-मासान्नजानन्नागत्य गिरिनगरसमीपे उष्ट्रग्रीवपर्वते आतापनेन स्थितः। तस्मिन्नेव दिने शम्बुकुमारादिभिः क्रीडार्थमूर्जयन्ते गतैस्तृषितैर्मद्यजलं पीत्वा मत्तैरागच्छद्भिर्बलदेववासुदेवाभ्यां द्वीपायनमुने रक्षार्थं कृतपाषाण-वृत्तिमालोक्य तैः स मुनिः पाषाणैः पूरितः। तस्यातीव रुष्टस्य निर्गतकोपाग्निना द्वारवती प्रज्वालिता। वार्तामाकर्ण्य बलभद्रवासुदेवाभ्यामागत्य प्रणम्य क्षमां कारितः। बृहद्वेलायां द्वे अङ्गुली दर्शिते। ततस्तौ द्वौ मुक्तावन्यत्सर्वं दग्धम्। जरत्कुमारेणाटव्यां तेनैव बाणेन सुप्तो हतो वासुदेवः। बलभद्रस्तन्मृतकं वहमानः पूर्वभवमित्रेण देवेन संबोधितस्तुङ्ग्यां तपः कृत्वा ब्रह्मस्वर्गे देवो जातः।

59. सगरस्य राजसिंहस्येत्यादि

सट्ठिं साहस्सीओ पुत्ता सगरस्स रायसीहस्स।
अदिबलवेगा संता णट्ठा माणस्स दोसेण ॥1381॥

अस्य कथा - जम्बूद्वीपे अपरविदेहे रत्नसंचयपुरे राजा जयसेनो, राज्ञी जयसेना, पुत्रौ रतिषेणधृतिषेणौ। एकदा रतिषेणमरणे जयसेनोऽतिशोकं कृत्वाशातनकं कर्म बद्ध्वा धृतिषेणाय राज्यं दत्वा महारुतनाम्ना सामन्तेन सह तपो गृहीत्वा संन्यासेन मृत्वाऽच्युते महाबलनामा देवो जातः। महारुतसामन्तोऽपि तत्रैव मणिकेतुनामा देवो

भी खूब घिसकर सूक्ष्म बना समुद्र में फेंक दी, जिसे एक मछली ने निगल लिया। इस प्रकार परम्परा क्रम से विन्ध्य में बैठे हुए जरत्कुमार को वह छुरी प्राप्त हुई, जिसे जरत्कुमार ने अपने बाण के अग्रभाग में लगाया। इस प्रकार बारह वर्ष बीत जाने पर द्वीपायन मुनि को अधिक मासों का ख्याल नहीं रहने से वे गिरनार के समीप उष्ट्रग्रीव पर्वत पर आकर आतापन से स्थित हो गए। उसी दिन शम्बुकुमार आदि क्रीड़ा करने के लिए ऊर्जयन्त पर गए। जब उन लोगों को प्यास लगी तो उन्होंने शराब को जल समझ कर पी लिया और मत्त होकर आ गए। इधर बलदेव और वासुदेव ने द्वीपायन मुनि की रक्षा के लिए पाषाण से चारों ओर घेरा बना दिया। उन लोगों ने उन मुनि को पत्थरों से पूर दिया। जिससे द्वीपायन मुनि के अत्यन्त क्रुद्ध होने से क्रोधाग्नि बाहर निकली और द्वारावती जल गयी। यह बात सुनकर बलभद्र और वासुदेव ने आकर नमस्कार कर क्षमा माँगी। बहुत देर बाद मुनि ने दो अंगुली दिखायी जिससे यह बताया कि दो लोगों को छोड़कर सब कुछ जल जायेगा। जरत्कुमार ने जंगल में उसी बाण से सोते हुए वासुदेव को मार दिया। बलभद्र उस मृतक को देखते रहे, बाद में पूर्वभव के एक मित्र ने जो कि देव हो गया था, उसने बलभद्र को सम्बोधित किया। तत्पश्चात् शिखर पर तप करके बलभद्र ब्रह्म स्वर्ग में देव हुए।

59. सगर चक्रवर्ती की कथा

अर्थ : राजसिंह सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्र थे। वे महा बलवान थे परन्तु मान के वश होकर वे सब नष्ट हो गए।

कथा : जम्बूद्वीप में अपर विदेह में रत्नसंचयपुर के राजा जयसेन थे। जिनकी रानी जयसेना थी। उनके दो पुत्र रतिषेण और धृतिषेण थे। एक बार रतिषेण का मरण हो जाने से जयसेन अति दुःखित हुए तथा अति तीव्र कर्म बाँधकर धृतिषेण को राज्य देकर महारुत नाम के योद्धा के साथ दीक्षा लेकर संन्यास पूर्वक मरणकर अच्युत स्वर्ग में महाबल नाम के देव हुए। महारुत सामन्त भी उसी स्वर्ग में मणिकेतु नाम के देव हुए। वहाँ स्वर्ग में

जातः। तत्र परस्परं ताभ्यां भणितम्-यः प्रथमं मानुष्यभवं प्राप्नोति स इतरेण संबोधनीयः। अथायोध्यायां राजा समुद्रविजयो, राज्ञी विजया, महाबलदेवश्च्युत्वा तत्पुत्रः सगरचक्रवर्ती जातः। एकदा सगरकारितवसतिकायां जनक्षोभकार्यतिशयेन सुन्दरं नवयौवनभरं मुनिरूपमादाय मणिकेतुदेवेन संबोधितः सगरो, न वैराग्यं गतः। पुनरपि अयोध्यासमीपे चतुर्मुखमुनिकेवलज्ञानोत्पत्तौ समवसरणे तेन संबोधितो, न वैराग्यं गतः। एकदा षष्टिसहस्त्रपुत्रैरतुलबलवीर्यैरतिगर्वितैः कीर्त्यर्थिभिः सगरो भणितः-देव, आदेशं देहि असाध्यं च साधयामः। भणितं तेन- न किमप्यसाध्यं ममास्ति, सर्वं सिद्धम्। पुनरपि तैरुक्तम्-तथापि किमप्यादेशं देहि। ततस्तेनोक्तम्-कैलासगिरौ भरतचक्रवर्तिकारितरत्नसुवर्णमयप्रतिमानां रक्षार्थं खातिकां कुरुत। इत्याज्ञां प्राप्य गतास्ते। दण्डरत्नेन गङ्गाखातिकायां कृतायां तेन मणिकेतुदेवेन भणितास्ते-मदीयं भवनं भवद्भिरात्मनाशार्थं विनाशितम्। इत्युक्त्वा तन्मिषं कृत्वा भीमभगीरथौ मुक्त्वा मायया सर्वे च भस्मीकृताः। भीमभगीरथौ सिंहासनस्थौ दृष्ट्वा अन्येषां मन्त्रिवचनान्मरणं ज्ञात्वा सगरो वैराग्यं गतः। मणिकेतुदेवेन ब्रह्मचारिरूपमादाय संबोधितः। भगीरथाय राज्यं दत्वा भीमसेनेन सह तपः कृत्वा मोक्षं गतः। मणिकेतुदेवेनोत्थापितास्ते सगरपुत्रास्तां वार्तामाकर्ण्य तपो गृहीत्वा मोक्षं गताः। भगीरथोऽप्येकदा वरदत्तपुत्राय राज्यं दत्वा तपो गृहीत्वा गङ्गातटे कायोत्सर्गेण स्थितः। क्षीरसमुद्रजलेन देवैस्तस्य पादौ धौतौ। तज्जलं देवैर्वन्द्यमानं गङ्गायां पतितम्। ततः वन्द्या पवित्रा भागीरथी जाता। भगीरथश्च तत्रैव निर्वाणं गतः।

उन्होंने आपस में कहा जो पहले मनुष्य भव प्राप्त करेगा तो दूसरा देव उसे सम्बोधित करेगा। इधर अयोध्या में राजा समुद्रविजय और रानी विजया रहती थी। महाबलदेव स्वर्ग से च्युत होकर उनके पुत्र सगर चक्रवर्ती हुए। एक बार सगर की बनायी वसतिका में लोगों के चित्त में क्षोभ पैदा करने योग्य अतिशय युक्त, सुन्दर नव यौवन से भरा मुनि का रूप बनाकर मणिकेतु देव ने सगर को सम्बोधित किया फिर भी सगर को वैराग्य नहीं हुआ। पुनः अयोध्या के पास चतुर्मुख मुनि के केवलज्ञान की उत्पत्ति के समय समवसरण में देव ने सम्बोधित किया किन्तु फिर भी वैराग्य नहीं हुआ। एक बार सगर के साठ हजार पुत्र जो अतुल बल और वीर्य से युक्त थे, उन्होंने अति गर्व से सगर की कीर्ति फैलाने के लिए सगर को कहा - प्रभो! आज्ञा दो जिससे हम लोग असाध्य वस्तु को सिद्ध कर दिखायें। सगर ने कहा - मेरे पास ऐसा कुछ नहीं जो असाध्य हो, मुझे तो सब प्राप्त है। पुनः पुत्रों ने कहा फिर भी कुछ तो आदेश दो। तब सगर चक्रवर्ती ने कहा - कैलास पर्वत पर भरत चक्रवर्ती के द्वारा बनवायी गयी रत्न और सुवर्ण की प्रतिमाएँ हैं। उनकी सुरक्षा के लिए चारों ओर खाई का निर्माण करो। इस प्रकार आज्ञा लेकर वे सब चले गए। दण्डरत्न की सहायता से उन्होंने गंगा में खातिका बना दी तभी उस मणिकेतु देव ने आकर कहा - आप लोगों ने मेरे भवन को नष्ट कर दिया है। यह आप लोगों ने अपने विनाश के लिए किया है, ऐसा कहकर मणिकेतु ने धोखा देकर भीम और भगीरथ को छोड़कर माया से सभी को भस्मसात् कर दिया। केवल भीम और भगीरथ को सिंहासन पर बैठा देखकर और अन्य पुत्रों का समाचार मन्त्री के कहे अनुसार जब सगर को मालूम हुआ तो सगर को वैराग्य हो गया। मणिकेतु देव ने ब्रह्मचारी का भेष बनाकर सगर को संबोधित किया। तब भगीरथ के लिए राजपाट सौंपकर सगर भीमसेन के साथ तप करके मोक्ष को प्राप्त हुए। बाद में मणिकेतु देव ने उन पुत्रों को जीवित कर दिया और सब बात बता दी। उस वार्ता को सुनकर दीक्षा ग्रहण कर वे सभी मुक्ति को प्राप्त हुए। एक बार भगीरथ ने भी वरदत्त पुत्र को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण की। वे गंगा के किनारे कायोत्सर्ग से खड़े थे। तब क्षीर समुद्र के जल से देवों ने उनके पैरों को धोया। उस वन्दना के योग्य पवित्र जल को देवों ने गंगा में छोड़ दिया इसलिए वह गंगा पवित्र, वन्दनीय भागीरथी हो गयी। भगीरथ भी वहीं से निर्वाण को प्राप्त हुए।

60. भरतग्रामस्य कुम्भकारेणेत्यादि

सस्सो य भरधगामस्स सत्त संवच्छराणि णिस्सेसो।

दड्ढो डंभणदोसेण कुंभकारेण रुट्ठेण ॥1388॥

अस्य कथा–अङ्गदेशे वटग्रामे कुम्भकारः सिंहनामा भाजनानि विक्रेतुं बलीवर्दान्भृत्वा भरतग्रामं गतः। तत्रत्यनारीभिः मायया परकीयगृहाणि तस्य दर्शयित्वा प्रभाते मूल्यं दास्याम इति भणित्वा सर्वभाजनानि नीतानि। प्रभाते कतिपयधूर्तैरागत्य गीतवादादिभिस्तं मोहयित्वा बलीवर्दा अपि नीताः। भाजनमूल्यं तस्य याचयतो न मया गृहीतमिति सर्वस्त्रीभिर्भणितम्। ततः सप्त वर्षाणि खलीकृतं धान्यं ग्राममहितमत्यन्तकुपितेन दग्धम्॥

61. साकेतपुरे सीमंधरस्य पुत्रो मृगध्वजो नामेत्यादि

सव्वे वि गंथदोसा लोभकसायस्स हुंति णादव्वा।

लोभेण चेव मेहुणहिंसालियचोज्जमाचरदि ॥1392॥

अस्य कथा – अयोध्यायां राजा सीमंधरो, राज्ञी अजितसेना, पुत्रो मृगध्वजः। राजकीयो भद्रमहिषो भणितो गच्छत्यागच्छति पादयोश्च पतति। तं राजकीयोद्याने पुष्करिण्यां क्रीडन्तं दृष्ट्वा तेन मृगध्वजकुमारेण मन्त्रिश्रेष्ठिपुत्राभ्यां सह क्रीडितुं तत्रागतेन मांसासक्तेनोक्तम्–पश्चिमचटुकमस्य महिषस्य मे देहीति। भृत्येन च

---

60. माया का दुष्परिणाम

अर्थ : भरत नामक ग्राम में सात वर्ष तक का समस्त धान्य कुम्भकार ने माया दोष से रुष्ट होकर भस्म कर दिया।

कथा : अंग देश के वट नाम के एक गाँव में कुम्भकार था, जिसका नाम सिंह था। एक बार वह कुम्भकार अपने बर्तनों को बेचने के लिए बैल से ढोकर भरत गाँव में गया। वहाँ की स्त्रियों ने छल से कहा कि ये बर्तन दूसरों को लेने हैं इसलिए उनको दिखाकर सुबह पैसा दे दूँगी और सभी बर्तन ले गयी।

सुबह होने पर कुछ धूर्तों ने गीत बाजे आदि से उस कुम्भकार को मोहित कर लिया और उसके बैल भी ले गए। जब कुम्भकार ने बर्तनों का मूल्य माँगा तो सभी स्त्रियों ने कह दिया कि मैंने तुम्हारे बर्तन नहीं लिए। जिससे उसने अति क्रोध में आकर सात वर्षों से खली कर रखे हुए धान्य और पूरे गाँव को जला दिया।

61. लोभ कषाय

अर्थ : समस्त परिग्रह के दोष लोभ कषाय युक्त मनुष्य के पास होते हैं क्योंकि इस लोभ से ही मैथुन, हिंसा, असत्यवचन और चोरी इन पापों को जीव करता है।

कथा : अयोध्या नगरी के राजा सीमंधर थे। जिनकी रानी अजितसेना थी। उनका एक पुत्र मृगध्वज था। वह जब एक राजकीय भद्र भैंसा से जाने के लिए कहता तो चला जाता और बुलाता तो आ जाता तथा चरणों में गिर पड़ता। वहीं राजकीय उद्यान में एक तालाब में जब भैंसा क्रीड़ा कर रहा था तो वहीं मृगध्वज कुमार के साथ मन्त्री, सेठ के लड़के भी क्रीड़ा करने के लिए आये। वहाँ आकर माँस में आसक्त होकर मृगध्वज ने कहा – इस भैंस का पिछला पैर मुझे लाकर दो। नौकर ने पिछला पैर काट दिया। वह बेचारा भैंसा तीन ही पैरों से जाकर राजा

चटुके छिन्ने भद्रमहिषस्त्रिभिः पादैर्गत्वा राजाग्रे पतितः संन्यासं पञ्चनमस्कारांश्च नृपतः प्राप्य सौधर्मे देवो जातः। तं वृत्तान्तं ज्ञात्वा रुष्टेन राज्ञा सिद्धार्थमन्त्री भणितस्त्रीनपि तान् मारय। त्रिभिरपि तां वार्तामाकर्ण्य मुनिदत्ताचार्यसमीपे तपो गृहीत्वा परमवैराग्यात् घातिक्षयं कृत्वा मृगध्वजेन केवलमुत्पादितम्।

62. रामस्य जामदग्न्यस्येत्यादि

रामस्स जामदग्गिस्स वजं घित्तूण कत्तिविरिओ वि।
णिधणं पत्तो सकुलो ससाहणो लोभदोसेण ॥1393॥

अस्य कथा- अयोध्यायां राजा कार्तवीर्यो राज्ञी पद्मावती। अटव्यां तापसपल्लिकायां तापसो जमदग्निर्भार्या रेणुका पुत्रौ श्वेतराममहेन्द्ररामौ। एकदा रेणुकाया भ्राता वरदत्तमुनिः पल्लिकासमीपे वृक्षमूलं गृहीतवान्। तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य रेणुकया सम्यक्त्वं गृहीतम्। भगिन्यां स्नेहाद् वरदत्तमुनिः परशुविद्यां कामधेनुविद्यां च दत्वा गतः। एकदा कार्तवीर्यो राजा हस्तिधरणार्थं वनमागतो जमदग्निना कामधेनुमाहात्म्येन महाविभूत्या भोजनं कारितः। स च लोभात्संग्रामे जमदग्निं व्यापाद्य कामधेनुं कार्तवीर्यो गृहीत्वा गतः। समिधादिकं गृहीत्वा श्वेतराममहेन्द्ररामौ समायातौ। श्वेतरामेणालोक्य रेणुका पृष्टा-किमिति दुःखिता तिष्ठसि। रेणुकया कथिते वृत्तान्ते पुत्रौ योद्धुं चलितौ। रेणुकया दत्तां परशुविद्यां गृहीत्वाऽयोध्यायां गत्वा श्वेतरामेण सबलवाहनः कार्तवीर्यो मारितो नरकं गतः। ततः श्वेतरामः परशुरामनामा सार्वभौमो राजा जातः।

के पास पहुँचा और गिर पड़ा। राजा से संन्यास और पञ्च नमस्कार मंत्र को प्राप्त करके वह भैंसा सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। बाद में राजा को जब यह वृत्तान्त ज्ञात हुआ तो क्रोध से राजा ने सिद्धार्थ मन्त्री को कहा कि उन तीनों को मार दो। वे तीनों ही राजा की बात को सुनकर मुनिदत्त आचार्य के पास दीक्षा ग्रहण कर उत्कृष्ट वैराग्य से युक्त हो गए तथा घातिया कर्मों का क्षय करके मृगध्वज ने केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

62. परशुराम की कथा

अर्थ : जमदग्निराम अर्थात् परशुराम के सर्व गौ का समूह कार्तवीर्य राजा ने लोभवश होकर ग्रहण कर लिया था। इस लोभ दोष से वह अपने बंधुवर्ग और सर्व सैन्य के साथ परशुराम के द्वारा मारा गया।

कथा : अयोध्या के राजा कार्तवीर्य थे। जिनकी रानी पद्मावती थी। यहीं जंगल में एक तापस का आश्रम था। तापस का नाम जमदग्नि था, जिसकी स्त्री रेणुका थी। उनके दो पुत्र श्वेतराम और महेन्द्रराम थे। एक बार रेणुका के भाई वरदत्त मुनि आश्रम के पास एक वृक्ष के नीचे ठहर गए। रेणुका ने उनके पास आकर धर्म को सुनकर सम्यक्त्व को ग्रहण कर लिया। बहिन के स्नेह से वरदत्त मुनि ने उसे परशुविद्या और कामधेनु दी और चले गए। एक बार राजा कार्तवीर्य हाथी को पकड़ने के लिए वन में आये। जमदग्नि ने कामधेनु विद्या के माहात्म्य से राजा को बहुत ही सुन्दर और स्वादिष्ट भोजन कराया। इस लोभ के कारण उसने संग्राम में जमदग्नि को मार दिया और कार्तवीर्य कामधेनु को लेकर चला गया।

यज्ञ के लिए लकड़ी आदि सामान लेकर जब श्वेतराम और महेन्द्रराम आये। श्वेतराम ने रेणुका माता को देखकर पूछा - तुम क्यों दुखी होकर बैठी हो? रेणुका ने सब बात दोनों पुत्रों को बताई, जिससे वे पुत्र युद्ध के लिए चल दिए। रेणुका ने उनको परशुविद्या दी। तब अयोध्या में जाकर श्वेतराम ने सेना और वाहनों से सहित कार्तवीर्य को मार दिया। कार्तवीर्य मरकर नरक गया। इसके बाद श्वेतराम परशुराम नाम के सार्वभौमिक राजा हुए।

63. नित्यं च खाद्यमानो भल्लूकेत्यादि

भल्लुंकीए तिरत्तं खज्जंतो घोरवेदणट्टो वि।
आराधणं पवण्णो झाणेणावंतिसुकुमालो ॥1539॥

अस्य कथा - कौशाम्बीनगर्यां राजा अतिबलः, पुरोहितः सोमशर्मनामा, भार्या काश्यपी, पुत्रावग्निभूतिवायुभूती। सोमशर्मणि मृते गोत्रिभिर्गृहीतं तत्पदं मूर्खत्वात्तयो राज्ञा न दत्तं पदम्। ततो ऽभिमानाद्राजगृहनगरे निजपितृव्यसूर्यमित्रसमीपं गतौ। वार्ता च कथिता। तेन च भिक्षाभोजनेन॥

षडङ्गानि चतुर्वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः।
धर्मशास्त्रं पुराणं च विद्या एताश्चतुर्दश॥

कतिपयदिनैः पाठितौ। कौशाम्बीमागत्य पितुः पदे स्थितौ। अथ राजगृहसूर्यमित्रपुरोहितस्यैकदा सन्ध्यायामादित्यार्घ्यं ददतस्तडागे पद्मोपरि जलेन सह राजकीयमुद्रिका पतिता। रात्रौ भीतेन सुधर्ममुनिः पृष्टः। अवधिज्ञानेन ज्ञात्वा तेन कथिता। प्रभाते तेन गृहीता। केवलीलोभेन सुधर्ममुनिसमीपे सूर्यमित्रो मुनिरभूत्। केवलीं पुनः पुनः पृच्छन् क्रियामागमं च पाठितो धर्मपरिणतो भूत्वा एकाकी विहरन् कौशाम्ब्यां चर्यार्थमुच्चनीचगृहान् भ्रमन्नग्निभूतिगृहे गतः। अग्निभूतिना च सूर्यमित्रमुनेः परमभक्त्या दानं दत्तम्। वायुभूतिना भणितेनापि वन्दना न कृता प्रत्युत निन्दा कृता। सूर्यमित्रमुनिमनुव्रज[1]ताग्निभूतिना धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीतम्। अग्निभूतिभार्यया सोमदत्तया

---

63. सुकुमाल मुनि की कथा

अर्थ : शृगाली के द्वारा तीन रात तक जो खाये गए, जिनके प्रत्यंगों में तीव्र वेदनायें हो रही थी, ऐसे वे अवन्ति के सुकुमाल मुनि शुभध्यान से रत्नत्रयाराधना को प्राप्त हुए।

कथा : कौशाम्बी नगरी के राजा अतिबल थे। उनका सोमशर्मा नाम का पुरोहित था। पुरोहित की स्त्री का नाम काश्यपी था। जिनके दो पुत्र अग्निभूति और वायुभूति थे। सोमशर्मा के मर जाने पर गोत्र के द्वारा स्वीकृत पुरोहित पद को राजा ने अग्निभूति और वायुभूति के मूर्ख होने कारण उन्हें नहीं दिया। जिससे अभिमान कर वे राजगृह नगर में अपने पिता तुल्य सूर्यमित्र के पास गए और अपना सब हाल कहा। सूर्यमित्र जो कि भिक्षा भोजन करने वाले थे। ''उन्होंने छह अंग, चार वेद, मीमांसा मत, न्याय का विस्तार, धर्म शास्त्र और पुराण इन चौदह विद्याओं को कुछ ही दिनों में पढ़ा दिया।'' इसके बाद वे दोनों वापस कौशाम्बी में आकर अपने पिता के पद पर स्थित हो गए। एक बार राजगृह में सूर्यमित्र पुरोहित सन्ध्या के समय सूर्य को अर्घ चढ़ा रहे थे कि तालाब में जल चढ़ाने के साथ-साथ राजकीय मुद्रिका भी कमल के ऊपर गिर गयी। तब राजा की अँगूठी होने के डर से रात्रि में सुधर्म मुनि से पूछा। मुनिराज ने अवधिज्ञान से जानकर सूर्यमित्र को बता दिया। सुबह होने पर सूर्यमित्र को वह अँगूठी मिल गयी। केवली बनने के लोभ से सुधर्ममुनि के पास ही सूर्यमित्र मुनि हो गए। सूर्यमित्र मुनि केवली बनने के बारे में बार-बार पूछते तो मुनिराज उन्हें आगम और क्रियाएँ पढ़ाते, जिससे सूर्यमित्र मुनिधर्म से युक्त होकर एकाकी विहार करते हुए चर्या के लिए कौशाम्बी में उच्च-नीच घरों में भ्रमण करते हुए अग्निभूति के घर पहुँचे। अग्निभूति ने सूर्यमित्र मुनि को परम भक्ति से दान दिया किन्तु वायुभूति ने अग्निभूति के कहने पर भी वन्दना नहीं की उल्टा निन्दा करने लगा। बाद में अग्निभूति सूर्यमित्र मुनि के पीछे-पीछे गए और धर्म श्रवण कर

1. व्रतजोऽ

तां वार्तामाकर्ण्य दुःखितया वायुभूतिर्भणितः- रे निकृष्ट, सूर्यमित्रमुनेः प्रणामो न कृतः, निन्दा च कृता, तेन कारणेनाग्निभूतिना तपो गृहीतम्। इत्येवं वदन्ती सा वायुभूतिना पादेन मुखे हत्वा भणिता-त्वमपि तस्यैवाशुचेर्नग्नस्य पार्श्वे गच्छ। तया रोषान्निदानं कृतम्। जन्मान्तरे तव पादं सपुत्राहं भक्षयामीति। स वायुभूतिर्मुनिनिन्दाप्रभव-पापात्सप्तदिनैरुदुम्बरकुष्टेन मृत्वा कौशाम्ब्यां नटस्य गर्दभी जाता। मृत्वा तत्रैव गर्तासूकरी। मृत्वा चम्पानगर्यां चाण्डालगृहे कुर्कुरी। पुनस्तत्रैव चाण्डालपुत्री अतीव विरूपका दुर्गन्धान्धा च जाता। जम्बूवृक्षतले महता कष्टेन जम्बूफलानि प्राप्तानि भक्षयन्ती अग्निभूतिमुनिना दृष्टा। भणितं च तेन-केनापि कर्मणा वराकिका कीदृशी जाता महता कष्टेन जीवति। तच्छ्रुत्वा सूर्यमित्रमुनिनोक्तम् - तवायं भ्राता वायुभूतिर्गर्दभी शूकरी कुर्कुरी भूत्वा चाण्डाली भूता। ततस्तेन संबोध्य पञ्चाणुव्रतानि ग्राहिता। मृत्वा चम्पायां पुरोहितनागशर्मपुत्री नागश्रीर्जाता। नागोद्याने श्रेष्ठिमन्त्र्यादिकन्याभिः सह नागपूजां कृत्वा नागश्रीः सूर्यमित्रमुनेर्विहरमाणस्य तत्रागतस्य समीपे गता। तामालोक्याग्निभूतिमुनेः स्नेहो जातः। पृष्टेन सूर्यमित्राचार्येण स्नेहकारणं कथितम्। ततोऽग्निभूतिना संबोध्य सम्यक्त्वमणुव्रतानि च ग्राहिता भणिता- हे पुत्रि, यदि तव पिता व्रतानि त्याजयति तदागत्य व्रतानि मम समर्पयेस्त्वमिति। कन्याभिर्नागशर्मणो वार्तायां कथितायां तेनोक्तम् - पुत्रि, ब्राह्मणानां सर्वोत्तमवर्णानां न युक्तं क्षपणकधर्मानुष्ठानं कर्तुमतस्त्यज त्वम्। तयोक्तम्- तर्हि तस्यैव मुनेः समर्पयामि। ततस्तां हस्ते धृत्वा मुनिसमीपं चलितः। मार्गे लोकवेष्टितो बद्धः पटहेन वाद्यमानेन शूलिकासमीपं नीयमानः पुरुषो दृष्टः। नागश्रिया पिता

दीक्षा ग्रहण कर ली। अग्निभूति की पत्नी सोमदत्ता ने जब यह बात सुनी तो बहुत दुखी होकर वायुभूति को कहा - रे निकृष्ट! तूने सूर्यमित्र मुनि को प्रणाम नहीं किया और निन्दा की, इसी कारण से अग्निभूति ने दीक्षा ले ली। इस प्रकार कहने पर वायुभूति ने पैर से उसके मुख पर लात मार कर कहा - तू भी उसी अशुचि और नग्न के पास चली जा। तब सोमदत्ता ने क्रोध में आकर निदान कर लिया कि जन्मान्तर में तेरा यह पैर पुत्र के साथ मैं खाऊँगी। इधर वायुभूति मुनि निन्दा के पाप से सात दिनों में ही उदुम्बर कोढ़ की पीड़ा से मरकर कौशाम्बी नट के यहाँ गधी बना। मरकर उसी गड्ढे में सूकरी बना। वहाँ से मरकर चम्पानगरी में एक चाण्डाल के घर में कुतिया बना और पुनः उसी चाण्डाल के यहाँ एक अत्यन्त बेरूप दुर्गन्ध युक्त अन्धी पुत्री हुआ। जम्बूवृक्ष के नीचे बहुत कष्ट से जम्बू फल को पाकर खाती हुई उस पुत्री को अग्निभूति मुनि ने देखा तो मुनि ने कहा - किन कर्मों के कारण बेचारी की ऐसी गति हुई है और बहुत कष्ट उठा रही है। यह सुनकर सूर्यमित्र मुनि ने कहा - यह तुम्हारा भाई वायुभूति है जो गधी, सूकरी और कुतिया होकर चाण्डाली बना है। तब अग्निभूति ने उसे सम्बोधन देकर पञ्च अणुव्रत ग्रहण करा दिए। बाद में वह मरकर चम्पानगरी में पुरोहित नागशर्मा की पुत्री नागश्री हुई। नाग उद्यान में सेठ मन्त्री आदि की कन्याओं के साथ नागश्री नागपूजा कर रही थी तभी विहार करते हुए सूर्यमित्र मुनि वहीं आये। नागश्री उनके पास गयी। उसे देखकर अग्निभूति मुनि को कुछ स्नेह हुआ तब मुनिराज के पूछने पर सूर्यमित्र मुनि ने स्नेह का कारण बताया। पुनः अग्निभूति मुनि ने सम्बोधन कर सम्यक्त्व और अणुव्रत दिला दिए और कहा हे पुत्रि! यदि तुम्हारा पिता व्रतों को छुड़वाये तो आकर व्रत मुझे ही समर्पित कर देना। कन्या और नागशर्मा की जब बात हुई तो नागशर्मा ने कहा - पुत्री! हम सर्वोत्तम वर्ण वाले ब्राह्मण हैं। इसलिए अपने लिए मुनि के धर्म का अनुष्ठान करना ठीक नहीं, इसलिए तुम ये व्रत छोड़ दो। नागश्री ने कहा तो फिर व्रतों को उन मुनि को ही दे आती हूँ। तब नागश्री का हाथ पकड़कर नागशर्मा मुनि के पास चल दिया। रास्ते में लोगों से घिरा हुआ एक व्यक्ति देखा जो बँधा था

पृष्टः- तात, किमर्थमयं बद्धः। कथितं तेन - वसन्तसेनो वणिक्कुलं भाडद्रव्यं याचमानोऽनेन मारितः। ततो निगृह्यते लग्नः। नागश्रियोक्तम् - जीववधे एवंविधो निग्रहो भवति। तत्रैव मया निवृत्तिर्गृहीता। ततस्तेनोक्तम्- तिष्ठत्विदं व्रतं वेदेषूक्तमास्तेऽन्यानि त्यज॥ अग्रे गच्छन्त्या तयापरः पुरुषो बद्धो दृष्टः। पिता पृष्टश्च। तेन कथितम्-यथा वणिक् नारदनामा व्यलीकवचनैः परं प्रतार्यैव साटिं करोति। एकदा साटिकेन सह राज्ञो ऽग्रे झकटके जाते राज्ञा मृषावादित्वं अस्य ज्ञात्वा जिह्वाहस्तपादादिच्छेदनमस्य भणितम्। शेषं पूर्ववत्॥ एवं चौर्यपरदारातिलोभदोषान्निगृह्यमाणपुरुषान् दृष्ट्वा नागशर्मणा भणितम्- पुत्रि, तिष्ठन्तु व्रतान्येतानि किंतु तं क्षपणकं गर्हित्वा आगच्छामि येन स बालानां व्रतं न ददाति। तत्र गत्वा दूरस्थेन तेनोक्तम्- हे मुने, किं मत्पुत्रिका व्रतादिदानेन प्रतारिता त्वया। सूर्यमित्रमुनिनोक्तम् - भो भट्ट, मदीया पुत्री नागश्रीरियं न त्वदीया। एहि पुत्रीति भणिते नागश्रीर्भट्टारकसमीपे गत्वोपविष्टा। ततो भट्टेनान्यायमिति कुर्वता चन्द्रवाहनराजस्य कथितम्। ततः सोऽपि सर्वनगरजनेन सह मुनिसमीपमागतः। ततो मुनिभट्टयोर्मदीया मदीयेति विवादे मुनिनोक्तम्-चतुर्दशविद्यास्थानानि मया पाठिता मदीयेयम्। राज्ञोक्तम्- तर्हि पाठय। मुनिनोक्तम् - वायुभूते पठ। ततो नागश्रिया यथास्थानं चतुदर्शविद्यास्थानानि पठितानि। विस्मितेन राज्ञोक्तम् - भगवन्, संबन्धं कथय। ततः पूर्वकथासंबन्धः कथितः। तं श्रुत्वा राजा बहुराजपुत्रैः सह प्राव्राजीत्। नागशर्माऽपि मुनिर्भूत्वा अच्युते देवो जातः। नागश्रीरपि तपः कृत्वा

उसे एक ढिंढोरची बाजा बजाते हुए शूली के पास ले जा रहा था। नागश्री ने पिता को पूछा - तात! यह व्यक्ति क्यों बँधा है तो पिता ने कहा वसन्तसेन व्यापारी ने अपने बर्तन, धन आदि माँगे तो इसने उसे मार दिया। इसलिए उसको दण्ड देने में लगा है। नागश्री ने कहा जीववध हो जाने पर इस प्रकार दण्ड मिलता है, उसी हिंसा से बचने के लिए तो मैंने व्रत ग्रहण किया था। तब पिता ने कहा तो ठीक है, यह व्रत रख ले। वेदों में भी यही कहा है और दूसरे व्रत छोड़ दे। आगे जाने पर नागश्री ने फिर एक पुरुष को बंधा देखा उसने पिता को पूछा, पिता ने कहा - एक बार नारद नाम का व्यापारी झूठ बोलकर दूसरों को ताड़ित करके अपने मद में फूला रहता। एक बार उस घमण्डी के साथ राजा के सामने झगड़ा हो जाने पर राजा ने उसका झूठपना जानकर उसकी जीभ, हाथ, पैर आदि के छेदने के लिए कहा। पूर्व की तरह नागश्री ने पिता से कहा यही व्रत तो मुनि ने मुझे दिया था तो पिता ने कहा तुम इसे भी रख लो और सब छोड़ दो। इसी प्रकार चोरी, परस्त्री के अति लोभ से उत्पन्न दोष से दण्डित पुरुषों को देखकर नागशर्मा ने कहा पुत्रि! ये व्रत तो अपने पास रहने दो किन्तु उन नग्न साधु को डाँटकर आऊँगा। जिससे वह लड़कियों को व्रत न दिया करें। वहाँ जाकर नागशर्मा ने दूर से ही कहा - हे मुने! क्यों तुमने मेरी पुत्री को व्रतादि के दान से ठग लिया। तब सूर्यमित्र मुनि ने कहा - हे बुद्धिमान्! यह नागश्री मेरी पुत्री है तुम्हारी नहीं है। आओ पुत्री। ऐसा कहने पर नागश्री उन मुनिराज के समीप जाकर बैठ गयी। तब भट्ट नागशर्मा ने चन्द्रवाहन राजा को कहा इन साधु ने अन्याय किया है। जिससे राजा भी सभी नगरवासियों के साथ मुनि के पास आ पहुँचे। तब मुनि और नागशर्मा के बीच यह मेरी पुत्री है यह मेरी पुत्री है, ऐसा विवाद होने पर मुनिराज ने कहा - मैंने इसे चौदह विद्यायें पढ़ायी हैं, इसलिए यह मेरी पुत्री है। राजा ने कहा तो फिर पढ़ के बताओ। मुनिराज ने कहा - वायुभूति! पढ़ तब नागश्री ने यथाक्रम से चौदह विद्या स्थान पढ़ दिए। राजा ने आश्चर्यचकित होकर कहा - भगवन्! अब आप इसका सम्बन्ध बताइए। मुनिराज ने पूर्व कथा सुनाकर सारा सम्बन्ध कह दिया। यह परिभ्रमण सुनकर राजा बहुत से पुत्रों के साथ दीक्षित हो गए और नागशर्मा भी मुनि होकर बाद में अच्युत स्वर्ग में देव हुआ। नागश्री भी दीक्षा ले करके बाद में अच्युत स्वर्ग में देव हुई। अग्निमन्दिर पर्वत से सूर्यमित्र और अग्निभूति मुनि

अच्युते देवो जातः। अग्निमन्दरगिरौ सूर्यमित्राग्निभूती तु निर्वाणं गतौ। तथावन्तिदेशे उज्जयिन्यां नगर्यां इन्द्रदत्तेभ्यस्य गुणवत्यां नागशर्मचरो देवो ऽच्युतादागत्य सुरेन्द्रदत्तनामा पुत्रो जातः। तत्रैव सुभद्रेभ्यस्य पुत्रीं यशोभद्रां परिणीतवान्। तया चैकदावधिज्ञानी मुनिः पृष्टः- मम पुत्रो भविष्यति न वेति। मुनिनोक्तम्- तव पुत्रो भविष्यति। तन्मुखं दृष्ट्वा श्रेष्ठी तपो ग्रहीष्यति। सो ऽपि मुनिं दृष्ट्वा तपो ग्रहीष्यतीति नागश्रीचरो देवस्तत्पुत्रः सुकुमालनामा जातः। सुरेन्द्रदत्तस्तस्य श्रेष्ठिपदं बन्धयित्वा मुनिरभूत्। सुकुमालश्रेष्ठी च यौवनस्थो द्वात्रिंशत्प्रासादेषु अप्रतिरूपद्वात्रिंशत्कुलपुत्रिकाभिः सह भोगाननुभवन् स्थितः। निमित्तिना च पूर्वं तस्य आदेशः कृतः। मुनिदर्शनेनायं मुनिर्भविष्यतीति। ततो गृहे मुनीनां प्रवेशो निषिद्धः। एकदा प्रद्योतराज्ञो भ्रमातुकेनानर्घ्यो रत्नकम्बलो दर्शितो राज्ञा ग्रहीतुं न शक्तः। सुकुमालजनन्या तं गृहीत्वा द्वात्रिंशद्वधूनां प्राणहिताः कारिताः। तत्रैका प्राणहिता मांसखण्डं मत्वा सौलिकया नीत्वा चञ्च्वा हत्वा घातिता। राज्ञो गणिकया राज्ञो दर्शिता सुकुमालभार्याप्राणहितेयमिति श्रुत्वा जाताश्चर्यो राजा सुकुमालस्वामिनं द्रष्टुं गृहे गतः। तज्जनन्या अभ्युत्थानं कृतम्। एकस्मिन्पट्टे राज्ञा सहोपविष्टस्य मुहुर्मुहुः कण्ठहारारात्रिकोद्द्योतादक्षिगलनं सह भुञ्जानस्यैकैकसिक्थभक्षणं दृष्ट्वा राज्ञा तज्जननी पृष्टा तया कारणं कथितम्। ततो विस्मितेन राज्ञा भणितम्। अवन्तिसुकुमाल इति नाम कृतम्। भुक्तोत्तरं क्रीडनवाप्यां

निर्वाण को प्राप्त हुए। अवन्ति देश के उज्जयिनी नगरी में इन्द्रदत्त सेठ के गुणवती स्त्री थी। नागशर्मा जो कि अच्युत स्वर्ग में देव हुआ था वहाँ से आकर इन्हीं इन्द्रदत्त सेठ के यहाँ सुरेन्द्रदत्त नाम का पुत्र हुआ। वहीं सुभद्र सेठ की पुत्री यशोभद्रा थी, जिससे सुरेन्द्रदत्त का विवाह हुआ। यशोभद्रा ने एक बार अवधिज्ञानी मुनिराज को पूछा - प्रभो! मेरे पुत्र होगा या नहीं तब मुनिराज ने कहा - तुम्हारे पुत्र होगा किन्तु उसका मुख देखकर सेठजी दीक्षा ग्रहण कर लेंगे तथा वह पुत्र भी मुनिराज के दर्शन करके दीक्षा ग्रहण कर लेगा। नागश्री का जीव जो देव हुआ था वही यशोभद्रा का सुकुमाल नाम का पुत्र हुआ। सुरेन्द्रदत्त उसको सेठ पद से बाँधकर मुनि हो गए। सुकुमाल सेठ यौवन अवस्था को प्राप्त कर बत्तीस महलों में अतिशय सुन्दरी बत्तीस कुल पुत्रियों के साथ भोगों को भोगते हुए रहते थे। चूँकि निमित्तज्ञानी ने पहले ही इशारा किया था कि मुनि के दर्शन करने से यह पुत्र मुनि हो जायेगा जिस कारण घर में मुनियों का प्रवेश निषिद्ध था। एक बार प्रद्योत राजा को किसी घूमने वाले ने एक बहुत मूल्यवान रत्नकम्बल दिखाया। राजा जिसे लेने में समर्थ नहीं हुआ। सुकुमाल की माँ ने उसे लेकर अपनी बत्तीस बहुओं के लिए जूती बनवा दी। उनमें से एक जूती एक चील, माँस समझकर ले जा रहा था कि एक राजा की वेश्या ने उसे चोंच से निकालकर घायल कर दिया तब उस वेश्या ने राजा को वह जूती दिखायी। सुकुमाल की स्त्री की वह जूती है, यह सुनकर राजा को बहुत आश्चर्य हुआ। राजा सुकुमाल स्वामी को देखने के लिए उनके घर गए। सुकुमाल की माँ ने राजा का आदर सत्कार किया। एक ही सिंहासन पर राजा के पास सुकुमाल भी बैठे थे। बार-बार गले में हार पहनाने से और आरती उतारने से सुकुमाल की आँख से आँसू आ गए। बाद में सुकुमाल ने राजा के साथ बैठकर भोजन किया तो सुकुमाल को एक-एक चावल को बीन-बीन कर खाते देख राजा ने माँ यशोभद्रा से पूछा, तब उसने इसका कारण बताया। तब राजा सब सुनकर आश्चर्यचकित हुए और कहा आज से मैंने इनका नाम अवन्ति सुकुमाल (अर्थात् सारे देश के सुकुमाल) कर दिया।

भोजन करने के बाद क्रीड़ा करने वाली बाबड़ी में जल क्रीड़ा करते हुए राजा की अँगूठी जल में गिर

जलक्रीडां कुर्वतो राज्ञो मुद्रिका वाप्यां पतिता। गवेषयता राज्ञा तत्रानेकमणिकुण्डलाभरणानि दृष्टानि। ततो विस्मितो लज्जयित्वा स्वगृहे गतः। सुकुमालस्वामिमातुलेन गणधराचार्येण सुकुमालस्वामिनः स्वल्पमायुर्ज्ञात्वा तदीयोद्याने आगत्य योगो गृहीतः। यशोभद्रया गृहे प्रवेशः स्वाध्यायघोषश्च योगपरिसमाप्तिं यावन्निषिद्धः। योगनिष्ठापनक्रियां कृत्वा ऊर्ध्वलोकप्रज्ञप्तिं पठताच्युतस्वर्गे देवानामायुरुत्सेधसौख्यादिव्यावर्णनं कर्तुमारब्धम्। तच्छ्रुत्वा सुकुमालस्वामी जातिस्मरो भूत्वा मुनिसमीपे आगतः। मुनिनोक्तम्- त्रीणि दिनानि तवायुर्यज्ज्ञानासि तत्कुरुः। तत स्तयोर्गहीत्वा संन्यासं च पादोपयानमरणे स्थितः। या अग्निभूतेर्भार्या कृतनिदाना सा संसारे परिभ्रम्य तत्रैव श्रृगाली जाता। ततस्तया चतुःपुत्रया पूर्वभववैरसंबन्धेन पादाभ्यामारभ्य खादन्त्या तृतीयदिने परमसमाधिना कालं कृत्वाच्युते देवो जातः। देवैर्महाकाल इति घोषणान्महाकाल यत्र गन्धोदकवर्षस्तत्र गन्धवती नदी। यत्र भार्याभिरागत्य कलकलः कृतस्तत्र कलकलेश्वरो जात इति।

64. मौद्गिल्लगिरावित्यादि

मोग्गिल्लगिरिम्मि य सुकुसलो वि सिद्धत्थदइयभयवंतो।
वग्घीए वि खज्जंतो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥ 1540॥

गयी। राजा जब उसे ढूँढने लगे तो उस बावड़ी में अनेक मणि, कुण्डल आदि आभूषण पड़े देखे जिससे विस्मित हुआ राजा लज्जित होकर अपने घर चले गए। सुकुमाल स्वामी के मामा गणधराचार्य ने सुकुमाल स्वामी की आयु अल्प जानकर उन्हीं के बगीचे में आकर योग धारण कर लिया। यशोभद्रा ने उनका घर में प्रवेश और जोर से स्वाध्याय शब्द के लिए जब तक योग पूर्ण न हो तब तक के लिए मना कर दिया। योग निष्ठापन क्रिया करके ऊर्ध्व लोक प्रज्ञप्ति को पढ़ते हुए अच्युत स्वर्ग के देवों की आयु, ऊँचाई और सुख आदि का वर्णन करना प्रारम्भ किया। जिसे सुनकर सुकुमाल स्वामी को जातिस्मरण हो गया और मुनिराज के समीप आ पहुँचे। मुनिराज ने कहा तुम्हारी आयु तीन दिन की शेष है, अब तुम जो समझो वह करो। तब सुकुमाल स्वामी योग और संन्यास ग्रहण कर पादोपयान मरण से स्थित हो गए। जो अग्निभूति की पत्नी ने निदान किया था वह संसार में परिभ्रमण कर वहीं श्रृगाली हुई। तदुपरान्त उसने अपने चारों बच्चों सहित पूर्वभव के वैर के सम्बन्ध से सुकुमाल मुनि को पैरों से खाना प्रारम्भ कर दिया और तीसरे दिन परम समाधि के द्वारा मृत्यु कर अच्युत स्वर्ग में देव हुए। देवों ने उस स्थान को महाकाल कहकर घोषणा की। जहाँ महाकाल की स्थापना हुई। वहीं देवों ने गंधोदक वृष्टि की जिससे वहाँ से गन्धवती नदी बही और वहीं पर स्त्रियों ने आकर कलकल ध्वनि की जिससे बाद में वह स्थान ही कलकलेश्वर नाम से विख्यात हुआ।

64. सुकोशल मुनि की कथा

अर्थ : मौद्गिल्ल नामक पर्वत पर सिद्धार्थ राजा के पुत्र सुकोशल नाम के मुनिराज को, जो पूर्व जन्म में उनकी माता हुई थी, ऐसी व्याघ्री ने भक्षण किया तो भी उन्होंने शुभ ध्यान से रत्नत्रय की प्राप्ति की अर्थात् वे श्रेष्ठ फल को प्राप्त हुए।

अस्य कथा- अयोध्यायां राजा प्रजापालः, श्रेष्ठी सिद्धार्थ-इभ्यः। तस्य द्वात्रिंशद्भार्या अपुत्रास्तासां मध्ये अतीव वल्लभा जयावती। सा पुत्रार्थं यक्षाणां पूजां कुर्वाणा दिव्यज्ञानिमुनिना भणिता- पुत्रि, कुदेवभक्तिं परित्यज्य निश्चला जिनधर्मे भव। येन तव सप्तदिनमध्ये गर्भसंभूतिर्भवतीति। ततस्तुष्टा दृढा जिनधर्मे सा स्थिता। कतिपयदिनैः सुकोशलनामा पुत्रो जातः। तन्मुखं दृष्ट्वा श्रेष्ठी नयंधरमुनिसमीपे मुनिरभूत्। मां बालपुत्रिकां मुक्त्वा गत इति मत्वा सिद्धार्थमुनेरुपरि जयावती अत्यर्थं कुपिता। मुनिना च किमस्य तपो दातुं युक्तमिति कोपाद्गृहे प्रवेशो निषिद्धः। सुकोशलेन क्रमेण वृद्धिं गतेन द्वात्रिंशद्भार्याः परिणीताः। एकदा प्रासादोपरि भूमिस्थितेन जननीधात्रीभार्यासमन्वितेन नगरशोभां पश्यता दिग्देशान्तरं विहृ-त्यागतश्चर्यायाः प्रविष्टः सिद्धार्थमुनिमजानता तेन पृष्टः। कोऽयम्। जयावत्या कुपितयोक्तम्- रंकः कोऽप्ययं याति। सुकोशलेनोक्तम्-नायं रङ्कः सर्वोत्तमलक्षणयुक्तत्वात्। ततः सुनन्दाधात्र्या श्रेष्ठिनी भणिता। तव कुलप्रभोः परममुनेश्च निन्दावचनं वक्तुं न युक्तम्। ततः श्रेष्ठिन्या सा भणिता- मौनेन तिष्ठ। अक्षिसंज्ञया च सा वारिता। प्रतारितोऽहमनयेति चिन्तयन्सुकोशलः सूपकारेण भणितः - भोजनवेला संजातेति। ततो जननीधात्रीभार्याभिर्भणितो भोजनं क्रियतामिति। तेनोक्तम्- मयास्योत्तमपुरुषस्य स्वरूपं ज्ञात्वा भोक्तव्यमिति। ततः सुनन्दया यथार्थे पूर्ववृत्तान्ते कथिते सुकोशलो मुनिसमीपे गतो निजभार्यायाः सप्रभाया गर्भस्थितपुत्रस्य श्रेष्ठिपट्टं बन्धयित्वा सिद्धार्थसमीपे मुनिर्जातः। आर्तेन मृत्वा जयावती मगधदेशे मौद्गिल्लगिरौ व्याघ्री त्रिपुत्रा जाता। तौ द्वौ मुनी विहरमाणौ मौद्गिल्लगिरौ चतुर्मासोपवासेन योगं

कथा : अयोध्या के राजा प्रजापाल थे। वहीं एक प्रधान सेठ सिद्धार्थ रहते थे। उनकी बत्तीस स्त्रियाँ थीं, किन्तु उनके कोई पुत्र नहीं था। उन रानियों में अत्यन्त प्रिय रानी जयावती थी। वह पुत्र की प्राप्ति के लिए यक्षों की पूजा किया करती। एक बार दिव्यज्ञानी मुनि ने कहा - पुत्रि! तुम कुदेवों की भक्ति छोड़कर जिनधर्म में ही निश्चल हो जाओ, जिससे तुम्हें सात दिन में गर्भ की विभूति प्राप्त होगी। तब वह संतुष्ट होकर जिनधर्म में दृढ़ हो गयी। कुछ दिनों बाद सुकोशल नाम का एक पुत्र हुआ। पुत्र का मुख देखकर सेठजी नयंधर मुनि के पास मुनि हो गए। मुझ बाल पुत्री को छोड़कर ये चले गए ऐसा मानकर सिद्धार्थ मुनि के ऊपर जयावती अत्यन्त नाराज हुई। क्या मुनिराज को इस समय सिद्धार्थ को दीक्षा देना युक्त था? इस कारण क्रोध से उसने घर में मुनि का प्रवेश निषिद्ध कर दिया। सुकोशल धीरे-धीरे बड़े हुए और बत्तीस स्त्रियों से विवाहित हुए। एक बार महल की छत पर माता, धाय और पत्नियों के साथ सुकोशल बैठे हुए नगर की शोभा देख रहे थे। तभी दूर दिशा से विहार कर आते हुए चर्या के लिए सिद्धार्थ मुनि प्रविष्ट हुए। सुकोशल उन्हें नहीं जानता था इसलिए पूछा - माँ यह कौन है? जयावती ने क्रोधित होकर कहा - यह कोई दरिद्र आ रहा है। सुकोशल ने कहा - माँ यह दरिद्र नहीं है। यह सभी उत्तम लक्षणों से युक्त है। तब सुनन्दा धाय ने सेठानी को कहा - अपने कुल के स्वामी, परम मुनिराज को इस प्रकार निन्दात्मक वचन कहना ठीक नहीं। सेठानी ने धाय को कहा - चुपचाप बैठ और आँखों से इशारा कर उसे रोक दिया। मैं माँ से कुछ ठगा गया हूँ इस प्रकार सुकौशल सोचता रहा, तब रसोइया ने कहा - स्वामी भोजन का समय हो गया है, इसके बाद माँ ने, धाय ने और पत्नियों ने भी भोजन करने के लिए कहा। तब सुकौशल ने कहा मैं उस उत्तम पुरुष के बारे मैं जानकर ही भोजन करूँगा। तदुपरान्त सुनन्दा ने सही-सही पूर्व की सारी कहानी बता दी। कथा सुनते ही सुकौशल मुनि के पास गए तथा अपनी पत्नी सुप्रभा के गर्भ स्थित पुत्र को ही सेठपट्ट से बाँधकर सिद्धार्थ के पास मुनि हो गए। इधर जयावती दुःखित होकर मरी और मगधदेश में मौद्गिल्ल पर्वत पर

गृहीत्वा योगावसाने चर्यायां प्रविष्टौ तां व्याघ्रीमालोक्य संन्यासेन स्थितौ तया क्रमेण भक्षितौ सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नौ सुकोशलहस्ते लाञ्छनमालोक्य व्याघ्री जातिस्मरी जाता। हा त्यक्तजिनधर्माः प्राणिनः संसारे परिभ्रमन्तः पुत्रादीनपि भक्षयन्तीति संसारनिन्दां कृत्वा संन्यासेन मृत्वा सौधर्मं गता॥

65. आर्द्रांजिनमिवेत्यादि

भूमीए समं कीलाकोट्टिददेहो वि अल्लचम्मं व।
भयवं पि गयकुमारो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं॥1541॥

अस्य कथा- द्वारवतीनगर्यां राजा वासुदेवो, राज्ञी गान्धर्वसेना, पुत्रो गजकुमारः। पोदनपुरे राजा अपराजितो वासुदेवस्य न सिध्यति। ततो वासुदेवेन घोषणादायि, यो ऽपराजितं बन्धयित्वा आनयति तस्मै वरमीप्सितं ददामीति। गजकुमारेण पोदनपुरं गत्वा युद्धे जित्वा ऽपराजितं बन्धयित्वा आनीय वासुदेवस्य समर्पितः। ततः कामचारं वरं वरयित्वा द्वारावतीस्त्रीजनं सेवमानः पांसुलश्रेष्ठिनो या सुरपतिनाम्ना भार्या तस्यामासक्तः। पांसुलः कोपेन प्रज्वलत्तिष्ठति। एकदारिष्टनेमिजिनागमेन गजकुमारो धर्ममाकर्ण्य तपो गृहीत्वा विहृत्योर्जयन्तोद्याने पादोपयानमरणमुररीकृत्य संन्यासेन स्थितः। पांसुलो लोहकीलैस्तं सर्वतः कीलयित्वा नष्टः। तां वेदनामगणयित्वा परमसमाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गतः।

व्याघ्री बनी, उसके तीन पुत्र भी हुए। उन दोनों मुनियों ने विहार करते हुए मौद्गिल्ल पर्वत पर चार महीने के उपवास के साथ योग धारण किया। योग समाप्त होने पर वे दोनों मुनिराज चर्या के लिए निकले। व्याघ्री ने उन्हें देख लिया इधर दोनों मुनिराजों ने तुरन्त संन्यास धारण कर लिया और खड़े हो गए। व्याघ्री ने क्रम से दोनों को खा लिया, जिससे वे सर्वार्थसिद्धि में उत्पन्न हुए। सुकौशल मुनि के हाथ के चिह्न को देखकर व्याघ्री को जातिस्मरण हुआ। हा हा! जिनधर्म को छोड़कर प्राणी संसार में परिभ्रमण करते हुए अपने पुत्र आदि को भी खा जाता है, इस प्रकार संसार की निन्दा करते हुए समाधिमरण से मरकर वह सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न हुई।

65. गजकुमार मुनि की कथा

अर्थ : गीले चमड़े के समान कीलें ठोककर जिनको जमीन के साथ एक कर दिया है, ऐसे भगवान् गजकुमार मुनि ने उत्तमार्थ रत्नत्रय को साध लिया।

कथा : द्वारावती नगरी के राजा वसुदेव थे। उनकी रानी गन्धर्व सेना थी। उनके एक पुत्र था गजकुमार। पोदनपुर के राजा अपराजित से वासुदेव की जीत नहीं हो पाती थी। तब वासुदेव ने घोषणा करवा दी कि जो अपराजित को बाँधकर ले आयेगा उसके लिए उसका मन चाहा वरदान दिया जायेगा। यह सुनकर गजकुमार ने पोदनपुर जाकर युद्ध में अपराजित को जीत लिया और बाँधकर ले आये तथा वासुदेव को सौंप दिया। जिससे अपनी इच्छानुसार प्रवृत्ति करने का वर माँगकर वह द्वारावती नगरी की स्त्रियों का सेवन करने लगा। ऐसा करते वह पांसुल सेठ की जो सुरपति नाम की स्त्री थी, उसमें आसक्त हो गया, जिससे पांसुल क्रोध के कारण हमेशा जलता रहता था। एक बार अरिष्ट नेमिनाथ भगवान् के आगमन से गजकुमार ने धर्म का श्रवण किया और दीक्षा ग्रहण कर ली। विहार करते हुए वे ऊर्जयन्त के एक बगीचे में पादोपयान मरण को धारण कर संन्यास से स्थित हो गए। तभी पांसुल लोहे की कीलों से उन्हें सब ओर से कीलित कर चला गया। उस उपसर्ग की वेदना को मन में न लाते हुए परम समाधि धारण कर मरण करके गजकुमार मुनि स्वर्ग को गए।

66. अरुचिद्धरेत्यादि ?

कच्छुजरखाससोसो भत्तच्छद्धच्छिकुच्छिदुक्खाणि।

अधियासियाणि सम्मं सणक्कुमारेण वाससयं॥ 1542॥

अस्य कथा – हस्तिनागपुरे राजा विश्वसेनो, राज्ञी सहदेवी, पुत्रः सनत्कुमारश्चतुर्थचक्रवर्ती। एकदा सौधर्मेन्द्रस्य सभायामीशानस्वर्गात्संगमनामो देवः समायातः। तत्तेजसा सभास्थितदेवानां तेजो लुप्तमादित्ये समुत्थिते तारकाणामिव। तैर्देवैरिन्द्रः पृष्टः– किं देवानामेवैवं तेजो रूपं च किंवा मनुष्याणामपि संभवतीति। कथितमिन्द्रेण। सनत्कुमारचक्रवर्तिनस्तेजोरूपे देवेभ्योऽप्यधिके। ततः कौतुकाद्ब्राह्मणवेषेणागत्य विजयवैजयन्तदेवाभ्यां प्रतीहारप्रवेशिताभ्यां सगन्धतैलाभ्यङ्गं कृत्वा पादविक्षेपं कुर्वतस्तस्य तेजोरूपे दृष्ट्वा भणितम् – भो चक्रवर्तिन्, यथाभूते सौधर्मेन्द्रेण व्यावर्णिते त्वदीये तेजोरूपे तथाभूते सत्ये। तच्छ्रुत्वा चक्रवर्तिनोक्तम् – किं दृष्टं भवद्भ्याम्। प्रतीक्षेथां दर्शयामि। ततः स्नात्वा मण्डनं भूषणं च गृहीत्वा सिंहासने स्थित्वा देवौ समाहूय दर्शितमात्मरूपम्। तं दृष्ट्वा देवाभ्यां भणितम् – प्रथमावलोकने संपूर्ण दृष्टं रूपादिकं तवेदानीं किंचिदूनं जातं जलपूर्णघटे गतबिन्दुमात्रमिव न लक्ष्यते। इत्युक्त्वा देवौ गतौ। देवकुमारपुत्राय राज्यं दत्वा सनत्कुमारो मुनिरभूत्। षष्ठाष्टमाद्युपवासान् कृत्वा कञ्जिकाहारादिना पारणकं कुर्वाणस्य कण्ड्वादयो रोगाः संजाताः। उग्रतपोऽनुतिष्ठतो जल्लोषध्यादय ऋद्धयो

---

66. सनत्कुमार चक्रवर्ती की कथा

अर्थ : कच्छु, ज्वर, खाँसी, श्वास, भस्मक, व्याधि, आँख के रोगों से होने वाली पीड़ा सनत्कुमार मुनि ने जो कि गृहस्थावस्था में चक्रवर्ती थे, सौ वर्ष तक संक्लेश परिणाम के बिना धारण की परन्तु रत्नत्रय का त्याग नहीं किया।

कथा : हस्तिनागपुर के राजा विश्वसेन थे। उनकी रानी सहदेवी थी। उनका पुत्र सनत्कुमार था, जो चौथा चक्रवर्ती था। एक बार सौधर्म इन्द्र की सभा में ईशान स्वर्ग से संगम नाम का देव आया। संगम देव के शरीर के तेज से सभा में बैठे देवों का तेज लुप्त-सा हो गया, जैसे सूर्य के उदित होने पर तारा समूह का हो जाता है। उन देवों ने इन्द्र से पूछा क्या ऐसा रूप देवों का ही होता है या मनुष्यों में भी संभव है। तब इन्द्र ने कहा सनत्कुमार चक्रवर्ती का तेज, रूप देवों से भी अधिक है। तब कौतुक से ब्राह्मण भेष धारणकर विजय और वैजयन्त देव पहरेदारों से प्रवेश पा लिया। चक्रवर्ती गन्धयुक्त तेल से मालिश करके पादविक्षेप (कसरत) कर रहे थे, तभी उनके तेजरूप को देखकर देवों ने कहा – हे चक्रवर्ती! जैसा सौधर्म इन्द्र ने आपके रूप का वर्णन किया था आपका तेज रूप बिल्कुल वैसा ही सत्य निकला। यह सुनकर चक्रवर्ती ने कहा अभी आप लोगों ने देखा ही क्या है? प्रतीक्षा करो अभी दिखाता हूँ। तब स्नान करके सज्जा कर आभूषण पहनकर सिंहासन पर बैठ गए और देवों को बुलाकर उनको अपना रूप दिखलाया। उसे देखकर देवों ने कहा पहली बार जो रूप देखा था, वह सम्पूर्ण था किन्तु अब आपका रूप सौन्दर्य आदि कुछ कम हुआ है। जैसे जल से भरे पूरे घड़े में से यदि एक बूँद निकाल ली जाय तो पता नहीं पड़ता उसी प्रकार आपको वही कमी नहीं दिख रही, ऐसा कहकर देव चले गए। देवकुमार पुत्र के लिए राज्य देकर सनत्कुमार मुनि हो गए। छह, आठ आदि उपवास करके कंजिका का आहार आदि करने से खाज-खुजली आदि रोग हो गए, किन्तु फिर भी उग्र तप करते रहने से उन्हें जल्लौषधि ऋद्धि प्राप्त हो गयी। एक बार फिर सौधर्म इन्द्र ने मुनियों के गुण का वर्णन किया। तो पुनः दो देव वैद्य का भेष बनाकर

जाताः। पुनः सौधर्मेण मुनिगुणव्यावर्णनं कुर्वता सनत्कुमारस्य शरीरनिःस्पृहत्वं व्यावर्णितम्। पुनस्तौ देवौ वैद्यरूपेणाटव्यां तत्समीपमायातौ व्याधीन् स्फेटयाम इति पुनः पुनर्भणन्तौ मुनिनाक्तो–मे संसारव्याधिं स्फेटयथः। अमी रोगाः मम करस्पर्शादेव नश्यन्ति। किमेभिर्नष्टैः। तथा प्रतीतिश्च कृता तयोः। संसारव्याधिं त्वमेव भगवन् स्फेटयितुं समर्थ इति भणित्वा प्रकटीभूय प्रशस्य च प्रणम्य च गतौ। कतिपयदिनैः स सनत्कुमारमुनिः कर्मनिर्जरां कृत्वा मोक्षं गतः॥

67. मध्ये गङ्गमित्यादि

णावाए णिब्बुडाए गंगामज्झे अमुज्झमाणमदी।
आराधणं पवण्णो कालगओ एणियापुत्तो ॥ 1543॥

अस्य कथा – पणीश्वरनगरे राजा प्रजापालः, श्रेष्ठी सागरदत्तः, श्रेष्ठिनी पणिका, तत्पुत्रः पणिको नामा। स वर्धमानस्वामिनं पृष्ट्वा निजायुः स्तोकं ज्ञात्वा तपोगृहीत्वैकविहारी जातः। गङ्गामुत्तरतस्तस्य नौर्बुड्डा। स च केवलज्ञानमुत्पाद्य निर्वाणं गतः।

68. अवमोदरेण तपसेत्यादि

ओमोदरिए घोराए भद्दबाहू असंकिलिट्ठमदी।
घोराए तिगिंछाए पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥1544॥

जंगल में उन मुनिराज के समीप आ पहुँचे और बार–बार कहते कि मैं रोगों को दूर कर देता हूँ। मुनिराज ने कहा– मेरी संसार की व्याधि का नाश कर दो। ये शारीरिक रोग तो मेरे हाथ के स्पर्श करने मात्र से दूर हो जायेंगे। इनके नष्ट होने से क्या होगा? तभी मुनिराज ने दोनों देवों को रोग ठीक करके दिखा दिया। देवों ने कहा – भगवन्! इस संसार की व्याधि को दूर करने में आप ही समर्थ हैं। इस प्रकार कहकर वह देव असली रूप में प्रकट हो गए और मुनिराज की प्रशंसा की तथा प्रणाम कर चले गए। कुछ दिनों बाद वह सनत्कुमार मुनि कर्म निर्जरा करके मोक्ष को प्राप्त हुए।

67. पणिक मुनि की कथा

अर्थ : एणिका पुत्र नाम के मुनिराज नाव में आरोहण कर गंगा के दूसरे किनारे पर जा रहे थे तब वह नाव गंगा में डूब गयी परन्तु मुनिराज की बुद्धि में जरा–सा भी मोह उत्पन्न नहीं हुआ और वे आराधना की प्राप्ति कर मोक्ष गए।

कथा : पणीश्वर नगर के राजा प्रजापाल थे। वहीं एक सेठजी सागरदत्त अपनी सेठानी पणिका के साथ रहते थे। उनके एक पुत्र था जिसका नाम पणिक था। एक बार वह पणिक वर्धमान स्वामी को पूछकर अपनी आयु की अल्पता का ज्ञान कर दीक्षा ग्रहण कर एकल विहारी हो गए। गंगा पार जाते हुए, वे जिस नाव में बैठे थे, वह डूब गयी किन्तु पणिक मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष चले गए।

68. अवमौदर्य तप में प्रसिद्ध भद्रबाहु मुनि

अर्थ : घोर अवमौदर्य तप करने वाले भद्रबाहु मुनि तीव्र भूख से पीड़ित होने पर भी संक्लेश परिणाम के वश नहीं हुए और उन्होंने रत्नत्रय को प्राप्त कर लिया।

अस्य कथा- पुण्ड्रवर्धनदेशे कोटीनगरे राजा परथः, पुरोहितः सोमशर्मा, भार्या श्रीदेवी, पुत्रो भद्रबाहुः। मौञ्जीबन्धे कृते बहुब्रह्मचारिभिः सह बहिः क्रीडता तेनैकदिवसोपरि क्रमेण त्रयोदश वट्टा वृताः। वर्धमानस्वामिनि मोक्षं गते पञ्चानां चतुर्दशपूर्वधारिणां मध्ये यश्चतुर्थश्चतुर्दशपूर्वधरो गोवर्धननामा मुनिस्तेनोर्जयन्ते वन्दनार्थं गच्छता तद्वट्टविज्ञानमालोक्योक्तम्। पश्चिमपञ्चचतुर्दशपूर्वधरोऽयं भद्रबाहुः श्रुतकेवली भविष्यतीत्युक्त्वा पितृहस्तान्नीत्वा सर्वशास्त्राणि पाठयित्वा गृहं प्रेषितः। पुनरागत्य कुमारोऽपि गोवर्धनमुनिसमीपे मुनिर्भूत्वा चतुर्दशपूर्वाणि पठित्वा संघधरो भूत्वा गोवर्धनगुरौ देवलोकं गते संघेन सह विहरन्नुज्जयिन्यामागतः चर्यायां प्रविष्टो खोल्लिकायां स्थितेनाव्यक्तबालेन भणितः-भगवन् मठं गच्छ। तच्छ्रुत्वा द्वादशवर्षानावृष्टिर्दुर्भिक्षं भविष्यतीति ज्ञात्वालाभेन गतः। अपराह्णे सकलमुनीनां कथितम्- अत्र देशे द्वादशवर्षाणि दुर्भिक्षं भविष्यति। स्वल्पायुरहमत्र तिष्ठामि। यूयं दक्षिणापथं गच्छत । इत्युक्त्वा स्वशिष्यो दशपूर्वधरो विशाखाचार्यः स सर्वसंघेन सह दक्षिणापथे प्रेषितः। तत्रत्यश्चन्द्रगुप्तो राजा गुरुवियोगमसहमानो भद्रबाहुसमीपे मुनिरभूत्। तीव्रबुभुक्षातृष्णाश्चानुभूयोज्जयिन्यां भद्रबाहुर्भगवान भद्रवरसमीपे संन्यासात्स्वर्गं गतः।

69. कौशाम्ब्यां ललितघटेत्यादि

कोसंबीललियघडा वूढा णइपूरएण जलमज्झे।
आराधणं पवण्णा पाओवगदा अमूढमदी ॥1545॥

कथा : पुण्ड्रवर्धन देश के कोटी नगर में राजा परथ थे। उनके पुरोहित का नाम सोमशर्मा था। सोमशर्मा की स्त्री श्रीदेवी थी, उनके एक पुत्र था भद्रबाहु। भद्रबाहु का मौञ्जी बन्ध हो चुका था। एक दिन बहुत से ब्रह्मचारियों के साथ भद्रबाहु बाहर खेल रहे थे कि उन्होंने एक के ऊपर एक क्रम से तेरह गोली रख दी। श्री वर्धमान स्वामी के मोक्ष चले जाने के बाद पाँच चौदह पूर्वधारियों के बीच जो चौथे चौदह पूर्व के धारी थे, वे गोवर्धन नाम के मुनिराज थे। वह ऊर्जयन्त की वन्दना को जा रहे थे तभी उन्होंने भद्रबाहु के गोली रखने की कला को देखा और कहा कि पाँच वे अन्तिम चौदहपूर्व धारी यह भद्रबाहु श्रुत केवली होंगे और पिता के हाथों से उन्हें ले गए। भद्रबाहु को सर्व शास्त्रों का अध्ययन कराके घर भेज दिया। पुनः घर आकर के भी भद्रबाहु बालक होते हुए भी गोवर्धन मुनि के पास जाकर मुनि हो गए। बाद में चौदह पूर्वों को पढ़कर वह संघधर हुए। गोवर्धन गुरु के देवलोक चले जाने पर संघ के साथ विहार करते हुए वह उज्जयिनी में आये। जब वह नगर में चर्या के लिए निकले तो झूले में झूलते हुए एक बालक ने जो कि ठीक से अभी बोलना नहीं जानता था, उसने कहा - भगवन्! मठ को चले जाओ। यह सुनकर भद्रबाहु स्वामी ने जान लिया कि अब बारह वर्ष तक सूखा और दुर्भिक्ष होगा, और अलाभ करके चले गए। अपराह्न में सभी मुनिराजों को कहा कि इस देश में बारह वर्ष का दुर्भिक्ष होगा। मैं अब अल्पायु वाला हूँ इसलिए यहीं रहूँगा। आप सब लोग दक्षिण दिशा की ओर चले जाओ। यह कहकर अपने शिष्य दशपूर्व के धारी विशाखाचार्य के साथ सकल संघ को दक्षिण की ओर भेज दिया। वहीं के राजा चन्द्रगुप्त थे। गुरु का वियोग सहन न होने से राजा चन्द्रगुप्त भद्रबाहु स्वामी के पास मुनि हो गए। तीव्र भूख-प्यास आदि को सहन कर उज्जयिनी में भद्रबाहु भगवान् भद्रवर के निकट संन्यास धारण कर स्वर्ग को चले गए।

69. उपसर्गविजयता

अर्थ : कौशाम्बी नगरी में ललित घट नाम के मुनियों का समुदाय नदी के प्रवाह से बह गया तो भी संक्लेश परिणाम के वशीभूत वह नहीं हुआ।

अस्याः कथा – कौशाम्बीनगर्यामिन्द्रदत्तादयो द्वात्रिंशदिभ्यास्तेषां समुद्रदत्तादयो द्वात्रिंशत्पुत्राः परस्परं मित्रत्वमागताः। सम्यग्दृष्टयः केवलीसमीपे ऽतिस्वल्पं निजजीवितं ज्ञात्वा तपो गृहीत्वा ते समुद्रदत्तादयो यमुनातीरे पादोपयानमरणेन स्थिताः। अतिवृष्टौ जातायां जलप्रवाहेण यमुनाद्रहे पातिताः। परमसमाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गताः।

70. कृतमासक्षपणविधिरित्यादि

चंपाए मासखमणं करित्तु गंगातडम्मि तण्हाए।
घोराए धम्मघोसो पडिवण्णो उत्तमं ठाणं ॥1546॥

अस्य कथा – चम्पायां मासोपवासं कृत्वा धर्मघोषो मुनिरुद्भगमुनेर्गोष्ठे पारणकं कृत्वा चलितः। मार्गे नष्टे हरितकायोपरि गमनमकुर्वन् तृषापीडितो गङ्गातटे वटवृक्षतले विश्रान्तः। तं दृष्ट्वा गङ्गादेव्या प्रासुकजलभृतं कलशं गृहीत्वा आगत्य प्रणम्योक्तम् भगवन् पानीयं पिबेति। तेनोक्तम्- न कल्पते। ततो गङ्गादेवतया पूर्वविदेहं गत्वा केवलज्ञानी पूर्ववृत्तान्तं कथयित्वा पृष्टः। केन कारणेन पानीयं न पीतम्। तेन मुनिना कथितं केवलिनां। देवहस्तेनाहारो न कल्पते मुनीनाम्। ततः शीघ्रमागत्य सुगन्धशीतलगन्धोदकवृष्टौ कृतायां केवलज्ञानमुत्पाद्य धर्मघोषमुनिर्मोक्षं गतः।

कथा : कौशाम्बी नगरी में इन्द्रदत्त आदि बत्तीस सेठ रहते थे। उनके समुद्रदत्त आदि बत्तीस पुत्र थे। उनमें परस्पर मित्र भाव था। वह सभी सम्यग्दृष्टि थे। एक बार सब मिलकर केवली भगवान् के पास गए उन्होंने अपना जीवन थोड़ा जानकर दीक्षा ग्रहण कर ली। वह समुद्रदत्त आदि सभी यमुना के किनारे पादोपयान मरण धारण कर बैठे थे। तभी अतिवृष्टि होने से जल प्रवाह के कारण यमुना नदी ने उन्हें अपने में समेट लिया। वे सब परमसमाधि के द्वारा मरण कर स्वर्ग चले गए।

70. धर्मघोषमुनि की निर्दोष चर्या का प्रभाव

अर्थ : चम्पानगरी में एक महिना के उपवास करके गंगानदी के किनारे पर तीव्र प्यास से पीड़ित होने पर भी धर्मघोष मुनिराज ने असंक्लिष्ट परिणामों से उत्तमार्थ प्राप्त कर लिया।

कथा : चम्पानगरी में मासोपवास करके धर्मघोष मुनि, उद्भग मुनि के व्रज (समूह) में पारणा करके चल दिए। मार्ग भूल जाने पर भी हरित काय के ऊपर गमन नहीं किया और प्यास से पीड़ित हो गए तो गंगा के किनारे एक वट वृक्ष के नीचे थककर बैठ गए। उन्हें इस प्रकार प्यासा जान गंगा देवी प्रासुक जल से भरा हुआ कलश लेकर उनके पास आयी और प्रणाम कर कहा – भगवन्! यह पानी पीजिए। तब मुनिराज ने कहा हमारे लिए यह पानी पीना योग्य नहीं। तब गंगा देवी ने पूर्व विदेह में जाकर केवल ज्ञानी को पूर्व कथा कहकर पूछा – किस कारण से मुनि ने पानी नहीं पिया तब केवली भगवान् ने कहा – देवों के हाथ का आहार मुनि लोग नहीं लेते तब शीघ्र आकर देवी ने सुगन्ध शीतल गन्धोदक वृष्टि कर दी और धर्मघोष मुनि केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष चले गए।

71. चिरवैरसुरविनिर्मितेत्यादि

सीदेण पुव्ववइरियदेवेण विकुव्विएण घोरेण।

संतत्तो सिद्धिदिण्णो पडिवण्णो उत्तमं अत्थं ॥1547॥

अस्य कथा – इलावर्धननगरे राजा जितशत्रुर्भार्या इला, पुत्रः श्रीदत्तः। अयोध्यायामंशुमतो राज्ञः पुत्रीमंशुमतीं स्वयंवरे परिणीतवान्। अंशुमत्याः सहैकः शुकः समायातः। स श्रीदत्तांशुमत्योर्द्यूते रममाणयोः श्रीदत्तजये[1] एकां रेखां ददाति। अंशुमतीजये द्वे रेखे ददाति। ततः श्रीदत्तेन कोपाद् ग्रीवायां चम्पितो मृतो व्यन्तरदेवो जातः। श्रीदत्तोऽप्येकदा प्रासादस्थो मेघविनाशमालोक्य वैराग्यान्मुनिर्भूत्वा विहरन्नेकाकी निजनगरमायातः। शीतकाले बहिःकायोत्सर्गेण स्थितः। तेन व्यन्तरदेवेन घोरशीतवातौ कृत्वा शीतलजलेन सिक्तः परमसमाधिना निर्वाणं गतः॥

72. उष्णमित्यादि

उण्हं वादं उण्हं सिलादलं आदवं च अदिउण्हं।

सहिदूण उसहसेणो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1547॥

अस्य कथा – उज्जयिन्यां राजा प्रद्योत एकदा गजधरणार्थमटव्यां गतो मत्तगजारूढः। तेन च वनगजेन दूरमटवीं प्रवेशितः। वृक्षशाखामवलम्ब्यावतीर्णो व्याघुट्यैकाकी खेटग्रामे कूपतटे समुपविष्टः। ग्रामकूटजिनपालः

---

71. श्री दत्त मुनि की शीत परीषह विजयता

अर्थ : पूर्व जन्म के वैरी किसी देव ने शीत जलवृष्टि व शीत हवा उत्पन्न कर श्रीदत्त नामक मुनि को घोर दुःख दिया था तो भी वे मुनीश्वर उत्तमार्थ को प्राप्त कर गए।

कथा : इलावर्धन नगर के राजा जितशत्रु थे। जिनकी पत्नी इला थी और पुत्र श्रीदत्त। अयोध्या के राजा अंशुमान की पुत्री अंशुमती को श्रीदत्त ने स्वयंवर में ब्याह लिया। अंशुमती के साथ एक तोता भी आया था। जब श्रीदत्त और अंशुमती द्यूत क्रीड़ा करते तो वह तोता श्रीदत्त के जीतने पर एक रेखा खींच देता किन्तु अंशुमती के जीतने पर वह दो रेखा खींचता। जिससे एक बार श्रीदत्त ने क्रोध में आकर उस तोते की गर्दन मरोड़ दी, तोता मरकर व्यन्तर देव हुआ। एक बार श्रीदत्त अपने महल के ऊपर खड़े थे कि उन्होंने मेघ (बादल) को मिटते हुए देखा। वैराग्य हो जाने से वह मुनि हो गए और विहार करते हुए अपने नगर में आये। शीतकाल में वह बाहर कायोत्सर्ग से खड़े थे। तब उसी व्यन्तर देव ने घोर ठंडी हवा चला दी और शीतल जल की बूँदें भी छिड़की किन्तु मुनिराज ने परम समाधि में लीन होकर निर्वाण को प्राप्त किया।

72. वृषभसेन मुनि की उष्ण परीषह विजयता

अर्थ : अतिशय उष्ण वायु, अग्नि से गरम किया हुआ पर्वत का शिलातल और सूर्य संताप इन तापत्रय से पीड़ित होने पर भी वृषभसेन ने यह सब सह लिया तथा उत्तमार्थ को प्राप्त किया।

कथा : उज्जयिनी नगरी के राजा प्रद्योत एक बार हाथी को पकड़ने के लिए जंगल को चले किन्तु वे मदमस्त हाथी पर आरूढ़ थे। उस वनचर हाथी ने राजा को दूर जंगल में प्रवेश करा दिया। तब एक वृक्ष की डाली

1. जयेऽसि एकां

तस्य पुत्री जिनदत्ता पानीयं भर्तुमायाता। तेन जलं पातुं याचिता महापुरुषं ज्ञात्वा जलं पाययित्वा तया पितुः कथितम्। तेन गत्वानीय स्नानभोजनादौ कारिते भृत्यलोकाः मिलिताः। जिनदत्ता राज्ञा परिणीता वल्लभा पट्टराज्ञी जाता। कतिपयदिनैर्यस्यां रात्रौ तस्याः पुत्रोत्पत्तिर्जाता तस्यां रात्रौ राज्ञा स्वप्ने वृषभो दृष्टः। ततस्तस्य वृषभसेन इति नाम कृतम्। एवमष्टवर्षेषु गतेषु राज्ञा तपो गृहीतुकामेन पुत्र, राज्यं प्रतिपालय अहं परलोकं साधयामीत्युक्तम्। तेनोक्तम् - राज्यं कुर्वता किं परलोकसिद्धिर्न भवति। पुत्र, न भवति तपःसाध्यत्वात्परलोकस्य। यद्येवं तात, ममापि राज्यकरणे निवृत्तिरस्ति। ततो भ्रातृव्यस्य राज्यं दत्वा द्वावपि मुनी जातौ। वृषभसेन एकाकी विहरन् कौशाम्बीपुरीसमीपे हतवातपर्वतशिलायां ज्येष्ठमासे नित्यमातापनं ददाति। सर्वे लोका जिनधर्मेऽतीव रता जाताः। तत ईर्ष्यावशाद् बुद्धदासोपासकेनाग्निवर्णा शिला कृता। चर्यां कृत्वा आगत्य मुनिना शिलामालोक्य संन्यासं गृहीत्वा तत्रातापनस्थिते केवलज्ञानमुत्पादितम्।

73. क्रौञ्चेनेत्यादि

रोहेडयम्मि सत्तीए हओ कोंचेण अग्गिदइदो वि।

तं वेदणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1549॥

अस्य कथा - कार्तिकपुरे राजाग्निर्भार्या वीरमतिः, पुत्री कृत्तिका। एकदा नन्दीश्वराष्टम्यामुपवासं

को पकड़कर उतर आये और वापस लौटने लगे। अकेले चलते-चलते खेट गाँव में पहुँचे और एक कुँए के पास बैठ गए। उस गाँव का मुखिया जिनपाल था, उसकी पुत्री जिनदत्ता पानी भरने के लिए कुँए पर आयी। जल पीने की याचना करने वाले को महापुरुष जानकर उस पुत्री ने पिता को कहा। जिनपाल जाकर उनको ले आये और स्नान भोजन आदि कराया। बाद में राजा के सेवक लोग भी मिल गए। जिनदत्ता राजा से ब्याही गयी और वह राजा की प्रिय पट्टरानी बनी। कुछ दिनों बाद जिस रात्रि में पुत्र की उत्पत्ति होनी थी, उसी रात्रि में राजा को स्वप्न में एक बैल दिखा। जिससे राजा ने पुत्र का नाम वृषभसेन रखा। इस प्रकार आठ वर्ष बीत जाने पर राजा ने दीक्षा लेने की इच्छा से कहा पुत्र! तुम राज्य का प्रतिपालन करो और मैं अब परलोक (मोक्ष)की साधना करूँगा। पुत्र ने कहा क्या राज्य करते हुए परलोक की सिद्धि नहीं होती? नहीं होती बेटा! तप करने से ही परलोक की प्राप्ति होती है। हे तात्! यदि ऐसा है तो मेरी भी राज्य के कार्य से निवृत्ति है। तब भतीजे को राज्य देकर दोनों ही मुनि हो गए। वृषभसेन एकाकी विहार करते हुए कौशाम्बी पुरी के निकट हतवात पर्वत (गर्म पर्वत) की शिला पर ज्येष्ठ मास में रोजाना आतापन योग करते। जिससे सभी लोगों की जिनधर्म में अत्यन्त श्रद्धा हो गयी। तब ईर्ष्या वश बुद्धदास उपासक ने शिला को अग्नि मय कर दिया। चर्या करके मुनिराज जब आये तो उन्होंने शिला को तप्त देखकर संन्यास ग्रहण कर लिया और आतापन योग में स्थित हो केवलज्ञान प्राप्त कर लिया।

73. कार्तिकेय मुनि की कथा

अर्थ : रोहेड नगर में क्रौंच राजा ने अग्नि राजा के पुत्र कार्तिकेय को शक्ति नामक शस्त्र से मारा था तब मुनिराज ने उस दुःख को सहनकर रत्नत्रय की प्राप्ति की।

कथा : कार्तिकपुर के राजा अग्नि थे। उनकी स्त्री वीरमति थी। उन दोनों के एक पुत्री थी कृत्तिका। एक

कृत्वा जिनपूजां विधाय पितृर्देवशेषां दत्वा गच्छन्त्यास्तस्या रूपं दृष्ट्वाऽग्निराजेनासक्तेन सर्वलिङ्गिनो द्विजा व्यवहारिणश्च पृष्टाः। मम गृहे रत्नमुत्पन्नं कस्य तद्भवति। सर्वैर्भणितम्- तवैव भवति। मुनिभिरुक्तम्-कन्यारत्नं वर्जयित्वान्यत्तव भवति। ततोऽनिष्टांस्तान्देशान्निर्धाट्य कृत्तिका परिणीता। कतिपयदिनैः कार्तिकेयः पुत्रो वीरमती पुत्री च तस्या जाता। रोहेडनगरे क्रौञ्चेन राज्ञा सा परिणीता। कार्तिकेयस्य नमिप्रभृतिकुमारैः सह क्रीडां कुर्वतश्चतुर्दशवर्षाणि गतानि। सर्वकुमाराणां मातामहप्रेषितवस्त्राभरणान्यालोक्य तेन माता पृष्टा- को मे मातामहः, किं न किमपि प्रेषयति। कथितं तयाश्रुपातं कुर्वत्या। मम तवाप्येक एव पिता। पुनः पृष्टं तेन अयं किं केनापि न निषिद्धो राज्ञा। कथितं तया - मुनिभिर्निषिद्धः। ते च देशान्निर्द्धाटिताः। पुनः पृष्टम्-कीदृशास्ते, क्व तिष्ठन्ति। निर्ग्रन्थाः पिच्छकमण्डलुधारिणः परदेशेषु तिष्ठन्ति। इत्याकर्ण्य निर्गतो मुनीनालोक्य मुनिर्भूतः। माता तदार्तेन मृत्वा व्यन्तरदेवी जाता। कार्तिकेय मुनिर्विहरन् रोहेडनगरे ज्येष्ठामावास्यायां चर्यायां प्रविष्टो वीरमतिभगिनी प्रासादोपरिमभूमिस्था मम भ्रातेति परिज्ञायोत्संगस्थं भर्तुः शीर्षं परित्यज्य शीघ्रं गत्वा तत्पादयोर्लग्ना। क्रौञ्चेन तां तथा दृष्ट्वा संजातकोपेन मुनिः शक्त्या हतो मूर्च्छितो जननीचरव्यन्तरदेव्या मयूररूपेण शीतलस्वामिगृहे धृतः। समाधिना कालं कृत्वा स्वर्गं गतः। देवैः पूजा कृता। ततः स्वामिकार्तिकेय इति तीर्थं जातम्। वीरमतीसंबन्धेन भाउआइका [?] पर्व संजाता।

बार कृत्तिका ने नन्दीश्वर की अष्टमी में उपवास किया। बाद में जिनपूजा करके पिता को देवशेषा देकर चली गयी। उसके रूप को देखकर अग्निराजा ने सभी धर्म वालों को, ब्राह्मणों को और व्यवहारियों को पूछा, मेरे घर में रत्न उत्पन्न हुआ है। बताओ वह किसका होगा? सभी ने कहा राजन्! आपका ही होगा, किन्तु मुनिराजों ने कहा कन्या रत्न को छोड़कर अन्य सभी आपके होंगे। जिससे उन मुनियों को अपने अनिष्ट समझ राजा ने उन्हें देश से निकाल दिया और कृत्तिका से विवाह कर लिया। कुछ दिनों बाद उनके कार्तिकेय नाम का पुत्र हुआ और पुत्री वीरमती हुई। रोहेड नगर के क्रौञ्च राजा से वीरमती का विवाह हुआ। कार्तिकेय को नमि आदि कुमारों के साथ खेलते हुए चौदह वर्ष बीत गए। सभी कुमारों के लिए नाना के यहाँ से वस्त्र, आभूषण आदि आये जिसे देखकर कार्तिकेय ने माता को पूछा - मेरे नाना कौन हैं? वह मेरे लिए कुछ क्यों नहीं भेजते हैं? तब माता ने आँसू बहाते हुए कहा मेरा और तेरा पिता एक ही है। पुनः कार्तिकेय ने पूछा क्या किसी भी राजा ने इसके लिए रोका नहीं? माँ ने कहा - मुनियों ने रोका था। जिससे उनको देश से निकाल दिया। कार्तिकेय ने पूछा - वे मुनि कैसे होते हैं, कहाँ रहते हैं। बेटा! वे निर्ग्रन्थ होते हैं, पिच्छी कमण्डलु को धारण करने वाले होते हैं और परदेश में रहते हैं। यह सुनकर कार्तिकेय घर से निकल गया और मुनियों के दर्शन कर मुनि हो गया। माता कार्तिकेय के वियोग में रोती हुई दुःख पूर्वक मरी और व्यन्तरी देवी हुई। कार्तिकेय मुनि विहार करते हुए रोहेड नगर में ज्येष्ठ मास की अमावस्या में चर्या के लिए निकले। वीरमती बहिन ने जो कि महल के ऊपर बैठी थी उन्हें देखकर जान लिया कि ये मेरे भाई हैं, तभी अपने स्वामी का सिर गोद से उठाकर शीघ्र गयी और उनके पैरों से लग गयी। राजा क्रौञ्च ने उसको इस प्रकार करते देखा तो उसे बहुत क्रोध आया और मुनि को अपनी शक्ति से इतना मारा कि वे मूर्च्छित हो गए। उनकी माँ जो कि व्यन्तर देवी हुई थी, उसने मयूर का रूप बना शीतलनाथ भगवान् के मन्दिर में उन्हें लाकर रख दिया। मुनिराज समाधि पूर्वक आयु पूर्ण कर स्वर्ग चले गए। देवों ने उनकी पूजा की जिससे वह स्थान कार्तिकेय तीर्थ के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वीरमती के कारण भाउ आइका (भाई दूज) पर्व प्रसिद्ध हुआ।

74. यतिरभयघोषनामेत्यादि

काइंदि अभयघोसो वि चंडवेगेण छिण्णसव्वंगो।

तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1550॥

अस्य कथा – काकन्दीनामनगर्यां राजा अभयघोषो राज्ञी अभयमतिः। एकदा बहिर्गतेन राज्ञा चतुःपादेषु बद्ध्वा जीवन्तं कच्छपं स्कन्धे यष्टयावलम्ब्यागच्छन् धीवरो दृष्टः। राज्ञा चक्रेण कच्छपस्य चत्वारः पादाः छिन्नाः। कच्छपोऽतिदुःखेन मृत्वा तस्यैव राज्ञः पुत्रश्चण्डवेगनामा जातः। एकदा चन्द्रग्रहणमालोक्याभय-घोषश्चण्डवेगाय राज्यं दत्वा मुनिर्भूत्वैकाकी विहृत्य काकन्द्यामुद्याने वीरासेनेन स्थितः। पूर्ववैराच्चण्डवेगेन चक्रेण हस्तौ पादौ च छिन्नौ। परसमाधिना केवलज्ञानमुत्पाद्य मुनिर्मोक्षं गतः।

75. दंशरपीत्यादि

दंसेहिं य मसएहि य खज्जंतो वेदणं परं घोरं।

विज्जुच्चरो धियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1551॥

अस्य कथा – मिथिलानगर्यां राजा वामरथः, तलारो यमदण्डः, चोरो विद्युच्चरनामा नानाविज्ञानोपेतः। दिवसे शून्यदेवकुले शूनहस्तपादकुष्ठी रङ्को भूत्वा तिष्ठति। रात्रौ चोरिकायां भोगानुभवनं च दिवि दिव्यरूपेण

---

74. अभयघोष मुनि की कथा

अर्थ : काकंदी नामक नगर में चंडवेग नामक दुष्ट राजपुत्र ने अभयघोष मुनि के सर्व अंगों को छेद डाला था तो भी वे तीव्र वेदना सहकर उत्तमार्थ की प्राप्ति कर गए।

कथा : काकन्दी नगरी के राजा अभयघोष थे। उनकी रानी अभयमति थी। एक बार राजा बाहर जा रहे थे कि उन्हें एक धीवर दिखा जो एक जीवित कछुए के चारों पैर बाँधकर उसे एक लकड़ी में लटकाये हुए कँधे पै रखकर ले जा रहा था। राजा ने चक्र से कछुए के चारों पैर छिन्न भिन्न कर दिये। कछुआ अति कष्ट से मरणकर उसी राजा के चण्डवेग नाम का पुत्र हुआ। एक बार चन्द्रग्रहण को देख अभयघोष, चण्डवेग को राज्य देकर मुनि हो गए। एकाकी विहार करते हुए काकन्दी के एक बगीचे में वीरासन से स्थित हो गए। पूर्व वैर के कारण चण्डवेग ने चक्र से उनके हाथ पैरों को काट दिया किन्तु अभयघोष मुनि परम समाधि पूर्वक केवलज्ञान को प्राप्त कर मोक्ष को चले गए।

75. विद्युच्चर मुनि की दंशमशक परीषह विजयता

अर्थ : दंश और मशकों से भक्षण किया गया विद्युच्चर नामक मुनि तीव्र वेदनाओं को सहकर रत्नत्रय आराधना को प्राप्त हुआ।

कथा : मिथिला नगरी के राजा वामरथ थे, उनका कोतवाल यमदण्ड था। वहीं एक विद्युच्चर नाम का चोर रहता था। जो बहुत प्रकार की चोरी की कला में निपुण था। वह दिन में तो एक सुनसान मन्दिर में सूजे हाथ पैरों में कोढ़ बनाकर गरीब बना बैठा रहता और रात्रि में चोरी करता और भोग भोगता तथा स्वर्ग में हो ऐसा दिव्य

करोति। एकदा वामरथराजस्य हारस्तेन हृतः। प्राते [ता] राज्ञा यमदण्डो भणितः। रात्रौ दिव्यरूपेण चोरेण मां मोहयित्वा हारो नीतः। तं हारं सप्तरात्रेणानयान्यथा तव निग्रहं करिष्यामीति। सप्तमदिने ऽनाथशालायाः स कुष्ठी धृत्वा तलारेण राजाग्रे नीतः। चौरोऽयमिति भणितम्। तेनोक्तम्- नाहं चौरः। तलारेणोक्तम्। देवायमेव चौरः। ततो लोकैरुक्तम्। देव तलारश्चौरमप्राप्नुवन् रङ्कं पर्यटकं मारयति। तलारेण निजगृहं नीत्वा माघमासे रात्रौ सेचनबाधनताड़नदाहनादिद्वात्रिंशत्कदर्थनाभिः कदर्थितः। तथापि नाहं चौर इति वदति। प्रभाते राजाग्रे नीत्वा तलारेणोक्तम्-देव चौरो ऽयमिति। चौरेणोक्तम् - नाहं चौर इति। अभयप्रदानं दत्वा राज्ञा स भणितः। किं त्वं चौरो न वा। ततस्तेनोक्तम्-चौरोऽहम्। पुनः पृष्टं राज्ञा-कथं त्वया द्वात्रिंशत्कदर्थनाः दुःसहाः सोढाः। कथितं तेन-मया मुनिपार्श्वे नरकदुःखं श्रुतम्। तस्मात्कोटिभागमिदं न भवतीति संचिन्त्य सोढं दुःखम्। तुष्टेन राज्ञा वरं प्रार्थयेत्युक्तः। भणितं तेनास्य तलारस्य मम मित्रस्याभयप्रदानं दीयताम्। राज्ञा पृष्टम्-कथं तव मित्रमेषः। स कथयति। दक्षिणापथेऽभीरदेशे वेनानदीतीरे वेनातटनगरे राजा जिनशत्रुर्भार्या जयावती तत्पुत्रोऽहं विद्युच्चौरः। तत्र तलारो यमपाशो, भार्या यमुना, तत्पुत्रोऽयं यमदण्डः। एकोपाध्यायपार्श्वे मया चौरशास्त्रं शिक्षितमनेन च तलारशास्त्रम्। द्वाभ्यां प्रतिज्ञा कृता। मयोक्तम् - यत्र त्वं तलारस्तत्रावश्यं मया चोरिका कर्तव्या। अनेन चोक्तम्- यत्र त्वं चौरस्तत्रावश्यं मया रक्षितव्यम्। एकदा राजा मम निजपदं समर्प्य मुनिर्जातः। तलारोऽप्यस्य निजपदं समर्प्य मुनिर्जातः। मदीयभयादागत्य तवायं तलारो जातः। अमुं गवेषयितुमत्रागत्याहं प्रतिज्ञावशाच्चौरो जातः।

रूप बनाकर रहता था। एक बार विद्युच्चर ने वामरथ राजा का हार चुरा लिया। सुबह राजा ने यम दण्ड को कहा रात्रि में दिव्य रूप बनाकर चोर ने मुझे मोहित कर लिया और हार ले गया। उस हार को सात रात के अन्दर लाना है। अन्यथा तुम्हें दण्ड दिया जायेगा। सातवें दिन अनाथशाला से उस कोढ़ी को लाकर कोतवाल ने राजा को सौंप दिया और कहा कि यह चोर है। उसने कहा मैं चोर नहीं हूँ। कोतवाल ने कहा - प्रभो! यह ही चोर है। तब लोगों ने कहा प्रभो! कोतवाल को चोर नहीं मिला, जिससे इस बेचारे घूमने-फिरने वाले को मरवाना चाहता है। कोतवाल उसे अपने घर ले गया और माघ के महीने में रात्रि में पानी से सेचन, बाँधना, ताड़ना, दाह पैदाकर आदि बत्तीसों प्रकार के कष्टों से उसे पीड़ित किया फिर भी वह कहता कि मैं चोर नहीं हूँ। सुबह राजा के पास ले जाकर कोतवाल ने कहा - प्रभो! चोर यही है, पर चोर कहता कि मैं चोर नहीं हूँ। तब राजा ने उसे अभयदान दिया और कहा अब बताओ कि तुम चोर हो या नहीं तब उसने कह दिया कि मैं चोर हूँ। पुनः राजा ने पूछा कि तुमने फिर बत्तीसों दुःसह पीड़ाओं को कैसे सह लिया? उसने कहा मैंने मुनि के पास में नरकों के दुःख सुने थे। उन दुःखों का यह करोड़वाँ भाग भी नहीं है, ऐसा चिन्तन कर मैं यह दुःख सहता रहा। राजा उसकी यह बात सुनकर संतुष्ट हुआ और कहा कुछ भी वर माँग लो। तब उसने कहा - इस मेरे मित्र कोतवाल को अभयदान दीजिए। राजा ने पूछा - यह तुम्हारा मित्र कैसे हुआ? तब विद्युच्चर ने कहा - दक्षिण दिशा में अभीर देश की वेणा नदी के तट पर एक वेनातट नगर है जहाँ राजा जिनशत्रु हैं, उनकी पत्नी जयावती है। उनका पुत्र मैं विद्युतचोर हूँ। वहाँ एक कोतवाल यमपाश है। उनकी पत्नी यमुना उनका पुत्र यह यमदण्ड कोतवाल है। एक उपाध्याय के पास मैंने चौर शास्त्र सीखा और इसने कोतवाल शास्त्र को। दोनों ने प्रतिज्ञा की। मैंने कहा जहाँ तुम कोतवाली करोगे वहाँ मैं अवश्य चोरी करूँगा और इन्होंने भी कहा - जहाँ तुम चोरी करोगे वहाँ मैं अवश्य ही रक्षा करूँगा। एक बार राजा मुझे अपना पद देकर मुनि हो गए और कोतवाल भी अपना पद इनको देकर मुनि हो गए। मेरे भय से आकर आपके यहाँ यह कोतवाल हुए। इनको ढूँढते हुए मैं भी यहीं आकर प्रतिज्ञा वश चोर हुआ। नगर के धन चुराने से

पत्तनद्रव्यं हारपर्यन्तं सर्वं कथयित्वा पञ्चशतमुनिभिः सह विहरन् तामलिप्तपत्तनं गतः। पत्तनप्रवेशे स चामुण्डया आगत्य वारितः–भगवन्मम पूजा यावत्समाप्यते तावत्पत्तनं मा प्रविश त्वम्। शिष्यैः प्रेरितस्तत्र प्रविश्य पश्चिमदिशि प्राकारसमीपे रात्रौ प्रतिमायोगेन स्थितः। चामुण्डया कपोतप्रमाणदंशमशकैस्तस्योपसर्गः कृतः। विद्युच्चरमुनिस्त-मुपसर्गमनुभूय मोक्षं गतः।

76. हस्तिनागपुरगुरुदत्त इत्यादि

हत्थिणपुरगुरुदत्तो संबलिथाली व दोणिमंतम्मि।
उज्झंतो अधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1552॥

अस्य कथा – हस्तिनागपुरे राजा विजयदत्तो, राज्ञी विजया, पुत्रो गुरुदत्तः। तस्मै राज्यं दत्वा विजयदत्तो मुनिरभूत्। लाटदेशे द्रोणीपर्वतसमीपे चन्द्रपुरीनगर्यां राजा चन्द्रकीर्तिर्भार्या चन्द्रलेखा, पुत्री अभयमतिः गुरुदत्तेन परिणेतुं याचिता न दत्ता। कोपाद् गुरुदत्तेन गत्वा चन्द्रपुरी वेष्टिता। अभयमत्या वार्तामाकर्ण्य जातानुरागया चन्द्रकीर्तिर्भणितः– तात मां गुरुदत्ताय देहि। ततो दत्ता गुरुदत्तस्य। लोकैः कथितम्–द्रोणीमतिपर्वते व्याघ्रस्तिष्ठति। तेन समस्तो देश उद्वासितः। तच्छ्रुत्वा सर्वजनेन सह गत्वा वेष्टितो व्याघ्रः। स च गुहायां प्रविष्टः। गुहायामभ्यन्तरे

हार चुराने तक की सब बात कह दी। बाद में मुनि होकर पाँच सौ मुनियों के साथ विहार करते हुए तामलिप्त नगर पहुँचे। नगर में प्रवेश करने पर चामुण्डा ने आकर उन्हें रोक दिया और कहा – भगवन्! मेरी पूजा जब तक समाप्त न हो तब तक नगर में प्रवेश आप न करें, किन्तु शिष्यों के द्वारा प्रेरित होकर वह प्रवेश कर गए। रात्रि में परकोटे के समीप पश्चिम दिशा में प्रतिमायोग धारण किया। चामुण्डा ने कौए के बराबर मच्छर, डाँस आदि दंशमशकों से उन पर उपसर्ग किया। विद्युच्चर मुनि उन उपसर्गों को अनुभूत कर मोक्ष को प्राप्त हुए।

गुरुदत्तमुनि की कथा

अर्थ : हस्तिनापुर नगर के गुरुदत्त नामक मुनि द्रोणीमति पर्वत पर तप करते थे, किसी दुष्ट ने संभली थाली के समान उनके मस्तक पर अग्नि रखकर जलाया था, उसकी घोर वेदना सहकर वे उत्तमार्थ को प्राप्त हो गए।

कथा : मिट्टी के भाजन में बाल की फल्ली भरकर चारों तरफ आँक के पत्ते भरना चाहिए। अनन्तर उस भाजन का मुँह नीचे करके उसके चारों तरफ अग्नि लगा देना चाहिए, इसको ही सँभली थाली कहते हैं।

हस्तिनागपुर के राजा विजयदत्त थे। जिनकी रानी का नाम विजया था। उनके एक पुत्र था गुरुदत्त। गुरुदत्त को राज्य देकर विजयदत्त मुनि हो गए। लाट देश में द्रोणी पर्वत के पास चन्द्रपुरी है। वहाँ के राजा चन्द्रकीर्ति और पत्नी चन्द्रलेखा थी। उनकी एक पुत्री अभयमति थी। गुरुदत्त ने अभयमति से विवाह करने की प्रार्थना चन्द्रकीर्ति से की किन्तु चन्द्रकीर्ति ने मना कर दिया। क्रोध में आकर गुरुदत्त ने जाकर चन्द्रपुरी को घेर लिया। अभयमति को पहले ही गुरुदत्त से अनुराग हो गया था, जब उसने चन्द्रपुरी घिरने की बात सुनी तो चन्द्रकीर्ति को कहा – हे तात! मुझे गुरुदत्त के लिए दे दो। तब चन्द्रकीर्ति ने गुरुदत्त को दे दिया। एक बार गुरुदत्त से लोगों ने कहा कि द्रोणीमति पर्वत में एक व्याघ्र रहता है, उसने पूरे देश को परेशान कर रखा है। यह सुनकर गुरुदत्त ने सब लोगों के साथ जाकर व्याघ्र को घेर लिया। वह व्याघ्र गुफा में घुस गया तो गुरुदत्त ने गुफा के भीतर

काष्ठानि प्रक्षिप्याग्निः प्रज्वालितः। चन्द्रपुरीनगर्यां ब्राह्मणो भरतो, भार्या विश्वदेवी, व्याघ्रो मृत्वा तत्पुत्रः कपिलनामा जातः। गुरुदत्ताभयमत्योः सुवर्णभद्रनामा पुत्रो जातः। तस्मै राज्यं दत्वा गुरुदत्तो मुनिरभूत्। विहरत्कपिलक्षेत्रसमीपे कायोत्सर्गेण स्थितः। कपिलोऽपि निजभार्यां कपिलां भोजनं गृहीत्वा शीघ्रं त्वमागच्छेत्युक्त्वा तत्क्षेत्रे गतः। तत्क्षेत्रं कर्षणायोग्यं मत्वा भट्टारको भणितस्तेन। मदीयब्राह्मण्याः कथयेस्त्वं तव भर्तान्यक्षेत्रं गत इति भणित्वा गतः। ब्राह्मण्या आगत्य पृष्टो मुनिर्मौनेन स्थितो ब्राह्मणी गृहं गता। बृहद्वेलायां कपिलेनागत्य ब्राह्मणी निर्भर्त्सिता। भट्टारकं पृष्ट्वा किं नायातासि। तयोक्तम्- पृष्टोऽपि स न कथयति। ततो रुष्टेन तेन गत्वा शाल्मलितूलेन वेष्टयित्वाग्निः प्रज्वालितः। मुनिना परमध्यानेन केवलज्ञानमुत्पादितम्। देवागमने जाते आत्मानं निन्दयित्वा तस्यैव समीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्जातः।

77. गाढप्रहारविद्ध इत्यादि

गाढप्पहारविद्धो मूइंगलिया हि चालणी व कदो।
तध वि य चिलादपुत्तो पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1553॥

अस्य कथा - राजगृहनगरे राजा प्रश्रेणिक एकदा वाह्याल्यागतो दुष्टाश्वेन महाटवीं नीतः। तत्राटविकयमदण्डराजेन तिलकावत्याः पुत्रस्य त्वया राज्यं दातव्यमिति भणित्वा निजपुत्रीं तिलकावतीं परिणय्य राजगृहं प्रेषितः। तिलकावत्याश्चिलातपुत्रनामा पुत्रो जातः। एकदा राज्ञा मम बहुपुत्राणां मध्ये को राजा भविष्यतीति

बहुत लकड़ी रखकर अग्नि जला दी। चन्द्रपुरी नगरी में एक ब्राह्मण भरत रहता था। उसकी स्त्री विश्वदेवी थी। वह व्याघ्र मरकर इसी ब्राह्मण का कपिल नाम का पुत्र हुआ तथा गुरुदत्त और अभयमति के सुवर्णभद्र नाम का पुत्र हुआ। सुवर्णभद्र को राज्य देकर गुरुदत्त मुनि हो गए। वे विहार करते हुए कपिल के खेत के पास ही कायोत्सर्ग से खड़े हो गए। कपिल ने अपनी पत्नी कपिला को कहा कि तुम भोजन लेकर शीघ्र ही आना और स्वयं खेत पर चला गया। उस खेत को जोतने के अयोग्य जानकर उसने मुनिराज से कहा कि तुम मेरी ब्राह्मणी को कह देना कि तुम्हारा पति दूसरे खेत में गया है और चला गया। ब्राह्मणी ने आकर मुनि को पूछा किन्तु मुनिराज मौन रहे। ब्राह्मणी घर चली गयी। बहुत देर बाद कपिल ने आकर ब्राह्मणी को डांटा। उन मुनि को पूछकर क्यों नहीं आ गयी, तब उसने कहा कि मैंने पूछा था उन्होंने कुछ नहीं कहा। कपिल क्रुद्ध होकर वहाँ गया और शाल्मलि की रुई से उसे घेरकर अग्नि से जला दिया। मुनिराज ने परमध्यान से केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। देवों का आगमन हुआ तब कपिल ने अपनी निन्दा करके उन्हीं भगवान् के पास धर्म सुना और मुनि हो गए।

77. चिलात पुत्र की कथा

अर्थ : जो तीव्र शस्त्र प्रहार होने से जख्मी हुए थे और जिनका मुख बड़ा है, ऐसी काली-काली चींटियों ने खाकर जिनका शरीर चालनी के समान छिद्रमय किया था। ऐसे चिलातपुत्र नामक मुनि उत्तमार्थ को प्राप्त हो गए।

कथा : राजगृह नगर के राजा प्रश्रेणिक थे। एक बार वे अपने घर से बाहर गए। दुष्ट घोड़ा उन्हें एक महान् जंगल में ले गया। उस अटवी के मालिक यमदण्ड राजा ने तिलकावती के पुत्र को राज्य देना होगा, यह कहकर तिलकावती का विवाह प्रश्रेणिक से करके राजगृह में भेज दिया। तिलकावती के चिलात पुत्र नाम का

संचिन्त्य नैमित्तिकः पृष्टः। कथितं तेन- सिंहासनस्थो भेरीं ताडयन् कुक्कुराणां क्षैरेयीं ददानो यो भुङ्क्ते अग्निदाहे च यो हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं निःसारयति स राजा भविष्यति। शुभदिने परीक्षार्थमेकदा सिंहासनभेरीसमीपे सर्वेषां राजकुमाराणां भोक्तुमुपविष्टानां क्षैरेयीं परिवेषयित्वा पञ्चशतानि कुर्कुराणां मुक्तानि। ततः सर्वे ते नष्टाः। श्रेणिकेन सर्वाणि क्षैरेयीभृतभाजनान्यात्मसमीपे धृत्वा एकैकं भाजनं कुर्कुराणां मुञ्चता भेरीमाताडयता सिंहासने उपविश्य क्षैरेयीं भुङ्क्त्वा अग्निदाहे च जाते हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं निःसारितं ज्ञात्वा राजा शत्रुभयात्कुर्कुर-विट्टालणादिदोषं दत्त्वा देशान्निर्धाटितो द्राविडदेशे काञ्चीपुरे गत्वा स्थितः। एकदा चिलातपुत्राय राज्यं दत्त्वा प्रश्रेणिको मुनिरभूत्। चिलातपुत्रोऽन्यायपरः। ततः श्रेणिकेनागत्य निर्धाटितो महाटव्यां दुर्गं कृत्वा देशकरं गृहीत्वा कालं गमयति। अस्य सखा भर्तृमित्रः। तस्य मातुलो रुद्रदत्तो भर्तृमित्रस्य निजपुत्रीं सुभद्रां न ददाति। ततो भर्तृमित्रवचनात्पञ्चशतसुभटैः सह राजगृहमागत्य चिलातपुत्रो विवाहस्नानकाले तां छलेन हत्वा गतः। तच्छ्रुत्वा सर्वबलेन सह श्रेणिकः पृष्ठे लग्नः। पलायितुमसमर्थेन तेन मारिता सुभद्रा व्यन्तरदेवी जाता। चिलातपुत्रेण नश्यता वैभारपर्वतस्योपरि पञ्चशतमुनिसमन्वितं दत्तमुनिं दृष्ट्वा तेनोक्तम् - भगवन्मे तपो देहि। स्वकार्यं साधयामि। मुनिनोक्तम्-पुत्र गृहीत्वा तपः स्वकार्यं शीघ्रं साधय अष्टदिनान्येव तवायुरस्ति। ततस्तपो गृहीत्वा पादोपयानमरणे स्थितः। श्रेणिकस्तं तथा स्थितं दृष्ट्वा वन्दित्वा प्रशस्य च व्याघुट्य गतः। सुभद्रया च व्यन्तरदेव्या पूर्ववैरात्सौलिका-

---

एक पुत्र हुआ। एक बार राजा ने सोचा मेरे इन बहुत से पुत्रों में राजा कौन होगा? तभी राजा ने एक नैमित्तिक को पूछा। उसने कहा जो सिंहासन पर बैठकर भेरी बजाता हुआ कुत्तों को भी साथ में खीर देता जाय और स्वयं भी खीर खाता रहे तथा अग्नि लग जाने पर जो हाथी, सिंहासन, छत्र आदि को लेकर बाहर निकल जाये, वह राजा होगा। किसी एक शुभ दिन परीक्षा करने के लिए एक बार राजा ने सिंहासन और भेरी के पास ही सभी राजकुमारों को भोजन करने के लिए बिठाया। खीर परोसकर पाँच सौ कुत्तों को छोड़ दिया, जिससे सब राजकुमार भाग गए। तब श्रेणिक ने सभी के खीर के भी बर्तनों को अपने पास रख लिया और एक-एक बर्तन को कुत्तों के लिए छोड़ता गया तथा सिंहासन पर बैठकर भेरी (नगारा) बजाता गया। इसी प्रकार आग लग जाने पर हाथी, सिंहासन, छत्र आदि को लेकर बाहर निकल गया। यह जानकर राजा ने शत्रु के भय से श्रेणिक पर कुत्तों के झूठन खाना आदि दोष लगाकर देश से निकाल दिया।

श्रेणिक द्राविड़ देश के काञ्चीपुर नगर में जाकर रुक गए। एक बार चिलात पुत्र को राज्य देकर प्रश्रेणिक मुनि हो गए। वह चिलात पुत्र अन्याय करने में तत्पर रहता था। जिससे श्रेणिक ने आकर उसे राज्य से निकाल दिया। वह एक महान् जंगल में किला बनाकर देश के कर को लेकर अपना समय बिताता। इसका एक सखा भर्तृमित्र था। उसका मामा रुद्रदत्त भर्तृमित्र को अपनी पुत्री सुभद्रा नहीं देता था। तब भर्तृमित्र के कहने पर पाँच सौ योद्धाओं के साथ चिलातपुत्र राजगृह में आया और विवाह के समय स्नान करने के काल में सुभद्रा को छल से मारकर चला गया। यह खबर सुनकर पूरे सैन्य बल के साथ श्रेणिक पीछे लग गए। चिलात पुत्र जो कि भागने में असमर्थ था। उसने सुभद्रा को मार दिया। सुभद्रा मरकर व्यन्तर देवी हुई। चिलात पुत्र भागता हुआ वैभारपर्वत के ऊपर पहुँचा, जहाँ उसने पाँच सौ मुनियों के साथ दत्त मुनि को देखा। उसने कहा - भगवन्! मुझे दीक्षा दो, मैं अब अपने कार्य की साधना करूँगा। मुनिराज ने कहा पुत्र! तप ग्रहण करके अपने कार्य (मोक्षसुख के कार्य)को शीघ्र साधो। तुम्हारी आयु केवल आठ दिन की शेष है। तब चिलात पुत्र दीक्षा लेकर पादोपयान मरण से स्थित हो गए। श्रेणिक ने चिलात पुत्र को मुनि की स्थिति में देखा तो वन्दना की और प्रशंसा की तथा

रूपेण तन्मस्तके स्थित्वा लोचने तस्योत्पाटिते स्थूलशिरो मधुमक्षिकारूपं विकृत्याष्टदिनान्यनवरतं भक्ष्यमाणोऽपि समाधिना मृत्वा सर्वार्थसिद्धावुत्पन्नः।

78. धन्यो यमुनाचक्रेणेत्यादि

धण्णो जउणावंकेण तिक्खकंडेहिं पूरिदंगो वि।
तं वेयणमधियासिय पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1554॥

अस्य कथा - जम्बूद्वीपपूर्वविदेहे वीतशोकपुरे राजा अशोको धान्यगाह[ल]नकाले बलीवर्दानां मुखबन्धनं कारयति। महानसे च पाकं कुर्वन्तीनां स्तनबन्धं कारयित्वा बालानां स्तनं पातुं न ददाति। एकदा शिरसि मुखे च तस्य रोगोऽभूत्। ततस्तस्य स्फेटनार्थं वरौषधं पाचयित्वा भाजने भोजनाय गृहीतम्। तत्प्रस्तावे चर्यागतमुनये तदौषधं दिव्यपथ्यं च दत्तं यो मे रोगः सोऽस्यापीति ज्ञात्वा। ततो द्वादशवार्षिको रोगो मुनेर्नष्टः। भरतक्षेत्रे आमलकण्ठनगरे राजानिष्टसेनो राज्ञी नदीमतिः। अशोकराजो मृत्वा तद्दानफलात्पुत्रो धन्यनामा जातः। अरिष्टनेमितीर्थकरपादमूले धर्ममाकर्ण्य स्वल्पायुर्ज्ञात्वा मुनिर्जातः। पूर्वकर्मोदयाद्भिक्षामलभमानोऽप्युग्रोग्रं तपः कुर्वाणः संवरीपुरे यमुनायाः पूर्वतटे आतापनस्थः पापर्द्धिगतेन व्याधुटितेन यमुनाचक्रेण राज्ञा अपशकुनाद् बाणैः पूरितोऽपि समाधिना सिद्धिं गतः।

वापस चला गया। सुभद्रा जो व्यन्तर देवी हुई थी उसने पूर्व वैर से एक चील का रूप बना लिया और मुनिराज के मस्तक पर बैठ गयी और आँखों को उनके चेहरे से नोंच लिया। बाद में उनके बड़े सिर पर मधु मक्खियों का रूप बनाकर विक्रिया से आठ दिन तक निरन्तर खाती रही किन्तु मुनिराज समाधि से मरणकर सर्वार्थसिद्धि को चले गए।

78. धन्य मुनिराज की सहन शक्ति

अर्थ : धन्य नामक मुनिराज के ऊपर यमुनावक्र नामक दुष्ट मनुष्य ने बाणों की वृष्टि करके उनका सर्व शरीर व्रण युक्त कर दिया तो भी उन मुनिराज ने रत्नत्रय की आराधना की।

कथा : जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में वीतशोकपुर का राजा अशोक था। वह धान्य को दाँए करने के समय बैलों के मुख बँधवा दिया करता था और रसोई घर में भोजन बनाने वाली स्त्रियों के स्तन बँधवा देता, जिससे बालकों को स्तनपान न करा पायें। एक बार अशोक के शिर और मुख में रोग हो गया जिससे उस रोग के निवारण के लिए एक श्रेष्ठ औषधि बनवायी और बर्तन में भोजन के लिए रख लिया कि तभी एक मुनि चर्या के लिए आये। जो रोग मुझे है वही रोग इनको है, यह जानकर वह औषधि जो कि सर्वश्रेष्ठ पथ्य थी, मुनि के लिए दे दी। जिससे मुनिराज का बारह वर्ष पुराना रोग दूर हो गया। भरतक्षेत्र में आमलकण्ठ नगर में राजा अनिष्टसेन और रानी नदीमति रहते थे। अशोक राजा मरकर उस दान के फल से उनके यहाँ धन्य नाम का पुत्र हुआ। वह पुत्र अरिष्टनेमिनाथ तीर्थंकर भगवान् के पादमूल में धर्मश्रवण कर अपनी आयु अल्प जानकर मुनि हो गए। पूर्व कर्म के उदय से भिक्षा का लाभ नहीं होते हुए भी उग्र तप करते। संवरीपुर (शौरीपुर) में यमुना के तट पर आतापन योग धारण किया। यमुना पर आधिपत्य रखने वाला एक राजा शिकार के लिए आया। वापस लौटते हुए उसने मुनि को देख अपशकुन समझकर उसने उन्हें बाणों से भर दिया। धन्य महामुनिराज परम समाधि धारण कर निर्वाण को प्राप्त हुए।

79. अर्धसहस्रप्रमिता इत्यादि

अभिणंदणादिगा पंच सया णयरम्मि कुंभकारकडे।

आराधणं पवण्णा पीलिज्जंता वि जंतेण ॥1555॥

एतेषां कथा - दक्षिणापथे भरतदेशे कुम्भकारकटनगरे राजा दण्डको, राज्ञी सुव्रता, मन्त्री बालकः। तत्राभिनन्दनादयः पञ्चशतमुनयः समायाताः। खण्डकमुनिना बालकमन्त्री वादे जितः। ततो रुष्टेन तेन भण्डो मुनिरूपं कारयित्वा सुव्रतया समं रममाणो राज्ञो दर्शितः। भणितं च तेन-देव, दिगम्बरेषु भक्त्यातिमुख्योऽसि येन भार्यामपि तेभ्यो दातुमिच्छसि। ततो रुष्टेन राज्ञा मुनयो यन्त्रे निःपीलिताः। ते तमुपसर्ग प्राप्य परमसमाधिना सिद्धिं गताः।

80. गोष्ठे प्रायोपगत इत्यादि

गोट्ठे पाओवगदो सुबंधुणा गोव्वरे पलिविदम्मि।

डज्झंतो चाणक्को पडिवण्णो उत्तमं अट्ठं ॥1556॥

अस्य कथा - पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दः, कविसुबन्धुशकटालास्त्रयो मन्त्रिणः, पुरोहितः कपिलो, भार्या देविला, पुत्रश्चाणक्यो वेदपारगः। एकदा कविमन्त्रिणा नन्दस्य कथितम्-देव, तवोपरि प्रत्यन्तवासिनो राजानश्चलिताः। नन्देनोक्तम्-द्रव्यं दत्वा तान्निवारय। ततः कविना यथायोग्यं द्रव्यं दत्वा ते निवारिताः। एकदा

---

79. निर्बाध आराधना

अर्थ : अभिनंदन आदिक पाँच सौ मुनियों को कुंभकार कट नामक नगर में यंत्रों में पेलकर मारा था तो भी उन्होंने आराधना का त्याग नहीं किया।

कथा : दक्षिण दिशा की ओर भरतदेश में एक कुम्भकार कट नगर था। जहाँ के राजा दण्डक और रानी सुव्रता थी। मन्त्री बालक था। वहाँ अभिनन्दन आदि पाँच सौ मुनि आये। खण्डक मुनि ने बालक मन्त्री को वाद में जीत लिया। जिससे मंत्री ने क्रुद्ध होकर एक भाँड को मुनि बनाकर भेजा और सुव्रता के साथ रमण करता हुआ राजा को दिखाया और कहा - प्रभो! आप दिगम्बरों में भक्ति के कारण प्रसिद्ध हो। अब अपनी स्त्री को उनके लिए दे दो। राजा यह सब देख सुनकर बहुत क्रोधित हुआ और उसने मुनियों को यन्त्र में पिलवा दिया। वे मुनिराज उस उपसर्ग को सहनकर परमसमाधि के द्वारा सिद्ध गति को प्राप्त हुए।

80. चाणक्य मुनि की कथा

अर्थ : गोट्ठ में चाणक्य नामक मुनि ने प्रायोपवेशन धारण किया। सुबंधु नामक राजमंत्री उसका बैरी था। उसने गोमय कंडों की राशि में चाणक्य मुनि को अग्नि लगाकर जलाया तो भी उन्होंने रत्नत्रय की आराधना का त्याग नहीं किया, वे उत्तमार्थ को प्राप्त हुए।

कथा : पाटलिपुत्र नगर के राजा नन्द थे। उनके तीन मन्त्री थे कावि, सुबन्धु और शकटाल। राजा के पुरोहित का नाम कपिल था। जिसकी पत्नी देविला थी और पुत्र चाणिक्य। चाणिक्य वेद में पारगामी था। एक बार कावि मन्त्री ने नन्द राजा को कहा - प्रभो! अपने ऊपर निकटवर्ती राजा लोग आ रहे हैं। नन्द ने कहा - उन्हें

नन्देन भाण्डागारिको भाण्डागारे द्रव्यं पृष्टः। तेनोक्तम्- काविना सर्वं द्रव्यं प्रत्यन्तवासिनां दापितं वर्तते। रुष्टेन नन्देन सकुटुम्बः काविरन्धकूपे निक्षिप्तः। संकटद्वारे तत्रैकैकं भक्तशरावं स्तोकजलं च वरत्राबन्धं तस्य दीयते। काविना भणितम्-सकुटुम्बं नन्दं यो विनाशयति स भुञ्ज्यादिति।[1] सर्वैर्भणितम्-त्वमेवात्र समर्थः। ततः कूपतटे बिलं कृत्वा तत्र भोजनं कुर्वाणस्त्रीणि वर्षाणि स्थितः। मृतं कुटुम्बम्। प्रत्यन्तवासिनां क्षोभे जाते नन्देन स्मृत्वा कविः कूपान्निःसार्य मन्त्रिपदे धृतः। एकदा नन्दवंशविनाशार्थं पुरुषमन्वेषयता काविनाटवीमध्ये सच्छात्रं दर्भसूचीं खनन्तं चाणाक्यं दृष्ट्वा पृष्टः। किमर्थमिमां खनसि। कथितं तेन। विद्धोऽहमनयेति। काविनोक्तम्-पूर्यते बहु क्षमां कुरु। चाणाक्येनोक्तम्- न च खनेद्यस्य न मूलमुद्धरेन्न तद्वध्येद्यस्य शिरो न कृन्तयेदिति। एतदाकर्ण्य चिन्तितं काविना नन्दवंशविनाशनेऽयं योग्य इति। यशस्वत्या चाणाक्यभार्यया चाणाक्यो भणितः-देव नन्दः कपिलां ददाति तां त्वं गृहाण। तेनोक्तम्- गृह्णामि। तं ज्ञात्वा काविना नन्दो भणितः-कपिलासहस्रं देहि। तेनोक्तं ददामि। ब्राह्मणानानय। तन्निमित्तं काविना नन्दो भणितः। चाणाक्यो ऽग्रासने धृतस्तेन च कुडीभिः [?] बहून्यासनानि स्वीकृतानि। तमालोक्य काविना स भणितो भट्टः। नन्दो भणति बह्वो ब्राह्मणाः समायाता एकमासनं मुञ्च त्वम्। तेन च मुक्तमेकमेव। सर्वासनानि मोचयित्वा तेनोक्तम्-भट्ट किमहं करोमि नन्दो निर्विवेकी भणत्यग्रासनं त्यजान्यस्याग्रासनं दत्तं गच्छ त्वमित्युक्त्वा गले धृत्वा निर्धाटितः। ततश्चाणाक्यो नन्दवंशं निर्मूलयामीति चिन्तयन्

धन देकर रोक दो। तब कावि ने यथायोग्य धन देकर उन्हें रोक दिया। एक बार नन्द ने भाण्डागारिक से भाण्डागार में धन के बारे में पूछा। उसने कहा कावि ने सारा धन निकटवर्ती राजाओं को दे दिया है। नन्द ने क्रुद्ध होकर परिवार सहित कावि को एक अन्धे कुँए में डाल दिया। वहाँ संकट द्वार पर एक-एक सकोरा भोजन और थोड़ा-सा जल चमड़े का थैला बाँधकर उसको दिया जाता। कावि ने कहा नन्द को जो परिवार सहित मारेगा वही यह भोजन करे। सभी ने कहा - इस कार्य के लिए तो आप ही समर्थ हैं। तब वही कुँए के पास एक बिल बनाकर भोजन करते हुए उसने तीन वर्ष निकाल दिए। उसका सारा परिवार मर गया। जब निकटवर्ती राजाओं ने फिर नन्द को क्षोभ पहुँचाया और राजा ने कावि को याद किया तब कावि को कुँए से निकाल कर मन्त्रिपद पर रख दिया। एक बार नन्दवंश के विनाश करने के लिए पुरुष की खोज में कावि ने जंगल के बीच में छात्रों के साथ चुभती हुई घास को खोदते हुए चाणक्य को देखकर पूछा, किसलिए यह खोद रहे हो? उसने कहा - मैं इसके द्वारा छिद गया हूँ। कावि ने कहा उतने स्थान को भर दो और महान् क्षमा धारण करो। चाणक्य ने कहा - ऐसा नहीं इसको तब तक खोदूँगा जब तक इसकी जड़ें न उखड़ जायें। जब तक बाधा पहुँचाऊँगा जब तक शिर न कट जायें। इस प्रकार सुनकर चिन्तन करते हुए कावि ने सोचा नन्दवंश के नाश करने के लिए यह योग्य व्यक्ति है। चाणक्य की पत्नी यशस्वती ने चाणक्य से कहा - प्रभो! नन्द भूरी गायों को देता है, उनको तुम भी ले लो। तब चाणक्य ने कहा ले लूँगा। यह बात जानकर कावि ने नन्द से कहा - आज हजार गायें दान दे दो। राजा ने कहा - दिए देता हूँ। फिर कावि ने नन्द को पूछा तो इसके लिए ब्राह्मणों को बुलाया जाय। तब चाणक्य को कावि ने आगे आसन पर बिठा दिया और उसके साथ बहुत से आसन भी उसी ने स्वीकार कर लिए। यह देखकर कावि ने उसे भट्ट को कहा कि नन्द राजा कहते हैं कि बहुत से ब्राह्मण आये हैं इसलिए तुम एक आसन छोड़ दो तब उसने एक ही आसन दे दिया। इसी प्रकार कह उससे सब आसन छुड़ाकर कावि ने कहा अरे चाणक्य भट्ट! मैं क्या करूँ नन्द राजा को विवेक नहीं है। वह कहता है कि यह आगे का आसन भी छोड़ दो किसी दूसरे को यह देना है और तुम

1. भुंक्तादिति

यो नन्दराज्यमिच्छति स मे पृष्ठे लगत्विति भणित्वा निर्गतः। एकपुरुषः पृष्ठतो लग्नस्तं गृहीत्वा प्रत्यन्तवासिनां राज्ञां मिलितः। ते च भणिता द्रव्यादिकं दत्वा नन्दस्य मन्त्रिणां सामन्तानां च भेदं कुरुत। तथा सर्वे ऽपि भेदिताः। तैर्नन्दो द्रव्यं याचयित्वा धाटकेन नन्दं मारयित्वा बहुकालं राज्यं कृत्वा महीधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य चाणाक्यो मुनिर्भूत्वा पञ्चशतशिष्यैः सह बहुतरकालं दक्षिणापथे वनवासदेशे क्रौञ्चपुरे पश्चिमदिशि गोष्ठे पादोपयानमरणे स्थितः। नन्दे मारिते यो नन्दस्य मन्त्री सुबन्धुनामा स चाणक्यस्योपरि क्रोधं वहन् क्रौञ्चपुरीयसुमित्रराजस्य पार्श्वे आगत्य स्थितः। सुमित्रराजो मुनीनां वन्दनां पूजां च कृत्वा गृहमागतः। सुबन्धुरपि करीषं मुनीनां समीपे कृत्वाग्निं दत्वा समायातः। तस्मिन्नुपसर्गे समाधिना मुनयः सिद्धिं गताः।

81. वसतौ प्रदीपितायामित्यादि

वसदीए पलिविदाए रिट्ठामच्चेण उसहसेणो वि।
आराधणं पवण्णो सह परिसाए कुणालम्मि ॥1557॥

अस्य कथा – दक्षिणापथे कुणालपुरे राजा वैश्रवणो, मन्त्री रिष्टामात्यो मिथ्यादृष्टिः। एकदा संघेन सह वृषभसेनगणधरः समायातः। राज्ञा सर्वलोकैर्गत्वा वन्दितः। रिष्टामात्येन वादः कृतः। स वादेन जितः। ततो ऽभिमानात्तेन रात्रौ प्रच्छन्नेन वसतिका प्रज्वालिता तमुपसर्गमनुभूय मुनयः परमसमाधिना स्वर्गापवर्गं गताः॥

चले जाओ ऐसा कहकर चाणक्य को गला पकड़कर बाहर निकाल दिया। तब चाणक्य ने सोच लिया मैं नन्दवंश को निर्मूल कर दूँगा। जो नन्द का राज्य चाहता हो वह मेरे पीछे आ जाये ऐसा कहकर बाहर निकल गया। एक पुरुष उसके पीछे लग गया उसको लेकर वह निकटवर्ती राजाओं से मिला और उनसे कहते हुए, धन आदि को देकर नन्द के मंत्रियों और योद्धाओं को अलग कर दिया। इसी प्रकार चाणक्य ने सभी को दूर कर दिया। उन्होंने नन्द से सारा धन माँगकर घातक (हत्यारे) नन्द को मरवा दिया बाद में बहुत समय तक राज्य किया। तत्पश्चात् महीधर मुनि के समीप धर्म को सुनकर चाणक्य मुनि होकर पाँच सौ शिष्यों के साथ बहुत काल तक दक्षिण दिशा की ओर वनवास देश के क्रौञ्चनगर में पश्चिम दिशा के एक गोष्ठ में पादोपयान मरण धारण कर लिया। नन्द का मरण हो जाने पर, नन्द का सुबुन्धु नाम का मंत्री चाणक्य के ऊपर क्रोध करता हुआ क्रौञ्चपुरी के सुमित्र राजा के पास आकर रुक गया। सुमित्र राजा मुनिराजों की वन्दना पूजा करके घर आ गए तो सुबन्धु मुनिराजों के पास कण्डे की आग जलाकर आ गया। उस उपसर्ग में समाधि के द्वारा मुनिराज सिद्ध गति को प्राप्त किए।

81. आराधना का निर्वहण

अर्थ : कुणाल नगर की एक वसतिका में आग लगाकर रिष्ट नामक राज मंत्री ने अनेक शिष्यों के साथ वृषभसेन नामक मुनिराज को जलाया तो भी सम्पूर्ण शिष्यों के साथ मुनिराज ने आराधना को धारण किया।

कथा : दक्षिण दिशा में कुणालपुर के राजा वैश्रवण थे। उनका एक मन्त्री था, रिष्टामात्य,जो मिथ्यादृष्टि था। एक बार अपने संघ के साथ वृषभसेन गणधर आये। राजा सब लोगों के साथ गए और वन्दना की। रिष्टामात्य ने उनसे वाद किया। मुनि ने उसे वाद में जीत लिया। जिससे अभिमान के कारण रात्रि में वसतिका को ढँककर जला दिया। उस उपसर्ग को सहनकर कुछ मुनिराज परम समाधि के द्वारा स्वर्ग तथा कुछ निर्वाण को प्राप्त हुए।

82. आहारर्थं मत्स्या इत्यादि

अवधिट्ठाणं णिरयं मच्छा आहारहेदु गच्छंति।
तत्थेवाहारभिलासेण गदो सालिसित्थो वि ॥1649॥

अस्य कथा – स्वयंभूरमणसमुद्रे महामत्स्यः सहस्रयोजनदीर्घः पञ्चयोजनशतविस्तारः पञ्चाशदधिकद्वि-योजनशतोच्छ्रायः। तस्य कर्णे शालिसिक्थप्रमाणः शालिसिक्थनामा लघुमत्स्यस्तस्य कर्णमलं भक्षयति। बहुजीवभक्षणं कृत्वा महामत्स्यस्य मुखं विकास्य षण्मासान्निद्रां कुर्वाणस्य योजनदिप्रमाणाः मत्स्यकच्छपादयो मुखदंष्ट्रान्तरे प्रविश्य गच्छन्ति। तांस्तथा दृष्ट्वा स लघुमत्स्यः प्रतिदिनं चिन्तयति – महामूर्खो ऽयमिति। मम यदीदृशी सामग्री भवति तदैकोऽपि न गच्छति। एवं बहुना कालेन मृत्वा द्वावपि सप्तमनरकमवधिष्ठानसंज्ञकं गतौ।

83. चक्रधरो ऽपि सुभौम इत्यादि

चक्कधरो वि सुभूमो फलरसगिद्धीए वंचिओ संतो।
णट्ठो समुद्दमज्झे सपरिजणो तो गओ णिरयं ॥1650॥

अस्य कथा – ईर्ष्यावतीनगर्यां राजा कार्तवीर्यो, राज्ञी रेवती, पुत्रः सुभौमो अष्टमचक्रवर्ती, माहानसिको विजयसेनः। तेनैकदोष्णपायसं भौमस्य भोक्तुं दत्तम्। तेन दग्धो रुष्टेन चक्रिणा मस्तके पायसं घातयित्वा मारितः।

---

82. शालिसिक्थमच्छ की लम्पटता

अर्थ : आहार की अभिलाषा से मत्स्य अवधि नामक सातवें नरक में गमन करते हैं। इस आहार अभिलाषा से ही शालिसिक्थक मत्स्य भी उसी नरक में उत्पन्न हुआ।

स्वयंभूरमण समुद्र में एक विशाल काय मत्स्य था। जिसकी लम्बाई एक हजार योजन, चौड़ाई पाँच सौ योजन तथा दो सौ पचास योजन ऊँची काया थी। उसके कान में चावल के दाने के बराबर प्रमाण वाला शालिसिक्थ नाम का छोटा-सा मच्छ था, जो उस दीर्घ काय मच्छ का मैल खाया करता था। वह महाकाय मच्छ बहुत जीवों का भक्षण कर मुख को खोलकर छह महिने की निद्रा में मग्न हो जाता, तब उसके मुख में योजन आदि प्रमाण वाले बहुत से मच्छ, कछुए आदि मुख के दाँतों के बीच तक आते और चले जाते। उसके मुँह में इस प्रकार जीवों को आता-जाता देखकर छोटा मच्छ रोजाना सोचता कि यह बहुत बड़ा मूर्ख है। यदि मेरे पास इस प्रकार सामग्री होती तो एक भी बच के नहीं जाता। इस प्रकार सोचते हुए बहुत समय बाद मरण कर दोनों ही मच्छ सातवें नरक के अविधष्ठान संज्ञा वाले पटल में पहुँचे।

83. सुभौम चक्रवर्ती की कथा

अर्थ : फल के रस का आस्वादन करने में आसक्त होकर सुभौम चक्रवर्ती भी अपने परिवार सहित समुद्र में पड़कर मर गया और नरक में उत्पन्न हुआ।

कथा : ईर्ष्यावती नगरी के राजा कार्तवीर्य थे और रानी रेवती। उनके एक पुत्र था सुभौम। वह आठवाँ चक्रवर्ती था। उनका रसोइया विजयसेन था। रसोइया ने एक बार गर्म-गर्म खीर सुभौम को खाने के लिए दी।

विजयसेनो लवणसमुद्रे व्यन्तरदेवो जातः। रोषात्तापसरूपेण मृष्टफलान्यानीय सुभौमः समुद्रमध्ये नीत्वा पञ्चनमस्कारान्पादेन भञ्जयित्वा प्रचार्य मारितः सप्तमनरकं गतः।

84. जननी वसन्ततिलकेत्यादि

जणणी वसंततिलया भगिणी कमला य आसि भज्जाओ।
धणदेवस्स य एक्कम्मि भवे संसारवासम्मि ॥1800॥

अस्य कथा – उज्जयिन्यां राजा विश्वसेनः, श्रेष्ठी सुदत्तः षोडशकोटिद्रव्यस्वामी, गणिका वसन्ततिलका, सा सुदत्तेन गृहवासे धृता। कतिपयदिनैस्तस्याः गर्भसंभूतौ कण्डूकासश्वासादयो रोगा जाताः। ततः सुदत्तेन त्यक्ता निजगृहेषु पुत्रपुत्रीयुगलं प्रसूता। उद्विग्नया तया रत्नकम्बलेन वेष्टयित्वा पुत्री नगरीदक्षिणप्रतोल्यां मुक्ता। प्रयागादागत्य तत्र स्थितेन सुकेतुसार्थवाहेनानीय सा निजभार्यायाः सुप्रभायाः समर्पिता। कमलानामा वृद्धिं गता। उत्तरप्रतोल्यां पुत्रो मुक्तः। सोऽपि साकेतपुरादागत्य तत्र स्थितेन सुभद्रसार्थवाहेनानीय निजभार्यायाः सुव्रतायाः समर्पितः। स च धनदेवनामा वृद्धिं गतः। बहुदिवसैः पुनरागत्योज्जयिन्यां सार्थवाहाभ्यां तयोः कमलाधनदेवयोर्विवाहः कारितः। ततः साकेतपुरं गत्वा कतिपयदिनानि भोगान्भुक्त्वा कमलां तत्रैव धृत्वा धनदेवः पुनरुज्जयिन्यामागतो वसन्ततिलकायां निजजनन्यां भोगमनुभवन्पुत्रमुत्पादितवान्। अयोध्यायां च कमलया मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य सम्यक्त्वं व्रतं गृहीत्वा

खीर गर्म होने से वह जल गया तो क्रोध के कारण चक्री ने उसके सिर पर खीर फेंककर घायल कर मार दिया। विजयसेन रसोइया लवण समुद्र में व्यन्तर देव हुआ। क्रोध से व्यन्तर देव ने तापस का रूप बनाया और मीठे फल लाकर सुभौम को समुद्र के बीच ले गया। वहाँ पञ्च नमस्कार मंत्र को पैरों से चक्री ने नाश कर दिया। देव ने प्रकट होकर चक्री को मार दिया। मरकर चक्री सातवें नरक गया।

84. अठारह नाते की कथा

अर्थ : एक ही भव में धनदेव नामक मनुष्य के वसंततिलका माता और कमला नामक भगिनी दोनों पत्नी हुई थी।

कथा : उज्जयिनी के राजा विश्वसेन थे। वहाँ एक सेठ थे सुदत्त। जो सोलह करोड़ धन के स्वामी थे। वहीं एक वेश्या रहती थी वसन्ततिलका। उसको सुदत्त ने गृहवास में रखा था। कुछ दिनों बाद उसके गर्भ प्रकट हुआ तभी उसे खुजली, श्वास आदि रोग हो गए। जिससे सुदत्त ने उसे छोड़ दिया। उसने आकर अपने घर में युगल पुत्र, पुत्री को जन्म दिया। पीड़ित होने से उसने रत्नकम्बल से पुत्री को लपेटकर नगरी के दक्षिण द्वार पर रख दिया। प्रयाग से आकर वहाँ सुकेतु व्यापारी रुका। उसने वह पुत्री लाकर अपनी पत्नी सुप्रभा को सौंप दी और उसका नाम कमला रखा। वह दिनों-दिन वृद्धि को प्राप्त हुई। उस वसन्ततिलका वेश्या ने उत्तर दिशा के परकोटे पर पुत्र को छोड़ दिया था। साकेतपुर से आकर वहाँ सुभद्र व्यापारी रुके उनने उस पुत्र को लेकर अपनी पत्नी सुव्रता को सौंप दिया। उसका नाम धनदेव रखा गया और बड़ा हुआ। बहुत दिनों के बाद उज्जयिनी में आकर दोनों व्यापारियों ने कमला और धनदेव का विवाह कर दिया। इसके बाद साकेतपुर जाकर कुछ दिनों तक भोगों को भोगकर कमला को वहीं छोड़कर धनदेव पुनः उज्जयिनी में आ गया। अपनी माता वसन्ततिलका से भोगों को भोगकर धनदेव ने पुत्र को जन्म दिया। अयोध्या में कमला ने मुनि के पास में धर्म श्रवण कर सम्यक्त्व व्रत को

धनदेवस्य कुशलवार्ता पृष्टा। कथितं मुनिना – जनन्या वसन्ततिलकया सहोज्जयिन्यां भोगान्भुञ्जानः कुशलेन तिष्ठति। पुनः कमलया पृष्टम् – कस्मिन् भवे सा तस्य जननी। कथितं मुनिना पूर्वभवे पिता अत्रभवे जननी।

अत्र कथा – उज्जयिन्यां ब्राह्मणः सोमशर्मा, भार्या काश्यपी पुत्रावग्निभूतिसोमभूती। द्वावपि बहिः पठित्वा आगच्छद्भ्यां जिनदत्तपुत्रमुनेर्जननीं जिनमतिकां पादमर्दनं कुर्वतीमालोक्य जिनभद्रश्वशुरमुनेश्च वधूटिकां सुभद्रार्यिकां पादमर्दनं कुर्वतीमालोक्योपहासः कृतः। तरुणस्य वृद्धा वृद्धस्य तरुणी विधिना भार्या कृतेति। तथोपार्जितकर्मवशात् कालेन सोमशर्मा मृत्वोज्जयिन्यां वसन्तसेनायाः पुत्री वसन्ततिलका जाता। अग्निभूतिसोमभूती मृत्वा वसन्ततिलकायाः शिशुयुगलं कमलाधनदेवौ जातौ। काश्यपी मृत्वा वसन्ततिलकाधनदेवयोरिदानीं पुत्रो वरुणनामा जात इति मुनिवचनमाकर्ण्य जातिस्मरी भूत्वोज्जयिन्यामागत्य वसन्ततिलकागृहं प्रविश्य पालणकस्थं वरुणदत्तबालकमनेन सुभाषितेनान्दोलयति।

बालय णिसुणसि वयणं तुज्झ सरिस्साइ अट्ठदह णत्ता।
पुत्तु भतिज्जउ भायउ देवरु पित्तियउ पोत्तज्जु[1]॥ 1॥
तुहु पियरो मह पियरो पियामहो तह य हवइ भत्तारो।
भायउ तह विय पुत्तो सुसुरो हवई स बालया मज्झ॥ 2॥
तुव जणणी महु भज्जा पियामही तह य मायरी सवई।
हवइ वहू तह सासू एक्क हिया अट्ठदह णत्ता॥ 3॥

ग्रहण कर धनदेव की कुशल वार्ता पूछी। तब मुनिराज ने कहा – वह अपनी माँ वसन्ततिलका के साथ उज्जयिनी में भोगों को भोगता हुआ कुशल पूर्वक है। पुनः कमला ने पूछा – किस भव में वह उसकी माता हुई। मुनिराज ने कहा पूर्व भव में वह पिता थी इस भव में माता है। यहाँ एक कथा है – उज्जयिनी में सोमशर्मा ब्राह्मण और उसकी स्त्री काश्यपी थी। उनके दो पुत्र अग्निभूति और सोमभूति थे। दोनों ही बाहर से पढ़कर आ रहे थे कि मार्ग में उन्होंने जिनमति आर्यिका को अपने पुत्र जिनदत्त मुनि के पादमर्दन करती हुई देखा तथा सुभद्रा आर्यिका को अपने श्वसुर जिनभद्र मुनि के पादमर्दन करती हुई देखा। यह देख दोनों भाइयों ने उपहास किया ''जवान की स्त्री बूढ़ी और बूढ़े की स्त्री जवान'' विधाता ने अच्छी उल्टी जोड़ी बनायी है, उससे बाँधे हुए कर्म के कारण सोमशर्मा समय से मरणकर उज्जयिनी में वसन्तसेना की पुत्री वसन्ततिलका हुई। अग्निभूति और सोमभूति मरण कर वसन्ततिलका के युगल शिशु कमला और धनदेव हुए। काश्यपी मरकर वसन्ततिलका और धनदेव का वर्तमान में वरुण नाम का पुत्र हुआ। इस प्रकार मुनि के वचनों को सुनकर उसे जातिस्मरण हुआ और उज्जयिनी में जाकर वसन्ततिलका के घर में प्रवेशकर पालने में पड़े हुए वरुण बालक को इन सुभाषित वचनों को सुनाकर झुलाया – बालक! तुम मेरे वचनों को सुनो तुम्हारे साथ मेरे अठारह नाते (सम्बन्ध) हैं। 1. तुम मेरे पुत्र हो। 2. भतीजे भी हो। 3. तुम मेरे भाई भी हो। 4. देवर भी हो। 5. काका भी हो। 6. मेरे पौत्र भी हो। 7. तुम्हारा पिता धनदेव मेरा भी पिता है। 8. तुम मेरे काका हो और धनदेव तुम्हारा भी पिता है अतः वह मेरा दादा है। 9. वह मेरा पति भी है। 10. वह मेरा भाई भी है। 11. वह मेरा पुत्र है। 12. धनदेव मेरा श्वशुर भी है। 13. मेरे भाई धनदेव की पत्नी होने से वेश्या मेरी भावज है। 14. वह मेरी दादी भी है। 15. वह मेरी सौत भी है। 17. वह वेश्या मेरी पुत्रवधु भी है। 18. तथा वह वेश्या मेरी सास भी है।

1. पुत्तु

एतदाकर्ण्य वसन्ततिलकादिभिः पृष्टया सर्वो वृत्तान्तः कथितः। कमलावसन्ततिलकाधनदेवा जातिस्मरीभूताः जिनधर्मे परमरुचिं कृत्वा तपो गृहीत्वा स्वर्गं गताः।

85. कुलरूपभोगतेजोऽधिकोऽपि राजेत्यादि

कुलरूवतेयभोगाधिगो वि राया विदेहदेसवदी।
वच्चधरम्मि सुभोगो जाओ कीडो सकम्मेहिं ॥ 1802 ॥

अस्य कथा - मिथिलानगर्यां राजा शुभो, राज्ञी मनोरमा, पुत्रो देवरतिः। एकदा संघेन सह देवगुरुर्गणधरस्तत्र समायातः। राज्ञा वन्दित्वा धर्ममाकर्ण्य क्व मे जन्म भविष्यतीति पृष्टः। कथितं मुनिना- निजवर्चोगृहे महाकृमिर्भविष्यसि त्वम्। साभिज्ञानं च नगरीप्रवेशे मुखे गूथप्रवेशः छत्रभङ्गः सप्तमे दिने अशनिपातान्मरणम्। प्रविशतोऽश्वरथचरणाहतो गूथो मुखे प्रविष्टः। महावात्याभिहतं छत्रं भग्नम्। ततस्तेन पुत्रो भणितः- अहं वर्चोगृहे पञ्चवर्णो महाकृमिर्भविष्यामि तं मारयेस्त्वम्। अशनिभयाद् गङ्गामहाद्रहे लोहमञ्जूषां कारयित्वा प्रविष्टः। महामत्स्येनोच्छालिता मञ्जूषा। तस्मिन्नेव क्षणे अशनिपातान्मृतो वर्चोगृहे कृमिर्जातः। पुत्रेण मार्यमाणः प्रणश्य गूथे प्रविष्टो देवरतिवचनात्तं वृत्तान्तमाकर्ण्य बहवो जिनधर्मे रताः। देवरतिःसंसारनिन्दां कृत्वा मुनिरभूत्।

इन अठारह नातों को सुनकर वसन्ततिलका आदि सब लोगों ने पूछा तो उसने सारी बात बता दी। कमला वसन्ततिलका और धनदेव को भी जातिस्मरण हुआ। जिनधर्म में परम श्रद्धान को धारण कर उन लोगों ने दीक्षा ग्रहण की और मरकर स्वर्ग गए।

85. सुभग राजा की कथा

अर्थ : कुल, रूप, तेज और भोगों से इतर जनों से श्रेष्ठ ऐसा विदेह का अधिपति सुभोग नाम का राजा भी मरकर पाखाने में गूथ में कीटक हुआ। अपने कर्म के वश सुभग राजा की भी ऐसी दशा हुई।

कथा : मिथिलानगरी के राजा सुभग थे। उनकी रानी मनोरमा थी। उनके एक पुत्र था देवरति। एक बार अपने संघ के साथ देवगुरु गणधर मिथिलानगरी में आये। राजा ने वन्दना कर धर्मश्रवण किया और पूछा भगवन्! मेरा जन्म कहाँ होगा? तब मुनिराज ने कहा अपने पाखाने घर में तुम एक बड़े कृमि बनोगे। इसके लक्षण हैं- नगरी प्रवेश के समय मुख में विष्ठा प्रवेश होगा, छत्र भंग होगा और सातवें दिन बिजली गिरने से मरण होगा। प्रवेश करते हुए राजा के घोड़ा और रथ को ठोकर लगी जिससे विष्ठा मुख में घुस गया। जोरदार आँधी चलने से फिर राजा का छत्र भंग हुआ। तब राजा ने पुत्र को कहा - मैं पाखाने घर में पाँच रंगों वाला बड़ा कृमि बनूँगा। उसको तुम मार देना। बिजली गिरने के भय से वह गंगा के एक बड़े तालाब में लोहे की पिटारी बनाकर बैठ गया। बड़े मच्छ ने वह सन्दूक उछाल दिया उसी समय बिजली गिरी और मरा तथा पाखाने घर में कृमि हुआ। पुत्र के मारने पर वह दौड़कर विष्ठा में ही प्रवेश कर जाता। देवरति के बताने से, इस घटना को सुनकर और भी बहुत से लोग जिनधर्म में रत हो गए और देवरति संसार की निन्दा करके मुनि हो गए।

86. विमला चक्रेण मारित इत्यादि

विमलाहेदुं बंकेण मारिदो णिययभारियागब्भे।
जादो जादो जादिंभरो सुदिट्ठी सकम्मेहिं ॥1806॥

अस्य कथा – उज्जयिन्यां राजा प्रजापालो, राज्ञी सुप्रभा, रत्नविज्ञानिकसुदृष्टिर्भार्या विमला। सुदृष्टेः छात्रो वंक्रः। तेन सह विमला कुकर्म करोति। एकदा विमला संकेतितेन वंक्रेण सुरतेः सेवां कुर्वाणो मारितः सुदृष्टिर्निजशुक्रेण विमलागर्भे पुत्रो जातः। सुदृष्टेः पदं वंक्रस्य विज्ञानिनः समर्पितम्। अन्यदा चैत्रमासे रमणीयोद्याने राज्ञा सह क्रीडन्त्याः सुप्रभायाः क्रीडाविलासनामोत्तमहारः त्रुटितः। केनापि सुवर्णकारेण तथा न रचितुं शक्यः। विमलापुत्रेण हारं दृष्ट्वा जातिस्मरेण जातेन पूर्वहेतुना रचितः। राज्ञा स पृष्टः। कथं सुदृष्टेर्हारो रचितस्त्वया। कथितं तेनाहमेव स सुदृष्टिरिति। पूर्ववृत्तान्ते कथिते राजा मुनिरभूत्। विमलापुत्रोऽपि मुनिर्भूत्वा विहृत्य संवरीपुरोत्तरदिशि यमुनानदीतटे निर्वाणं गतः।

87. कोसलकधर्मसिंह इत्यादि

कोसलयधम्मसीहो अट्ठं साधेदि गिद्धपुट्ठेण।
णयरम्मि य कोल्लगिरे चंदसिरिं विप्पजहिदूण ॥*2073॥

---

86. सुदृष्टि सुनार की कथा

अर्थ : विमला नामक स्त्री के वश होकर वंक्र नामक पुरुष ने अपने स्वामी का वध किया। वह स्वामी उस ही स्त्री के उदर में कर्मोदय से गर्भ रूप होकर उसका पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका सुदृष्टि नाम रखा गया, उसको कालांतर मैं जातिस्मरण हुआ कि मैं अपनी स्त्री में ही पुत्र उत्पन्न हुआ हूँ।

कथा : उज्जयिनी नगरी के राजा प्रजापाल थे और रानी सुप्रभा थी। वहीं एक रत्नों का विज्ञान रखने वाला व्यक्ति सुदृष्टि था। उसकी पत्नी विमला थी। सुदृष्टि के यहाँ एक छात्र था वंक्र। उसके साथ विमला कुकर्म करती थी। एक बार विमला के इशारे से सुदृष्टि जब आसक्ति से कामसेवन कर रहा था तो वंक्र ने मार दिया। सुदृष्टि अपने ही शुक्र से विमला के गर्भ में पुत्र हुआ। सुदृष्टि का पद उसी वंक्र विज्ञानी को दे दिया। एक बार चैत्र मास में एक मनोहर बगीचे में राजा के साथ सुप्रभा क्रीड़ा कर रही थी। क्रीड़ा विलास में रानी का क्रीड़ा विलास नाम का उत्तम हार टूट गया। कोई भी सुवर्णकार उसे उसी प्रकार बनाने में समर्थ नहीं हुआ। विमला के पुत्र ने हार को पूर्व भव में बनाया था इसलिए उसे जातिस्मरण हो गया और उसने तुरन्त हार बना दिया। राजा ने पूछा तुमने सुदृष्टि के हार को कैसे बना दिया? तो उसने कहा मैं ही वह सुदृष्टि हूँ। पूर्व का वृत्तान्त कहने से राजा मुनि हो गए। विमला का पुत्र भी मुनि होकर विहार करता हुआ संवरीपुर (शौरीपुर) के उत्तर दिशा में यमुना नदी के तट पर निर्वाण को प्राप्त हुए।

87. धर्म सिंह मुनि की कथा

अर्थ : कोसल नगरी में कोल्लगिरि पर्वत पर धर्म सिंह नामक राजा ने अपनी पत्नी चंदश्री का त्याग कर हाथी के शरीर में प्रवेश कर आराधना की सिद्धि की।

अस्य कथा – दक्षिणापथे कोसलगिरिपत्तने राजा वीरसेनो, राज्ञी वीरमतिः, पुत्रश्चन्द्रभूतिः, पुत्री चन्द्रश्रीः। कोशलदेशे कोशलपुरे धर्मसिंहराजेन परिणीता। एकदा धर्मसिंहो दमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य प्रियसेनपुत्राय राज्यं दत्वा मुनिरभूत्। चन्द्रश्रीभगिनीमतिदुःखितामालोक्य चन्द्रभूतिना धर्मसिंहो गवेषयित्वा आनीय चन्द्रश्रियः समर्पितः। पुनरपि गत्वा मुनिर्जातः। पुनश्चन्द्रभूतिमागच्छन्तमालोक्य पुनर्व्रतभङ्गं करिष्यतीति संचिन्त्य मृतहस्तिकलेवरे प्रविश्य संन्यासेन मृत्वा स्वर्गं गतः।

88. मातुलकृतोपसर्ग इत्यादि

पाडलिपुत्ते भूदाहेदुं मामयकदम्मि उवसग्गे।
साधेदि उसभसेणो अट्ठं विक्खाणसं किच्चा॥ 2074॥

अस्य कथा – पाटलिपुत्रनगरे श्रेष्ठी वृषभदत्त इभ्यो, भार्या वृषभश्रीः, पुत्रो वृषभसेनस्तस्य मातुलको धनपतिरिभ्यो भार्या श्रीकान्ता, पुत्री धनश्रीः। वृषभसेनो धनश्रियं परिणीय भोगमनुभूय दमधरमुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिरभूत। धनश्रीः दुःखिता रोदिति। धनपतिमामेन गवेषयित्वा आनीय व्रतभङ्गं कारितः। कतिपयदिनानि स्थित्वा पुनर्मुनिर्जातः। पुनर्मामेन वञ्चयित्वा आनीय गृहाभ्यन्तरे शृङ्खलायां घातयित्वा धृतः। पुनर्मे व्रतभङ्गं कारयिष्यतीति पर्यालोच्य संन्यासं गृहीत्वा श्वासं निरुध्य मृत्वा स्वर्गं गतः।

कथा : दक्षिण दिशा की ओर बसे कोसलगिरि पत्तन (बन्दरगाह) में राजा वीरसेन राज्य करते थे। उनकी रानी वीरमति थी। उनके एक पुत्र था चन्द्रभूति और पुत्री थी चन्द्रश्री। कोशल देश के कोशल नगर के राजा धर्मसिंह से चन्द्रश्री का विवाह हुआ।

एक बार धर्मसिंह दमधरमुनि के पास धर्म श्रवण कर प्रियसेन पुत्र के लिए राज्य देकर मुनि हो गए। चन्द्रश्री बहिन को अति दुःखी देखकर चन्द्रभूति धर्मसिंह को ढूँढकर ले आया और चन्द्रश्री को सौंप दिया। वह पुनः जाकर मुनि हो गए। पुनः चन्द्रभूति को आता देखकर यह मेरे व्रत पुनः भंग करेगा, ऐसा सोचकर एक मरे हुए हाथी के शरीर में प्रवेश कर संन्यास पूर्वक मरण कर स्वर्ग चले गए।

88. वृषभसेन की कथा

अर्थ : पाटलिपुत्र में अपनी पुत्री के लिए मामा के द्वारा उपसर्ग किया जाने पर वृषभसेन नामक पुरुष ने श्वास रोध कर आराधना की सिद्धि की।

कथा : पाटलिपुत्र नगर में एक प्रधान सेठ वृषभदत्त थे। उनकी पत्नी वृषभश्री थी उनका एक पुत्र था वृषभसेन। वृषभसेन के मामा धनपति सेठ थे। उनकी पत्नी श्रीकान्ता थी, उनकी एक पुत्री थी धनश्री। वृषभसेन का धनश्री से विवाह हुआ। भोगों को भोगकर दमधर मुनि के पास धर्मश्रवण कर वह मुनि हो गए। धनश्री दुखित होती हुई रोती रहती। तब धनपति के मामा वृषभसेन मुनि को ढूँढकर ले आये और उनका व्रत भंग कर दिया। कुछ दिन वहाँ रहकर वह पुनः मुनि हो गए।

पुनः मामा ने उन्हें छल से लाकर घर के अन्दर जंजीर से बाँधकर रख दिया। यह मेरे व्रतों को पुनः भंग करेगा, ऐसा समझकर संन्यास धारण करके श्वास को रोककर मरे और स्वर्ग गए।

89. अहिमारकेण नृपतौ निपातिते इत्यादि

अहिमारएण णिवदिम्मि मारिदे गहिसमणलिंगेण।
उड्डाहपसमणत्थं सत्थग्गहणं अकासि गणी॥ 2075॥

अस्य कथा-श्रावस्तीनगर्यां राजा जयसेनो, राज्ञी वीरसेना, पुत्रो वीरसेनः, शिवगुप्तवन्दको जयसेनस्य गुरुः। एकदा संघेन सह यतिवृषभनामा भट्टारकस्तत्र समायातः। तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य बौद्धधर्मे मतिं त्यक्त्वा जयसेनः श्रावको जातः। तेन जिनभवनैर्नगरीमण्डलं च भूषितम्। शिवगुप्तवन्दकः कुपितो जयसेनस्य मारणोपायं चिन्तयति। पृथिवीपुरे राजा सुमतिर्बौद्धधर्मरतः। शिवगुप्तेन गत्वा तस्य सर्वं कथितम्। ततस्तेन जयसेनस्य लेखः प्रेषितः - यथा त्वया विरूपकं कृतमद्यापि बौद्धधर्मं गृहाण यदि मामभिलषसि। जयसेनेनोक्तम्-जिनधर्म एव मे। रुष्टेन सुमतिना किमचलसहस्रभटौ जयसेनं हन्तुं प्रेषितौ। तौ च श्रावस्तीं प्रविश्य स्थितौ। अवकाशमलभमानौ व्याघुट्य गतौ। ततः सुमतिना शिवगुप्तेन चोक्तम्- नास्ति स कोऽपि पुरुषो यो जयसेनं मारयति। ततोऽहिमारनाम्ना राजपुत्रेणोपासकेनोक्तम्-देव, किं विसूरयसि अहं तं मारयामीत्युक्त्वा तत्र गत्वा यतिवृषभमुनिसमीपे मायया कायक्लेशकरी [रो] मुनिरभूत्। एकदा जयसेनो देवमुनिवन्दनां कृत्वा सर्वलोकं चैत्यालयाद् बहिर्धृत्वा किंचित्पृष्टम्। चैत्यालयाभ्यन्तरे यतिवृषभमुनिसमीपे प्रविष्टः। तत्र राजाहिमाराचार्यास्त्रयोऽप्येकान्ते स्थिताः। उत्तिष्ठता भूमिलग्नं मस्तकं कृत्वा वन्दना कृता। तत्प्रस्तावेऽहिमारःक्षुरिकया ग्रीवां छित्वा नष्टः। तमालोक्य

---

89. यतिवृषभ आचार्य की कथा

अर्थ : अहिमारक नामक बुद्धधर्म का उपासक पुरुष था। उसने मुनि का वेष धारण किया था। उसने श्रावस्ती नगरी के राजा जयसेन को मार दिया। उस समय अपने ऊपर राजा को मारने का अपवाद आयेगा, इस हेतु से गणि यतिवृषभ नामक आचार्य ने शस्त्र के द्वारा अपना घात कर आराधना की सिद्धि की।

कथा : श्रावस्ती नगरी के राजा जयसेन थे, जिनकी रानी वीरसेना थी। उनके एक पुत्र था वीरसेन। वहीं एक शिवगुप्त नाम का बौद्ध भिक्षु रहता था। जो जयसेन का गुरु था। एक बार संघ के साथ यतिवृषभ नाम के भट्टारक वहाँ आये। उनके पास धर्म श्रवण कर और बौद्ध धर्म से बुद्धि हटाकर जयसेन श्रावक हो गए। उसने जिनेन्द्र भगवान् के चैत्यालयों से नगरी की भूमि को सजा दिया। शिवगुप्त भिक्षु कुपित होकर जयसेन को मारने का उपाय सोचने लगा। पृथ्वीपुर में राजा सुमति था, जो बौद्ध धर्म में रत रहता। शिवगुप्त ने जाकर उसको सब हाल कहा। तब राजा ने जयसेन के लिए एक लेख भेजा कि तुमने यह गलत कार्य किया। यदि तुम मुझको चाहते हो तो आज भी बौद्धधर्म ग्रहण कर लो। जयसेन ने कहा - मुझको तो जिनधर्म ही चाहिए। क्रोधित होकर सुमति ने किमचल और सहस्र भट को मारने के लिए भेजा। वे दोनों श्रावस्ती में प्रवेश कर ठहर गए। मारने का अवसर नहीं मिलने पर दोनों ही वापस लौट गए। तब सुमति और शिवगुप्त ने कहा - क्या कोई ऐसा व्यक्ति नहीं जो जयसेन को मार सके। तब अहिमार नाम के राजपुत्र ने जो कि उपासक था, उसने कहा, प्रभो! क्यों दुःखी होते हो, मैं उसको मार दूँगा, ऐसा कहकर वहाँ जाकर यतिवृषभ मुनि के पास छल से कायक्लेश को करने वाला मुनि हो गया। एक बार जयसेन ने देव और मुनि की वन्दना करके सभी लोगों को चैत्यालय के बाहर रखकर कुछ बातचीत की और चैत्यालय के अन्दर ही यतिवृषभ मुनि के पास बैठ गया। वहाँ राजा जयसेन, अहिमार और आचार्य देव तीनों ही एकान्त में बैठे थे। बाद में जयसेन ने उठकर भूमि पर मस्तक लगाकर वन्दना की। उसी

यतिवृषभाचार्यो राज्ञो रक्तेनाक्षराणि भित्तौ लिखित्वाहिमारेणायं मारित इति दर्शनोद्वोह [?]प्रशमनार्थं क्षुरिकया जठरं विदार्य संन्यासं कृत्वा समाधिना मृत्वा स्वर्गं गतः। वीरसेनकुमारेण द्वौ मृतौ दृष्ट्वा लिखितान्यक्षराणि चावलोक्याचार्यप्रशंसां कृत्वा जिनधर्मे राज्ये च स्थिरः स्थितः।

90. शकटालेनापीत्यादि

सगडालएण वि तधा सत्थग्गहणेण साधिदो अत्थो।

वररुइपओगहेदुं रुट्ठे णंदे महापउमे ॥*2076॥

अस्य कथा - पाटलिपुत्रनगरे राजा नन्दो, मन्त्री शकटालो विचारको वररुचिस्तौ परस्परविरुद्धौ सर्वदान्योन्यापकारप्रवृतौ। एकदा संघेन सह महापद्माचार्यः पाटलिपुत्रमायातः। तत्पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य शकटालो मुनिर्भूत्वा ग्रन्थार्थं परिज्ञाय आचार्यो भूत्वा पुनः पाटलिपुत्रमायातः। नन्दान्तःपुरे चर्यां कृत्वा निजस्थाने गतः। पूर्ववैराद्वररुचिना नन्दस्य कोपप्रवर्धनप्रयोगः कृतः। देव भिक्षामिषेण शकटालस्तवान्तःपुरं सर्वं विध्वंस्य गत इति। ततो नन्देन शकटाले महापद्माचार्ये च रुष्टेन धाटकः प्रेषितः। शकटालमुनिर्द्धाटकमालोक्य वररुचेर्दुष्टं चेष्टितं ज्ञात्वा च्छुरिकया निजोदरं विपाट्य समाधिना मृत्वा स्वर्गं गतः। नन्दोऽपि परीक्षां कृत्वा मुनिं निर्दोषं ज्ञात्वा महापद्माचार्यसमीपे जिनधर्ममाकर्ण्य निन्दां गर्हां च कृत्वा जिनधर्मे रतः।

समय अहिमार ने छुरी से जयसेन की गर्दन काट दी और भाग गया। उसे देखकर यतिवृषभ आचार्य ने राजा के खून से दीवाल पर अक्षर लिख दिए कि अहिमार के द्वारा यह राजा मारा गया है। इस प्रकार जिनदर्शन के प्रति उठने वाले विद्रोह के शमन के लिए उस छुरी से अपना उदर फाड़कर संन्यास धारण कर समाधि से मरणकर स्वर्ग गए। वीरसेन कुमार ने दोनों को मृत देख और लिखे हुए अक्षरों को देखकर आचार्य की प्रशंसा की और जिनधर्म में स्थिर होकर राज्य के कार्यों में स्थित हो गया।

90. शकटाल मुनि की आराधना

अर्थ : शकटाल नामक मुनि ने महापद्म नामक धर्माचार्य के समीप दीक्षा धारण की थी। इन शकटाल मुनि ने वररुचि के कारण शस्त्र से अपना घात कर आराधना की सिद्धि की।

कथा : पाटलिपुत्र नगर के राजा नन्द थे। उनके मन्त्री थे शकटाल और विचारक वररुचि थे। ये दोनों परस्पर विरुद्ध रहते थे तथा दोनों ही हमेशा एक-दूसरे का अपकार करने में लगे रहते। एक बार संघ के साथ महापद्म आचार्य पाटलिपुत्र आये। उनके पास धर्म श्रवण कर शकटाल मुनि हो गए। सभी ग्रन्थों का अच्छी तरह ज्ञान कर आचार्य होकर पुनः पाटलिपुत्र में आये। वह नन्द के अन्तःपुर में चर्या करके अपने स्थान पर चले गए। पूर्व के वैर से वररुचि ने राजा नन्द के क्रोध को बढ़ाने का एक उपक्रम किया। वररुचि ने राजा से कहा - हे प्रभो! शकटाल भिक्षा के छल से आपके अन्तःपुर (रनवास) में घुसकर सब कुछ विध्वंस कर चला गया। तब नन्द ने क्रुद्ध होकर शकटाल और महापद्म आचार्य के लिए आक्रमणकारी को भेजा। शकटाल मुनि ने जब आक्रमणकारी को देखा तो वररुचि की दुष्ट चेष्टा का उन्हें ज्ञान हो गया। तब छुरी से अपना पेट फाड़कर समाधि पूर्वक मरण कर स्वर्ग गए। नन्द राजा ने परिस्थिति की परीक्षा करके मुनि को निर्दोष जाना और महापद्म आचार्य के पास जिनधर्म सुनकर अपनी निन्दा, गर्हा करके जिनधर्म में श्रद्धावान हो गया।

यैरााध्य चतुर्विधामनुपमामाराधनां निर्मलां
प्राप्तं सर्वसुखास्पदं निरुपमं स्वर्गापवर्गप्रदाम्।
तेषां धर्मकथा - प्रपञ्चरचना स्वाराधनासंस्थिता
स्थेया कर्मविशुद्धिहेतुरमला चन्द्रार्कतारावधिः ॥ 1॥
सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः।
कल्याणकालेऽथ जिनेश्वरस्य सुरेन्द्रदन्तीव विराजतेऽसौ॥ 2॥

श्रीजयसिंहदेवराज्ये श्रीमद्धारानिवासिना परापरपञ्चपरमेष्ठिप्रणामोपार्जितामलपुण्यनिराकृत निखिलमलकलङ्केन श्रीमत्प्रभाचन्द्रपण्डितेनाराधनासत्कथाप्रबन्धः कृत इति ॥

जिन्होंने स्वर्ग और मोक्ष को प्रदान करने वाली चारों प्रकार की अनुपम और निर्मल आराधनाओं की आराधना करके सर्व सुख के स्थान अर्थात् सिद्ध गति को प्राप्त कर लिया है, उनकी धर्म कथा की विशद रचना जो कि अमल है और कर्मों की विशुद्धि में कारणभूत है, वह रचना अपनी आत्म आराधना में स्थित रहने वालों में तब तक स्थित रहे जब तक चन्द्रमा, सूर्य और तारे रहें॥ 1॥

सुकोमल और सबको आसानी से समझ में आने वाले पदों के द्वारा मुझ प्रभाचन्द्र ने यह कथा प्रबन्ध की रचना की है। वह जिनेश्वरों के कल्याणकों के समय इन्द्र के ऐरावत हाथी के समान सुशोभित रहे॥ 2॥

जो पहले हुए या अभी वर्तमान में हैं, ऐसे पञ्च परमेष्ठी के प्रणाम से प्राप्त किए निर्मल पुण्य से समस्त मल कलंक से रहित श्रीमान् प्रभाचन्द्र पण्डित ने यह आराधना का सम्यक् कथा प्रबन्ध धारा निवासी श्री जयसिंह देव के राज्य में तैयार किया है।

90 *1. सद्दहयापत्ति ययारोचयफासंतया

सद्दहयया पत्तियया रोचयफासंतया पवयणस्स।

सयलस्स जेण एदे सम्मत्ताराहया होंति ॥*48 *1॥

अत्र कथा - कुरुजाङ्गलदेशे हस्तिनागपुरे राजा विनयंधरो, राज्ञी विनयवती, श्रेष्ठी वृषभसेनो, गृहिणी वृषसेना, पुत्रो जिनदासः। कामासक्तस्य राज्ञो व्याधिर्जातः। वैद्यास्तं चिकित्सितुं कथमपि न शक्नुवन्ति। श्रावकसिद्धार्थमन्त्रिणा पादौषधमुनेः पादप्रक्षालनजलं राज्ञे दत्तं। श्रद्धादिगुणोपेतो राजा पीत्वा नीरोगो जातः। एवं धर्मपानीयं साधुनापि पातव्यम्।

90 *2. अपवादिलिङ्गकटोऽपि

अववादियलिंगकदो विसयासत्तिं अगूहमाणो य।

णिंदण-गरहण-जुत्तो सुज्झदि उवधिं परिहरंतो॥ 87॥

अत्रात्मनिन्दा कथा-काशीदेशे वाणारसीनगर्यां राजा विशाखदत्तो, राज्ञी कनकप्रभा, चित्रकरो विचित्रो, गृहिणी विचित्रपताका, पुत्री बुद्धिमती। विचित्रकरस्य राजगृहं चित्रयतो बुद्धिमत्या भोजनं गृहीत्वागतया तया मणिकुट्टिमलिखितं मयूरपिच्छं गृह्णन् राजातिमूर्खो भणितः॥ तथा अन्यदिने राज्ञश्चित्रं दर्शयन् स तया आहूतः-

---

90 *1. सम्यक्त्व की आराधना

अर्थ : जो सम्पूर्ण प्रवचन का श्रद्धान करते हैं, प्रतीति में लाते हैं, उसमें रुचि रखते हैं और बार-बार उसका स्पर्श करने की भावना करते हैं, वे ही सम्यक्त्व के सच्चे आराधक होते हैं।

कथा : कुरुजांगल देश में हस्तिनागपुर में राजा विनयंधर थे। रानी विनयवती थी। वहीं एक प्रधान व्यक्ति वृषभसेन थे, उनकी गृहणी वृषभसेना थी, उनके पुत्र जिनदास थे। राजा काम में आसक्त होने के कारण व्याधि ग्रस्त हो गए। वैद्य लोग उनकी चिकित्सा करने में सफल नहीं होते। एक श्रावक सिद्धार्थ ने जो कि मन्त्री था, पादौषध (ऋद्धिधारी) मुनि के पाद प्रक्षालन के जल को राजा को दिया। राजा ने श्रद्धा आदि गुणों से युक्त होकर उसे पी लिया, जिससे राजा नीरोग हो गया। इसी प्रकार सिद्धार्थ की तरह धर्म रूपी पानी को सज्जन मनुष्य को पीना चाहिए।

90 *2. आत्म निन्दा, गुण है चुनिन्दा

अर्थ : अपवाद लिंग धारण करने वाले ऐलकादिक भी अपनी चारित्र धारण शक्ति को नहीं छिपाता हुआ कर्म मल निकल जाने से शुद्ध होता है क्योंकि वह अपनी निंदा-गर्हा करता है तथा मन, वचन व काय तीनों योग पूर्वक अपने परिग्रह का त्याग करता है।

कथा : काशीदेश में वाराणसी नगरी में राजा विशाखदत्त रहते थे। उनकी रानी कनकप्रभा थी। वहीं एक विचित्र चित्रकार रहता था। उसकी गृहणी विचित्रपताका और पुत्री बुद्धिमती थी। एक बार विचित्र राजगृह में चित्र बना रहा था तभी बुद्धिमती भोजन लेकर आ गयी। उसी समय राजा मणिमय दीवाल पर मयूर पिच्छ बने होने के आभास से उसे ग्रहण करने लगा तो बुद्धिमती ने कहा राजा अतिमूर्ख है तथा किसी एक दिन राजा का

तात, शीघ्रमागच्छ। रत्नस्य यौवनं याति लग्नम्। तद्वचनाद्राजा पश्यन्नतिमूर्खो भणितः। तथान्यदिने विचित्रितकुड्यप्रच्छादनेऽपनीते द्वितीये कुड्ये विचित्रावलोकने राजा महामूर्खो भणितः। तया राज्ञः पूर्वकारणे कथिते तेन परिणीता सा सर्वान्तःपुरप्रधाना कृता। सेवागतमन्तःपुरं तस्याः शिरसि टोल्लकान् प्रदाय गच्छति। सा दुर्बला जाता। जिनालये प्रविश्य आत्मनिन्दां करोति। जघन्यकुलजाताहम्। पृष्टा राज्ञापि न कथयति दौर्बल्यकारणम्। जिनभवने पूर्वं प्रविष्टेन राज्ञा दौर्बल्यकारणं गर्हणं श्रुत्वा अन्तःपुरं भणित्वा सा सुतरां प्रधानत्वं प्रापिता। एवं क्षुल्लकादिनात्यात्मनिन्दा कर्तव्या। हीनकुलादिकारणेन मनोत्कृष्टलिङ्गलब्धिः।

90 *3. गरिहण अक्खाणं

अयोध्यायां राजा दुर्योधनो, राज्ञी श्रीदेवी, ब्राह्मणः सर्वोपाध्यायो ऽतिवृद्धो, ब्राह्मणी प्रिया, वीरा तरुणी अग्निभूतिच्छात्रेण सहासक्ता उपाध्यायं मारयित्वा छत्रिकायामारोप्य कृष्णरात्रौ श्मशाने निक्षेप्तुं गता। श्मशाने देवतया मस्तके छत्रिकां कीलयित्वा भणिता सा – 'प्रभाते नगरीं प्रविश्य निजदुःकर्म गृहे गृहे नारीणां कथय त्वं येन पतति छत्रिका। तथा कृते पतिता छत्रिका मस्तकात्। सा लोकमध्ये शुद्धा जाता॥'

आलोचनैः गर्हणनिन्दनैश्च व्रतोपवासैः स्तुतिसंकथाभिः।
एभिस्तु योगैः क्षपणं करोमि विषप्रतीघातमिवाप्रमत्तः॥

चित्र दिखाने के लिए उसने राजा को बुलाया। तात! शीघ्र आओ कहकर पिता को बुलाया और कहा रत्न का यौवन चला जा रहा है। उसके शब्द सुनकर राजा उसे देखने लगा तो उसने फिर उसे मूर्ख कहा तथा किसी अन्य दिन दीवाल से छिपा विचित्र बैठा था। वह विचित्र बाहर आया तो दूसरी सामने की दीवाल में वह राजा विचित्र को देखने लगा। जिससे बुद्धिमती ने राजा को महामूर्ख कहा। तब राजा को बुद्धिमती ने पूर्व का कारण बता दिया। राजा ने उससे विवाह कर लिया। वह पूरे रनवास की प्रधान रानी हो गयी। सेवा के लिए आयी अन्य रानी उसके दिमाग में उत्तेजना पैदा कर चली जाती जिससे वह दुर्बल हो गयी। वह जिनालय में जाकर अपनी आत्म निन्दा करती कि भगवन् मैं जघन्य कुल में उत्पन्न हुई हूँ। राजा के पूछने पर भी उसने अपनी दुर्बलता का कारण नहीं बताया। एक बार राजा जिनमन्दिर में पहले ही जाकर बैठ गया। तो राजा ने उसकी दुर्बलता का कारण और उसकी आत्म गर्हा को सुना। तब अपने अन्तःपुर में रानियों को कहकर राजा ने बुद्धिमती को और श्रेष्ठ प्रधानपद पर बिठा दिया। इसी प्रकार क्षुल्लक आदि को भी अपनी अत्यन्त आत्म निन्दा करनी चाहिए। हीनकुल आदि कारणों को लेकर अपनी निन्दा करने से मन में उत्कृष्ट लिंग की प्राप्ति होती है।

90 *3. आत्म गर्हा, तो निर्दोष रहा

अयोध्या के राज दुर्योधन थे। उनकी रानी थी श्रीदेवी। वहीं पर एक ब्राह्मण था, जो अतिवृद्ध था और सबका उपाध्याय था। उसकी प्रिय ब्राह्मणी वीरा थी, जो यौवन से भरपूर थी। वह अग्निभूति छात्र के साथ आसक्त होकर रहती। उपाध्याय को मारकर जब वह छत्री लगाकर कृष्णरात्रि में उसे श्मशान में फेंककर चली, तब श्मशान में देवी ने मस्तक पर छत्री को कीलित कर कहा कि सुबह होने पर नगरी में जाकर अपने दुष्कर्म को घर-घर जाकर स्त्रियों से कह, तब ये छत्री हटेगी अन्यथा नहीं। उसने वैसा ही किया जिससे उसके मस्तक से छत्री गिर गयी। वह सब लोगों के बीच शुद्ध हो गयी। इस प्रकार – ''आत्म आलोचना, गर्हा, निन्दा, व्रत, उपवास, स्तुति, समीचीन कथाओं के द्वारा मन, वचन, काय से विष के समान अपने दोषों का क्षय करता हूँ और अप्रमत्त होता हूँ, ऐसी भावना करनी चाहिए।''

90*4.

आणक्खिदा य लोचेण अप्पणो होदि धम्मसड्ढा य।

उग्गो तवो य लोचो तहेव दुक्खस्स सहणं च ॥ 92॥

अत्र कथा - पूर्वविदेशे वरेन्द्रविषये देवीकोट्टपुरे ब्राह्मणः सोमशर्मा चातुर्वेदः, ब्राह्मणी सोमिल्या, पुत्रावग्निभूतिवायुभूती। तत्रैव विष्णुदत्तोऽपरब्राह्मणो व्यवहारकः, पत्नी विष्णुश्रीः। ऋणं विष्णुदत्तस्य गृहीत्वा एकदा सोमशर्मा मुनिसमीपे धर्ममाकर्ण्य मुनिर्भूत्वा विहृत्य कोट्टपुरमायातो विष्णुदत्तेन दृष्टो धृत्वा द्रव्यं याचितः। तव पुत्रौ दरिद्रौ त्वं द्रव्यं धर्मं वा देहि। ततो वीरभद्राचार्योपदेशेन श्मशाने रात्रौ धर्मं विक्रीणतः सोमशर्ममुनेः प्रत्याख्याद्वेवतया पृष्टं कीट [दृश] स्ते धर्मः। कथितस्तेन मूलोत्तरगुणक्षमादियुक्तः। भणितं देवतया -

धम्मो जयवसियरणं धम्मो चिंतामणी य अग्घे उ।
धम्मो सुहवसुधारा धम्मो कामद्दुहाधेणू ॥ 1॥
किं जंपिएण बहुणा जं जं दीसइ य सुम्मई लोए[1]।
इंदियमणोहिरामं तं तं धम्मफलं सव्वं॥ 2॥
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः सर्वे यज्ञाश्च नारद।
सर्वतीर्थाभिषेकश्च यः कुर्यात्प्राणिनां दया॥ 3॥

---

90 *4. उग्र तप- केशलोंच

अर्थ : लोच करने से अनाकांक्ष वृत्ति आती है तथा आत्मा की श्रद्धा दृढ़ होती है। लोच करने वाले मुनि के उग्र तप अर्थात् कायक्लेश नाम का तप होता है, जिससे उनको दुःख सहने का अभ्यास होता है।

कथा : पूर्व विदेश में वरेन्द्र विषयक देवीकोट्टपुर में एक ब्राह्मण सोमशर्मा थे। वह चारों वेदों के जानकार थे। उनकी ब्राह्मणी सोमिल्या थी। उनके दो पुत्र थे - अग्निभूति और वायुभूति। वहीं पर एक विष्णुदत्त नाम का दूसरा ब्राह्मण था, जो व्यापारी था, उसकी पत्नी थी विष्णुश्री। विष्णुदत्त से सोमशर्मा ने ऋण लिया था। सोमशर्मा एक बार मुनि के पास धर्म श्रवण कर मुनि हो गए। विहार करते हुए वे कोट्टपुर में आ पहुँचे। विष्णुदत्त ने उन्हें देखा तो पहले लिया हुआ धन माँगने लगा। तुम्हारे पुत्र तो दरिद्र हैं इसलिए या तो तुम मेरा धन दो या अपना धर्म दो (अर्थात् धर्म बेच दो, छोड़ दो)। तब वीरभद्र आचार्य के उपदेश से श्मशान में रात्रि में जाकर सोमशर्मा मुनि धर्म को बेचने लगे। सोमशर्मा मुनि के प्रत्याख्यान से एक देवी ने आकर पूछा - तुम्हारा धर्म किस प्रकार का है तो मुनि ने कहा वह मूलगुण, उत्तरगुण और क्षमादि धर्म से युक्त है। तब देवी ने कहा - ''यह धर्म ही जगत् को वशीकरण करने वाला है और यह धर्म ही चिंतामणि के समान अनमोल है। धर्म ही सुख के लिए अमृत की धारा के समान है और यह धर्म ही इच्छित वस्तुओं के देने के लिए कामधेनु के समान है।''

''बहुत कहने से क्या, इस संसार में जो जो सुखमयी वस्तुएँ हैं, इन्द्रिय और मन को मनोरम लगने वाली हैं, वह सब धर्म का ही फल है। जो सभी प्राणियों पर दया रखता है वह सभी वेद न पढ़े, हे नारद! वह सभी यज्ञ भी न करे और सभी तीर्थों का अभिषेक भी न करे॥ 2-3॥''

---

1. सुम्मुतियालोए

इति सर्वोत्तमधर्मस्य नास्ति मूल्यम्। किंतु सर्वोपसर्गनिवारणार्थमेकवारोत्पाटित-एकचिमुटी केशानां मूल्यं ददामीत्युक्त्वा रत्नराशिः कृतः। तथा प्रभाते तत्तपो ऽतिशयमालोक्य तस्यैव समीपे विष्णुदत्तो मुनिर्भूत्वा स्वर्गापवर्गं साधितवान्। अन्ये लोका जिनधर्मे लग्नाः। कोटितीर्थनामा चैत्यालयः।

90 *5. काले विणये उवहाणेत्यादि

काले[1] विणए[2] उवहाणे[3] बहुमाणे[4] तह अणिण्हवणे[5]।
वंजण[6] अत्थ[7] तदुभय[8]विणओ णाणम्मि अट्ठविहो ॥113॥

कालस्याख्यानम् – एको वीरभद्रोऽस्थनिरटव्यामकालेऽहोरात्रं पठन् श्रुतदेवतया दृष्टः। प्रतिबोधनार्थितया गोकुलिकारूपेण आगत्य रात्रौ सुगन्धमधुरमित्यादितक्रं गृहीथेति तस्य पार्श्वे बहुवारं भणितम्। मुनिना सोक्ता ग्रहिलासि त्वमत्र। को रात्रौ तक्रं गृह्णाति। त्वं ग्रहिलोऽसि जिनागममकाले पठसि। नक्षत्रमालोक्य प्रबुद्धो गुरुसमीपं गत्वालोच्य द्रव्यादिशुद्धया पठनतया पुनर्देवतयैकदा दृष्टः पूजितश्च परलोकं गतः।

90 *6. (1) अकालस्याख्यानम्

शिवनन्दीमुनिरेकदा श्रवणनक्षत्रोदये स्वाध्यायकालो भवतीत्युपदेशं प्राप्याकाले पठन् मिथ्यात्वा-समाधिमरणेन गङ्गायां मत्स्यो जातः। एकदा पुलिने साधुपाठमाकर्ण्य जातिस्मरो भूत्वात्मनिन्दां कृत्वा सम्यक्त्वाणुव्रतात् स्वर्गे देवः।

इसलिए कि – इस सर्वोत्तम धर्म का कोई मूल्य नहीं है। इसलिए आपके सर्व उपसर्ग का निवारण करने के लिए एक बार में उखाड़े हुए एक चिमुटी केशों का मूल्य दिए देती हूँ, ऐसा कहकर उसने रत्न राशि बना दी। तब सुबह होने पर उनके तप का अतिशय देखकर उनके ही पास विष्णुदत्त मुनि हो गए और स्वर्ग तथा मोक्ष को साध लिया तथा अन्य लोग भी जिनधर्म में श्रद्धावान हो गए और कोटि तीर्थ नाम का एक चैत्यालय भी बना।

90 *5. ज्ञान शुद्धि

अर्थ : काल, विनय, उपधान, बहुमान, अनिह्नव, व्यंजन, अर्थ और तदुभय ऐसे ज्ञान विनय के आठ भेद हैं।

कथा : एक वीरभद्र अस्थनि जंगल में अकाल में भी दिन-रात पढ़ते रहते। श्रुत देवी ने उन्हें देखा। उन्हें सम्बोधित करने के लिए एक ग्वालिका का रूप बनाकर वह देवी आयी। रात्रि में मुनि के पास आकर बहुत बार कहने लगी कि, यह छाछ सुगन्धित है मीठा है और अनेक प्रकार के गुण से युक्त है, इसे ले लो। मुनि ने उसको कहा तुम बड़ी मूर्ख हो। रात्रि में तक्र कौन लेगा तो उसने कहा, आप मूर्ख हैं, जो जिनागम को अकाल में पढ़ते हैं। जब मुनि ने नक्षत्र देखा तो उन्हें ज्ञान हुआ और अपनी आलोचना करने गुरु के पास गए। फिर द्रव्य आदि की शुद्धि पूर्वक पढ़ते हुए उन्हें देवी ने देखा तो उनकी पूजा की। बाद में मुनिराज समाधि पूर्वक परलोक चले गए।

90 *6. (1) अकाल स्वाध्याय की कथा

एक बार शिवनन्दी मुनि ने यह उपदेश प्राप्त किया कि श्रवण नक्षत्र का उदय स्वाध्याय के लिए अकाल हैं, फिर भी अकाल में पढ़ने से वह मिथ्यात्व और असमाधि से मरण करके गंगा में मच्छ हुए। एक बार नदी के तट पर एक साधु पाठ कर रहे थे, उसे सुनकर उन्हें जातिस्मरण हो गया और आत्म निन्दा कर सम्यक्त्व और अणुव्रत से युक्त हो स्वर्ग में देव हुए।

90 *7. (2) विनयस्याख्यानम्

वत्सदेशे कौशाम्बीपुर्यां राजा धनसेनो भगवद्भक्तः, राज्ञी धनश्रीः श्राविका। सुप्रतिष्ठनामा न गतो राजाग्रासने भुङ्क्ते यमुनानद्यां जलस्तम्भिनीविद्यासामर्थ्येन जापं करोति। लोके विस्मयो जातः। अथ विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां रथनूपुरचक्रवालपुरे विद्याधरो राजा, विद्युत्प्रभः श्रावकः, राज्ञी विद्युद्वेगा भगवद्भक्ता। एकदा वन्दनार्थं तौ कौशाम्बीमागतौ। माघमासे यमुनानद्यां तस्य स्नानं जलोपरि जापं चालोक्य विद्युद्वेगयातिप्रशंसा कृता। ततो राज्ञा सह तस्या वादः। भणितं विद्युत्प्रभेण-आगच्छास्य दृढत्वमज्ञानित्वं च दर्शयामि। ततश्चाण्डालरूपेण यमुनोपरि गत्वा द्वाभ्यां कृतचर्ममांसप्रक्षालनेन सर्वं जलं दूषितम्। ततो रुष्टेन दुष्टं भणित्वा नद्युपरि गत्वा तेन स्नानादिकं प्रारब्धम्। पुनरपि गत्वा चाण्डालाभ्यां तथा जलं दूषितम्। पुनः सोऽपि तथोपरि गतः। एवं बहुवारान् चाण्डालाभ्यां दूषिते जले स्नानजपगर्वसुशुचित्वानि त्यक्त्वासौ मोहं गतः। चाण्डालाभ्यां तत उद्यानप्रासाददोलाभोजन गीतवाद्यादिगगनगमनं दर्शितम्। तस्मादेव विद्याधराणामपीदृशी विद्या नास्ति यादृशी चाण्डालानाम्। अनयाहं सर्वं जगद्वञ्चयामीति ध्यात्वा तत्समीपं गत्वा पृष्टं तेन-यूयं कस्मादागताः कथमीदृशमाश्चर्यं कुरुतः। कथितं मातङ्गेन-त्वमपि न जानासि। मातङ्गोऽहं नमस्कर्तुमागतस्य मम गुरुणा तुष्टेन मे विद्या दत्ता। तया सर्वमिदं करोमि। तेनोक्तम्- प्रसादं कृत्वा मह्यं विद्यामिमां देहि। चाण्डालेनोक्तम्-त्वमुत्तमकुलोऽकृत्रिमवेदपाठकः। विद्या

90 *7. (2) विनय गुण की महत्ता

वत्स देश में कौशाम्बी पुरी के राजा धनसेन थे, जो भगवत् भक्त अर्थात् वैष्णव भक्त थे। उनकी रानी धनश्री थी, जो श्राविका थी। वहीं एक सुप्रतिष्ठ नाम का (वैष्णव साधु) था, जो राजा के आगे आसन पर बैठ भोजन करता और यमुना नदी में जल स्तम्भिनी विद्या की सामर्थ्य से जाप करता। जिसे देख लोगों को बड़ा आश्चर्य होता तथा विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर चक्रवालपुर के विद्याधर राजा विद्युतप्रभ थे, जो श्रावक थे, उनकी रानी विद्युद्वेगा थी, जो वैष्णव भक्त थी। एक बार वन्दना करने के लिए दोनों कौशाम्बी में आये। माघ के महीने में यमुना नदी में उन सुप्रतिष्ठ साधु को स्नान करते हुए और जल के ऊपर जाप करते देख विद्युद्वेगा ने अत्यधिक प्रशंसा की, जिससे राजा के साथ उसका वाद-विवाद हो गया। विद्युत्प्रभ ने कहा आओ इसकी दृढ़ता और अज्ञानता को दिखाता हूँ। तब चाण्डाल का रूप बना दोनों यमुना के ऊपर गए और दोनों ने पड़े हुए चर्म, माँस आदि को धोकर सारा जल दूषित कर दिया। जिससे सुप्रतिष्ठ ने क्रोधित हो उन्हें दुष्ट कहा और नदी के ऊपर जाकर उसने स्नान आदि प्रारम्भ कर दिया। पुनः फिर जाकर दोनों चाण्डालों ने जल को दूषित कर दिया तो फिर वह और ऊपर (आगे) चला गया। इस प्रकार बहुत बार चाण्डालों ने जल दूषित किया तो उसने स्नान, जप और गर्व पवित्र क्रियाओं को छोड़ दिया तथा मोह को प्राप्त हुआ क्योंकि वहाँ चाण्डालों ने एक बगीचा में महल, झूला, भोजन, गीत, बाजे आदि तथा आकाश में जाना आदि क्रिया दिखायी इसे देखकर साधु ने सोचा ऐसी विद्या तो विद्याधरों के पास भी नहीं है, जैसी इस चाण्डाल को प्राप्त हैं। इसके द्वारा तो हम सारे संसार को ठग लेंगे, ऐसा सोचकर चाण्डाल के पास जाकर उसने पूछा - तुम लोग कहाँ से आये हो और ऐसे आश्चर्य क्यों कर रहे हो। तब चाण्डाल ने कहा - तुम नहीं जानते हो। मैं एक चाण्डाल हूँ, मैं अपने गुरु को प्रणाम करने के लिए आया तो मेरे गुरु ने प्रसन्न होकर मुझको विद्या दे दी, जिससे मैं यह सब करता हूँ। सुप्रतिष्ठ साधु ने कहा कृपा करके मुझको भी यह विद्या दे दो। चाण्डाल ने कहा आप उत्तम कुल के हैं और अकृत्रिम वेद के पाठी हो तथा विद्या विनय से सिद्ध

विनयेन सिध्यति। यत्र मां पश्यसि तत्र यदि मे साष्टाङ्गप्रणामं करोषि भवतां प्रसादेन जीवामीति जल्पसि च तदा तव सिध्यति विद्या। यद्येवं न करोषि तदा नश्यत्येव सिद्धापि। तेनोक्तम्-यथाज्ञापयथः तथा करोमि। इत्युक्ते विधिना विद्यां दत्वा निजवसतिं तौ चाण्डालौ गतौ। सोऽपि तया विद्यया विकुर्वाणां कृत्वा सिद्धा विद्येति ज्ञात्वा बृहद्वेलायां भोजनार्थं राजसमीपं गतः। पृष्टो राज्ञा-भगवन्, किमद्य वेलातिक्रमः। कथितं तेन बहुकाले तपोमाहात्म्यादद्य हरिहरब्रह्मादिदेवा मां पूजयितुमागताः। तेन बृहती वेलेति गगने गमनागमनादिकमपि मे जाता। राज्ञा भणितम् - भगवन् प्रभाते तत्सर्वं मे दर्शय। मठिकायां प्रभाते दर्शयिष्यामीत्युक्त्वा भोजनं कृत्वा गतः। स प्रभाते मठिकायां राजादीनां ब्रह्मादिकं दर्शयतस्तस्य चाण्डालौ समायातौ। निकृष्टचाण्डालावित्यादिकेन भणितेन नष्टा सा विद्या। पृष्टं राज्ञा-भगवन्, किमत्र कारणम्। तेन च यथार्थमेव कथिते राज्ञा प्रणम्य चाण्डालो विद्या याचितः। चाण्डालेन पूर्वविधाने कथिते त्रिः परीत्य प्रणम्य दिव्यां गृहीत्वा परीक्ष्य राजा नगरीं प्रविष्टः। अन्यदास्थानस्थिते राज्ञि स चाण्डालः समायातो राज्ञा कथितविधिना प्रणतः। तथा विद्याधरत्वं प्रकटीकृत्य विद्युत्प्रभेणान्या विद्या दत्ता। धनसेनस्य पश्चात्स धनसेनो विद्युद्वेगा अन्ये च श्रावका जाताः। एवं साधुनापि विनयं कर्तव्यः॥

90 *8. (3) उपधानाख्यानम्

अहिच्छत्रनगरे राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, वसुपालकारितसहस्रकूटचैत्यालये तद्वचने श्रीपार्श्वनाथ-

---

होती है इसलिए जब मुझे देखते हो तभी मुझको साष्टांग प्रणाम करो और कहो आपकी कृपा से ही मैं जीता हूँ तो तुमको विद्या सिद्ध होगी। यदि ऐसा नहीं करोगे तो सिद्ध हुई विद्या भी नाश को प्राप्त होगी, तब साधु ने कहा जैसी आज्ञा दोगे वैसा ही करूँगा। इस प्रकार कहकर विधिपूर्वक उसे विद्या देकर अपने स्थान पर दोनों चाण्डाल चले गए। उसने भी उस विद्या से विक्रिया करके जान लिया कि विद्या सिद्ध हो गयी तब बहुत देर से भोजन करने के लिए राजा के पास गया। राजा ने पूछा - प्रभो! आज देरी क्यों हुई। तो उसने कहा प्रभो बहुत समय तक तप करने से उसके माहात्म्य से आज हरि, हर, ब्रह्मा आदि देव मेरी पूजा करने के लिए आये थे। जिससे बहुत समय मेरा आकाश में गमन-आगमन आदि में चला गया। राजा ने कहा - भगवन्! सुबह मुझे भी सब कुछ दिखाओ। मठिका में सुबह दिखाऊँगा ऐसा कहकर भोजन करके चला गया। वह प्रभात समय में जब मठिका में राजा आदि के लिए ब्रह्मा आदि को दिखा रहा था तभी दोनों चाण्डाल आ पहुँचे। ये निकृष्ट चाण्डाल हैं, ऐसा कहने पर उसकी विद्या नष्ट हो गयी। राजा ने पूछा - भगवन्! क्या हुआ? तो उसने राजा को ठीक बात बता दी। राजा ने प्रणाम कर चाण्डाल से विद्या माँग ली। चाण्डाल ने पूर्व विधि के लिए कहा तो राजा ने तीन परिक्रमा लगा उसे प्रणाम कर विद्या को लेकर और परीक्षा कर नगरी में प्रवेश कर गया। एक बार राजा किसी स्थान पर विराजमान थे तभी वह चाण्डाल आ गया। राजा ने बतायी हुई विधि से प्रणाम किया, तब विद्याधर का असली रूप दिखाया तथा विद्युतप्रभ ने अन्य भी धनसेन को विद्यायें दीं। बाद में धनसेन, विद्युद्वेगा तथा और भी लोग श्रावक हो गए। इसलिए साधु को भी विनय करनी चाहिए।

90 *8. (3) अवग्रह अर्थात् नियम लेना-स्वाध्याय का अंग है

अहिच्छत्र नगर में राजा वसुपाल थे उनकी रानी वसुमती थी। वसुपाल ने एक सहस्रकूट चैत्यालय

90 * 23. भावाणुरायरत्त

भावाणुरागपेमाणुरागमज्जाणुरागरत्तो वा।

धम्माणुरागरत्तो य होहि जिणसासणे णिच्चं ॥ 737 ॥

अत्र भावानुरागरक्ताख्यानम्-अवन्तीदेशोज्जयिन्यां राजा धर्मपालो, राज्ञी धर्मश्रीः, श्रेष्ठी सागरदत्तः, पत्नी सुभद्रा, पुत्रो नागदत्तः। सुभद्रासमुद्रदत्तयोः पुत्री प्रियङ्गुश्रीः। सा नागदत्तेन परिणीता प्रियङ्गुश्रीः। तस्या मैथुनिको नागसेनो वैरं गृहीत्वा स्थितः। एकदोपोषितं धर्मानुरागयुक्तं चैत्यालये कायोत्सर्गे स्थितं नागदत्तमालोक्य नागसेनेन निजं हारं तस्य पादोपरि धृत्वा अयं चौर इति पूत्कृतम्। एतदाकर्ण्यालोक्य तलारेण राज्ञः कथितम्-न चौर इति। विजानतापि राज्ञा मारणीयो भणितः। नागदत्तशिरश्छेदार्थं खड्गो यो वाहितः स हारस्तस्य कण्ठे पुष्पमालासहितो बभूव देवैः साधुकारितश्च। तदतिशयदर्शनाद्धर्मपालनागदत्तौ मुनी जातौ। बहवो जिनधर्मरताश्च॥

90 *24. प्रेमानुरागरक्ताख्यानम्

विनीतदेशे साकेतानगर्यां राजा सुवर्णवर्मा, राज्ञी सुवर्णश्रीः, इभ्यः श्रेष्ठी सुमित्रो जिनशासनप्रेमानुरागरक्तः

---

90 * 23. भावानुराग कथा

अर्थ : कितने ही लोग भावानुरागी रहते हैं, अर्थात् जो जिनेश्वर ने वस्तु का स्वरूप कहा है वह सत्य ही है ऐसा पक्का श्रद्धान करने वाले मनुष्य को तत्त्व का स्वरूप मालूम नहीं भी हो, तो भी जिनेश्वर का कहा हुआ तत्त्व स्वरूप कभी झूठा नहीं होता, ऐसी श्रद्धा करते हैं, इसको भावानुराग कहते हैं। जिसके प्रति अनुराग है उसको बार-बार समझाकर सन्मार्ग में लगाना यह प्रेमानुराग है। जन्म से लेकर आपस में स्नेह से युक्त रहना मज्जानुराग है, किन्तु हे क्षपक! तुम जिनशासन में धर्मानुराग को धारण करो।

भावानुराग की कथा : अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी में राजा धर्मपाल थे। रानी धर्मश्री। सेठ सागरदत्त और पत्नी सुभद्रा थी। राजा का बेटा नागदत्त था। सुभद्रा और समुद्रदत्त की पुत्री प्रियंगुश्री थी। वह प्रियंगुश्री नागदत्त से ब्याही गयी। प्रियंगुश्री के मामा नागसेन ने इस कारण उससे बैर बाँध लिया। एक बार नागदत्त धर्म में अनुराग से युक्त हुआ उपवास के साथ चैत्यालय में कायोत्सर्ग से खड़ा था। नागसेन ने नागदत्त को इस प्रकार खड़ा देखकर अपने हार को उसके पैरों पर रख दिया और कहने लगा यह चोर है, इस प्रकार चिल्लाने की आवाज सुनकर कोतवाल ने राजा को कहा यह चोर नहीं है। राजा ने जानते हुए भी उसे मार देने के लिए कहा। नागदत्त का सिर काटने के लिए जो तलवार चलायी वह उसके गले में पुष्पमाला सहित हार हो गया। देवों ने साधुवाद किया। इस अतिशय को देखकर धर्मपाल और नागदत्त दोनों मुनि हो गए और बहुत से लोग जिनधर्म में श्रद्धा को प्राप्त हुए।

90 * 24. प्रेमानुराग कथा

विनीत देश की साकेत नगरी के राजा सुवर्ण वर्मा और रानी सुवर्णश्री थी। व्यापारी सेठ सुमित्र जिनशासन में प्रेम, अनुराग से संलग्न रहता। एक बार वह पर्व की रात में अपने घर में कायोत्सर्ग से खड़ा था।

पर्वरात्रौ निजगृहे कायोत्सर्गेण स्थितः। एकदा देवेन परीक्षणार्थं स्त्र्यादिहरणेन परीक्षितो न चलितः। देवो गगनगामिनीं विद्यां दत्वा गतः। तदतिशयाल्लोका मुनयः श्रावका जाताः।

90 *25. मज्जानुरक्ताख्यानम्

उज्जयिन्यां राजा रागबुद्धिः, सार्थवाहजिनदत्तवसुमित्रौ जिनधर्मे मज्जानुरागौ श्रावकौ वाणिज्यार्थमुत्तरापथं गतौ। अवसीरमालवरपर्वतयोर्मध्ये बिलवत्यटव्यां सार्थे चौरैर्गृहीते अटवीं प्रविष्टौ तौ दिङ्मोहे तु जाते जिनदत्तवसुमित्रौ जिनधर्मे मज्जानुरागरक्तौ संन्यासे स्थितौ। सोमशर्मा ब्राह्मणो ऽपि तयोः पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य संन्यासे स्थितः। कीटकामर्कटोपसर्गं समाध्यास्य सौधर्मे महर्द्धिको देवो भूत्वा श्रेणिकस्याभयकुमारनामा पुत्रो जातः। जिनदत्तवसुमित्रौ सौधर्मे महर्द्धिकदेवौ जातौ।

90 *26. धर्मानुरागरक्ताख्यानम्

अवन्तीदेशोज्जयिन्यां राजा धनवर्मा, राज्ञी धनश्रीः, पुत्रो लकुचो ऽतीवमानगर्वी। कालमेघम्लेच्छेन तद्देशोपद्रवे स्वयं गत्वा संग्रामे लकुचेन स बद्धः। तुष्टेन राज्ञा तस्य वरो दत्तः। कामचारं वरं याचयित्वा तेनोज्जयिनीस्त्रियो विधर्मिताः। पुङ्गलश्रेष्ठिनो नागधर्मा अतीव रूपवती विधर्मिता। पुङ्गलो वैरं गृहीत्वा स्थितः। एकदोद्याने क्रीडायां मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य लकुचो मुनिर्भूत्वा विहृत्योज्जयिन्यां महाकालवने प्रतिमायोगेन स्थितः।

एक देव ने उनकी परीक्षा के लिए स्त्री आदि का हरण कर परीक्षा ली किन्तु सेठ सुमित्र चलायमान नहीं हुए। तब देव उन्हें गगनगामिनी विद्या देकर चले गए। इस अतिशय को देखकर कुछ लोग मुनि हुए और कुछ श्रावक बन गए।

90 *25. जिनमतानुराग की कथा

उज्जयिनी के राजा रागबुद्धि थे। वहीं दो व्यापारी जिनदत्त और वसुमित्र थे, जो जिनधर्म में मज्जानुराग (अर्थात् धर्म भावों के साथ-साथ मित्रता के साथ रहना) रखने वाले थे और श्रावक थे। वे दोनों एक बार व्यापार के लिए उत्तर दिशा की ओर गए। अवसीर और मालवर पर्वत के बीच एक बिलवति जंगल में दोनों व्यापारियों को चोरों ने पकड़ लिया। जंगल में दोनों ने मज्जानुराग से संन्यास ग्रहण कर लिया। सोमशर्मा ब्राह्मण ने भी दोनों के पास धर्म श्रवण कर संन्यास धारण कर लिया। वह सोमशर्मा ब्राह्मण कीड़ों का और बन्दरों का उपसर्ग सहन कर सौधर्म स्वर्ग में महान् ऋद्धिधारी देव हुआ तथा जिनदत्त और वसुमित्र सौधर्म स्वर्ग में महर्द्धिक देव हुए।

90 *26. धर्मानुराग कथा

अवन्ती देश की उज्जयिनी नगरी के राजा धनवर्मा और रानी धनश्री थी। उनका पुत्र लकुच था। लकुच अत्यन्त मान से गर्वित रहता था। कालमेघ म्लेच्छ ने उसके देश पर उपद्रव किया तो लकुच ने स्वयं जाकर कालमेघ म्लेच्छ से युद्ध किया और बाँध लाया। राजा ने उससे प्रसन्न होकर उसे वर दिया। उसने इच्छानुसार प्रवृत्ति करने का वर माँग लिया और उज्जयिनी की स्त्रियों के साथ धर्म विरुद्ध व्यवहार करने लगा। पुंगल सेठ की नागधर्मा नाम की अत्यन्त रूपवती सेठानी के साथ उसने व्यभिचार किया। जिससे पुंगल ने वैर धारण कर लिया। एक बार बगीचे में क्रीड़ा करते हुए मुनि के पास लकुच ने धर्म श्रवण किया और मुनि होकर विहार करते हुए

पुङ्गलेन रात्रौ गत्वा वैराल्लोहशलाकाभिः शरीरं सर्वं संधिषु कीलितं धर्मानुरागेण परलोकं गतः।

90 *27. जिणभत्तीए

एक्का वि जिणे भत्ती णिद्दिट्ठा दुक्खलक्खणासयरी।

सोक्खाणमणंताणं होदि हु सा कारणं परमं ॥ 737 ✲1॥

अस्य कथा – विदेहदेशे मिथिलानगर्यां राजा पद्मः। स पापर्द्धिं गतः कालगुहायां मुनिपार्श्वे धर्ममाकर्ण्य सम्यक्त्वं गृहीत्वा पृच्छां कृतवान् – भगवन्, किमन्यो ऽपि को ऽप्येवं वक्तुं जानाति तथा दीप्तिवांश्च। कथितं मुनिना–अङ्गदेशे चम्पायां वासुपूज्यतीर्थकरा वक्तारो दीप्तिमन्तश्च। ततो जिनभक्तिरागः प्रभाते वन्दनार्थं गच्छतस्तस्य धन्वन्तरिविश्वानुलोमवरदेवाभ्यामुपसर्गं कृत्वा सर्वरुजापहारे हारो योजनघोषा भेरी च दत्ता। स च तीर्थकरं वन्दित्वा गणधरो जातः।

90 *28. दंसणभट्ठो भट्ठो

दंसणभट्ठो भट्ठो ण हु भट्ठो होदि चरणभट्ठो हु।

अत्र कथा – काम्पिल्यनगरे राजा ब्रह्मरथो, राज्ञी रामिल्या, तत्पुत्रोऽरिष्टनेमितीर्थे ब्रह्मदत्तो

उज्जयिनी में महाकाल वन में प्रतिमायोग से स्थित हुए। पुंगल ने रात में जाकर वैर होने से लोह की शलाकाओं को मुनि के पूरे शरीर की संधियों में कील दिया। इस प्रकार लकुच मुनि धर्म में अनुराग धारण करते हुए परलोक चले गए।

90 *27. जिनेन्द्र भक्ति

अर्थ : एक जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति ही समस्त दुःखों का नाश करने वाली कही गयी है। वह ही अनन्त सुख का उत्कृष्ट कारण है।

कथा : विदेह देश की मिथिला नगरी के राजा पद्म थे। वह शिकार खेलने गए। एक कालगुफा में मुनि के पास धर्म श्रवण कर सम्यक्त्व ग्रहण कर उन्होंने पूछा – भगवन्! क्या कोई और भी आपकी तरह इस प्रकार बोलना जानता है और आपके जैसा दीप्त शरीर धारण करने वाला है। मुनिराज ने कहा – अंग देश की चम्पा नगरी में वासुपूज्य तीर्थंकर श्रेष्ठ वक्ता हैं और दीप्तिवान है। तब जिनभक्ति में अनुराग रखता हुआ सुबह वन्दना के लिए चला। उन पर धन्वन्तरि, विश्वानुलोम देवों ने उपसर्ग किया, बाद में उपसर्ग के सन्ताप को दूरकर उन्हें हार और योजन तक आवाज करने वाली भेरी देकर चले गए। वह राजा पद्म तीर्थंकर की वन्दना कर गणधर हो गए।

90 *28. दर्शन भ्रष्ट ही भ्रष्ट है

अर्थ : जो पुरुष सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हुआ है, वह भ्रष्ट ही समझना चाहिए किन्तु चारित्र भ्रष्ट जीव भ्रष्ट जीव नहीं है।

कथा : काम्पिल्य नगर में राजा ब्रह्मरथ थे। उनकी रानी रामिल्या थी। उनका पुत्र अरिष्टनेमि तीर्थंकर के

द्वादशसकलचक्रवर्ती। एकदा विजयसेनसूपकारेण भोक्तु मुपविष्टस्यात्युष्णा क्षैरेयी दत्ता। भोक्तुमसमर्थेन तेन हत्वा स मारितः। स च मृत्वा लवणसमुद्रे रत्नद्वीपे व्यन्तरो देवो भूत्वा विभङ्गज्ञानेन वैरं ज्ञात्वा परिव्राजकरूपेण मृष्टकेलकादिफलानि चक्रवर्तिने दत्तवान्। तानि भक्षयित्वा तेनान्तःपुरादिकयुक्तं तं समुद्रमध्ये नीत्वा मारणार्थमुपसर्गः कृतः। तेन पञ्चनमस्कारान् स्मरन्तो मारयितुं न शक्यन्ते। तेन च ततस्तेन प्रकटीभूय प्रचार्य भणितो ब्रह्मदत्तः- रे त्वां मारयामि, किंतु यदि जिनशासनं नास्ति भणित्वा पञ्चनमस्कारानालिख्य पादेन विनाशयिष्यसि तदा न मारयामि। एतस्मिन् कृते जलमध्ये तेन स मारितः। सप्तमं नरकं गतः। मन्त्रिपुरोहितान्तःपुराणि सम्यक्त्वपञ्चनमस्कारस्मरणात् स्वर्गे देवा बभूवुः।

90 *29. दंसणममुयंतस्स

दंसणममुयंतस्स हु परिवडणं णत्थि संसारे॥ 739॥

अत्र कथा- पाटलिपुरनगरे श्रेष्ठी जिनदत्तो, भार्या जिनदासी, पुत्रो जिनदासः सुवर्णद्वीपाद्धनमुपार्ज्य व्याघुटितो योजनशतविस्तारप्रोहणस्थेन कालिदेवेन भणितः। भो जन, जिनमतं च नास्तीति भण। अन्यथा मारयामि त्वाम्। जिनदासादिभिः वर्धमानस्वामिनं नमस्कृत्य मस्तकविन्यस्तहस्तैर्भणितम्। सर्वोत्तमः जिनो जिनमतं चास्त्येव। ब्रह्मदत्तचक्रिकथा च सर्वेषां जिनदासेन कथिता। ततः उत्तरकुरुस्थेनासनकम्पनादनावृत्य यक्षेण चक्रं

तीर्थं में ब्रह्मदत्त नामक बारहवाँ सकल चक्रवर्ती हुआ। एक बार विजयसेन रसोइया ने भोजन करने के लिए बैठे हुए चक्रवर्ती को बहुत गर्म खीर परोसी। चक्रवर्ती खीर गर्म होने से खाने में असमर्थ हुआ तो उसी रसोइये पर उसे फेंककर मार दिया। वह मरकर लवण समुद्र में रत्नद्वीप में व्यन्तर देव हुआ। विभंग ज्ञान से वैर जानकर एक परिव्राजक साधु का रूप बनाकर मीठा केला आदि फल चक्रवर्ती को दिए। उन फलों को खाकर वह देव अन्तःपुर आदि से युक्त चक्री को समुद्र के बीच ले गया और मारने के लिए उपसर्ग किया। वह चक्री पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करता। जिससे उसे मारने में देव सक्षम नहीं हुआ। तब उस देव ने अपना असली रूप बनाया और विचार कर कहा ब्रह्मदत्त मैं तुमको मारता हूँ, किन्तु यदि जिनशासन नहीं है, ऐसा कहकर पञ्च नमस्कार को लिखकर पैरों से मिटा दो तो नहीं मारूँगा। चक्री ने ऐसा ही कर दिया तब देव ने उसे जल के बीच में मार दिया। चक्रवर्ती मरकर सातवें नरक गया। मन्त्री, पुरोहित और रानियाँ सम्यक्त्व के साथ पञ्च नमस्कार मंत्र का स्मरण करने से स्वर्ग में देव हुए।

90 *29. सम्यग्दर्शन में दृढ़ता

अर्थ : सम्यग्दर्शन को नहीं छोड़ने वाले जीव का संसार में पतन नहीं होता।

कथा : पाटलिपुर नगर में सेठ जिनदत्त थे। उनकी पत्नी जिनदासी थी और पुत्र जिनदास। जिनदास सुवर्णद्वीप से धन उपार्जन कर वापस लौट रहा था तो सौ योजन विस्तार के जहाज पर बैठे कालिदेव ने कहा - भो जन! जिनमत नहीं है, ऐसा कहो अन्यथा तुमको मार दूँगा। जिनदास आदि ने वर्धमान भगवान् को नमस्कार कर मस्तक पर अंजुली रखकर कहा - जिनेन्द्र भगवान् सर्वोत्तम हैं और जिनमत भी है तथा ब्रह्मदत्त चक्री की कथा जिनदत्त ने सबको सुना दी जिससे उत्तरकुरु में बैठे हुए यक्ष का आसन कम्पायमान हो गया। उसने वापस नहीं आने वाला एक चक्र छोड़ा। उस चक्र ने मुकुट पर प्रहार किया और समुद्र की अग्नि में डाल दिया।

मुक्तम्। तेन मुकुटे प्रहतो वडवामुखे पतितः। कालिराक्षसः श्रिया जिनदासादीनामर्घ्यो दत्तः। गृहागतेन जिनदासेनावधिज्ञानी वैरकारणं पृष्टः। तेन कथितमिति।

90 *30. द्वितीयं दर्शनमुखाख्यानम्

लाटदेशे द्रोणीमतिपर्वतसमीपे गलगोद्रहपत्तने श्रेष्ठी जिनदत्तो, भार्या जिनदत्ता, पुत्री जिनमतिः। द्वितीयः श्रेष्ठी नागदत्तो, भार्या नागदत्ता, पुत्रो रुद्रदत्तः। रुद्रदत्तनिमित्तं नागदत्तेन जिनमतिः याचिता। माहेश्वरस्य न दत्ता धर्मनाशभयात्। एको धर्म इति भणित्वा नागदत्तरुद्रदतौ समाधिगुप्तमुनिपार्श्वे मायया श्रावकौ जातौ। ततो जिनमतिं परिणीय पुनर्माहेश्वरौ जातौ। रुद्रदत्तो भणति- त्वं मदीयं धर्मं गृहाण। जिनमत्या भणितम्-न युक्तं मे धर्मं त्यक्तुम्, त्वं मदीयं धर्मं गृहाण। रुद्रदत्तेनापि भणितम्। न युक्तं मे शिवधर्मं त्यक्तुम्। निजनिजधर्मकथन-विवादाज्झकटकश्च नित्यं तयोः। रुद्रदत्तेन च भणितम्- वसतिं यासि मुनिभ्यो दानं ददासि यदि तदा त्वां निर्द्धाटयामि। जिनमत्या भणितम् - त्वमपि यद्येवं निजधर्मं करोषि तदाहं म्रिये। गृहे निजनिजधर्मस्तयोः। एकदा पत्तनपूर्वदिशि महाटव्यां ये भिल्लास्तैः पत्तने अग्निना सर्वतः प्रज्वालिते जिनमत्या भणितो रुद्रदत्तः-यो देवोऽद्य रक्षति तस्य धर्मो द्वयोरपि। एवमस्त्विति भणित्वा श्रावणं कृत्वा रुद्रदत्तेन रुद्राय अर्घ्यो दत्तः। तदपि न विशेषः। ततो ब्रह्मादिभ्योऽपि दत्ते न विशेषः। ततो जिनमतिः पञ्चपरमेष्ठिभ्यो अर्घ्यं दत्वा पतिपुत्रवधूः समीपे कृत्वा कायोत्सर्गेण स्थिता। तत्क्षणादुपसर्गोपशान्तिरभूत्। तमतिशयमालोक्य रुद्रदत्तादयो बहवः श्रावका जाताः।

कालिराक्षस ने यह देख अपनी विभूति से जिनदास आदि को अर्घ्य समर्पित किया। घर पर आकर जिनदास ने अवधिज्ञानी से इस वैर का कारण पूछा। उन्होंने सब यथावत् बता दिया।

90 *30. दर्शन आख्यान

लाट देश में द्रोणीमति पर्वत के निकट गलगोद्रह नगर में एक सेठ जिनदत्त थे। जिनकी पत्नी जिनदत्ता थी। उनकी पुत्री जिनमति थी। वहीं एक दूसरे सेठ नागदत्त रहते थे। जिनकी पत्नी नागदत्ता और पुत्र रुद्रदत्त था। रुद्रदत्त के लिए नागदत्त ने जिनमति को माँगा। उन्होंने कहा मैं माहेश्वर को अपनी पुत्री नहीं दूँगा क्योंकि इससे धर्म का नाश होने का भय रहता है। धर्म तो एक है ऐसा कहकर नागदत्त और रुद्रदत्त समाधिगुप्ति मुनि के पास छल से श्रावक हो गए। बाद में जिनमति को ब्याह लिया और पुनः फिर माहेश्वर हो गए। रुद्रदत्त ने कहा तुम मेरा धर्म ग्रहण कर लो। जिनमति ने कहा मेरे लिए धर्म छोड़ना उचित नहीं है किन्तु आप ही मेरे धर्म को ग्रहण कर लें। रुद्रदत्त ने भी ऐसा ही कहा मेरे लिए शिव धर्म छोड़ना ठीक नहीं। इस प्रकार हमेशा दोनों में अपने-अपने धर्म को लेकर कहा सुनी होती रहती, फिर विवाद होने से झगड़ा भी हो जाता। रुद्रदत्त ने कहा तुम वसति में जाती हो और मुनियों को दान देती हो, यदि तुम इस प्रकार करोगी तो मैं तुम्हें निकाल दूँगा। जिनमति ने कहा आप भी यदि इस प्रकार अपना धर्म करोगे तो मैं मर जाऊँगी। दोनों के घर में ही अपने-अपने धर्म कर्म चलते। एक बार नगर की पूर्व दिशा में महान् जंगल था। उसमें जो भिल्ल थे उन्होंने नगर में अग्नि लगा दी और सब ओर आग जलने लगी। जिनमति ने रुद्रदत्त को कहा जिनका देवता आज रक्षा करेगा उसका धर्म ही दोनों का धर्म होगा। रुद्रदत्त ने कहा मंजूर है और यह सुनकर रुद्रदत्त ने रुद्र के लिए अर्घ्य दिया, किन्तु कोई विशेष बात नहीं हुई। इसके बाद ब्रह्म आदि के लिए भी अर्घ्य दिया फिर भी अग्नि में कुछ अन्तर नहीं आया तब जिनमति ने पञ्च परमेष्ठियों के लिए अर्घ्य देकर पति और पुत्रवधु को अपने समीप रख कायोत्सर्ग से स्थित हो गयी। उसी क्षण उपसर्ग शान्त हो गया। इस अतिशय को देखकर रुद्रदत्त आदि बहुत से लोग श्रावक हो गए।

90 *31. सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि

सुद्धे सम्मत्ते अविरदो वि अजेदि तित्थयरणामकम्मं।
जादो खु सेणिगो आगमेसिं अरुहो अविरदो वि ॥740॥

अस्य कथा - मगधदेशे राजगृहनगरे राजा श्रेणिको, राज्ञी सुप्रभा, पुत्रः श्रेणिकः कुमारः। एकदा प्रत्यन्तवासिना पूर्ववैरिणा नागधर्मेण यो जात्यश्वो दुष्टः प्रेषितः स खञ्चितोऽतिसरति। एकदा वाह्यालीगतो राजा तेनाश्वेन महाटवीं नीतः। तत्र पल्लीपतिर्यमदण्डो, भार्या विद्युन्मती, पुत्री तिलकावती। यमदण्डेन तिलकावत्याः पुत्राय राज्यं दातव्यमिति भणित्वा तस्मै दत्ता। राजगृहनगरं स प्रेषितः। तयोश्चिलातपुत्रनामा पुत्रो जातः। एकदा राज्ञा मम बहुपुत्राणां मध्ये राजा को भविष्यतीति संचिन्त्य नैमित्तिकः पृष्टः। कथितं तेन-सिंहासनस्थो भेरीं ताडयन् शुनां ददत्पायसं यो भोक्षते स राजा भविष्यति। भोजनदिने परीक्षा कृता। सिंहासनभेर्यादिहस्तः श्वभ्यो भरणादिकं ददता पायसं भुक्तम्। एकदाग्निदाहे जाते हस्तिसिंहासनच्छत्रादिकं श्रेणिकेन निःसारितम्। अयं योग्य इति ज्ञात्वा राज्ञा कुक्कुरविट्टलादिदोषं दत्वा स निःसारितः। मध्याह्ने नन्दग्रामाग्रहारब्राह्मणैरपि स तथा निःसारितः। तत्र परिव्राजकमठिकायां भोजनं कारितो विष्णुधर्मं प्रतिपन्नवान्। दक्षिणापथे चलितस्यान्यत्कथान्तरम्।

शुद्ध सम्यग्दर्शन तीर्थंकरत्व का कारण

अर्थ : अविरत सम्यदृष्टि भी शुद्ध सम्यक्त्व के द्वारा तीर्थंकर नामकर्म जैसी तीन लोक में माहात्म्य को धारण करने वाली प्रकृति का बंध कर लेता है। देखो! श्रेणिक अभी अविरत है किन्तु आगामी भविष्य में वह अरिहंत बनेंगे।

कथा : मगध देश के राजगृह नगर में राजा श्रेणिक और रानी सुप्रभा थी। उनके पुत्र श्रेणिक कुमार थे। एक बार पड़ोसी राजा नागदत्त ने वैर से एक दुष्ट जाति का घोड़ा श्रेणिक के लिए भेजा, वह लगाम खींचते ही बहुत तेज दौड़ता। एक बार राजा बाहर घूमने निकले तो उस घोड़े ने उन्हें एक भयंकर जंगल में पहुँचा दिया। वहाँ एक आश्रम था उसका मालिक यमदण्ड था। उसकी स्त्री विद्युन्मती और पुत्री तिलकावती। यमदण्ड ने कहा - आप तिलकावती के पुत्र को राज्य दें, इस प्रकार कहकर उनके लिए वह पुत्री दे दी। राजगृह नगर में यमदण्ड ने श्रेणिक को भेज दिया। श्रेणिक का तिलकावती से चिलात नाम का एक पुत्र हुआ। एक बार राजा ने विचार किया मेरे बहुत से पुत्रों के बीच में से राजा कौन होगा? इसलिए एक नैमित्तिक को पूछा। उन्होंने कहा - सिंहासन पर बैठकर भेरी बजाता हुआ और कुत्तों को भी खीर खिलाता हुआ जो स्वयं भी खाता रहेगा, वही राजा होगा। राजा ने भोजन करते हुए उनकी परीक्षा की। श्रेणिक सिंहासन पर बैठ भेरी आदि हाथ में ले कुत्तों को झूठन देता गया और स्वयं खीर खाता रहा। एक बार अग्नि दाह हो जाने पर श्रेणिक ने हाथी, सिंहासन, छत्र आदि बाहर निकाल लिए। तब महाराजा ने सोचा कि यह ही राजा बनने के योग्य है, इस प्रकार जानकर राजा ने श्रेणिक को दोष लगाया कि इसने कुत्तों की झूठन खायी है और उसे राज्य से बाहर निकाल दिया। मध्याह्न में श्रेणिक नन्द ग्राम में पहुँचे। वहाँ से अग्रसर ब्राह्मणों ने भी उन्हें आगे पहुँचा कर निकाल दिया। आगे जाकर परिव्राजकों के मठ में भोजन किया और विष्णु धर्म को प्राप्त कर लिया, बाद में वे चलकर दक्षिण की ओर पहुँचे। वहाँ की अन्य कथा इस प्रकार है -

द्रविडदेशे काञ्चीपुरे राजा वसुपालो, राज्ञी वसुमती, पुत्री वसुमित्रा, मन्त्री ब्राह्मणः सोमशर्मा, पत्नी सोमश्रीः, पुत्री अभयमतिः। अयं सोमशर्मा मन्त्री धर्मार्थी गङ्गादितीर्थमालोक्य व्याघुटितो ब्राह्मणरूपधारिणः श्रेणिकस्य मार्गे मिलितः। भणितः स श्रेणिकेन-माम तव स्कन्धमहमारोहामि मम स्कन्धे त्वमारोह। शीघ्रं येन गम्यते। चिन्तितं तेन ग्रहिलोऽयम्। बृहद्ग्रामः उद्वसः, लघुग्रामो महान् यत्र भुङ्क्ते। 1. महिष्यः प्राणाः। 2. वृक्षतले छत्रिका धृता पथि संवृता। 3. जले प्राणहिते पादयोः पथि हस्ते धृते। 4. पृष्टं बदर्याः कति कण्टाः। 5. नारी बद्धा मुक्ता वा कुट्यते। 6. मृतको मृतो जीवेन वा गच्छति। 7. शालिक्षेत्रमिदं कुटुम्बिना भक्षितं भक्ष्यते भक्षितव्यं वा। 8. इति मार्गे चेष्टितं कुर्वन्तं बाहिरे श्रेणिकं धृत्वा काञ्चीपुरे निजगृहं प्रविष्टो मन्त्री। अभयमत्या स पृष्टः-तात त्वमेकाकी गत आगतोऽसि। कथितं तेन-आगच्छतः एको रूपवान् ग्रहिलो बटुर्मिलितो बाहिरे तिष्ठति। पृष्टं तया- कीदृशो ग्रहिलः। अस्मान्माम स्कन्धारोहणादिकमाकर्ण्य व्याख्यानं कृत्वा तया पुरुषहस्ते स्तोकतैलखली प्रेषिते। तैलखली समर्प्य भाजने याचिते। तेन कर्दममध्ये गर्ताद्वये धृते द्वे। कर्दममध्ये नीतस्य पादप्रक्षालनार्थं भाजने स्तोकजलं दत्तम्। वंशकम्बया कर्दमापनयनेन वक्रप्रवालके दवरकप्रोतनेन तुष्टा। अभयमतिः परिणीता तेन अतिवल्लभा जाता। विलपन्त्यटव्यां जिनदत्तवसुमित्रश्रावकयोः पार्श्वे धर्ममाकर्ण्य यः सोमशर्मा ब्राह्मणः संन्यासेन मृत्वा सौधर्मे देवोऽभूत् स स्वर्गादेत्याभयमत्याभयकुमारनामा पुत्रो जातः। अथ वसुपालराजेन

द्रविड़ देश के काञ्चीपुर में राजा वसुपाल थे और रानी वसुमती। उनकी पुत्री वसुमित्रा थी तथा मन्त्री ब्राह्मण सोमशर्मा था। जिसकी पत्नी सोमश्री और पुत्री अभयमती थी। यह सोमशर्मा मंत्री धर्म करने के लिए गंगा आदि तीर्थ के दर्शन के लिए गया। वापस लौटते हुए ब्राह्मण रूप बनाये हुए श्रेणिक को यह मार्ग में मिल गया। श्रेणिक ने सोमशर्मा से कहा - मामा आपके कन्धे पे मैं बैठ जाता हूँ और आप मेरे कंधे पे बैठ जाओ जिससे हम लोग शीघ्र पहुँच जायेंगे। सोमशर्मा ने सोचा यह बड़ा मूर्ख है। आगे जाकर उन्हें एक बड़ा गाँव मिला जहाँ से निकल आये बाहर फिर एक छोटा गाँव मिला वहाँ भोजन किया। श्रेणिक ने छोटे गाँव को बड़ा बताया। आगे चले तो 1. महिषी को प्राण कहा। 2. वृक्ष के नीचे पहुँचकर छत्री लगा लेते और रास्ते में हटा लेते। 3. इसी प्रकार जल में तो जूती पहन लेते और रास्ते में हाथ में रख लेते। फिर 4. पूछा बेर के कितने काँटे हैं। 5. आगे एक स्त्री को पिटते हुए देखा तो पूछा यह जीता है या मर गया। 7. फिर आगे चले तो पूछा कि इस खेत की फसल को परिवार वालों ने खा लिया या खा रहे हैं या आगे खायेंगे। इस प्रकार मार्ग में श्रेणिक की चेष्टाओं को देखकर श्रेणिक को बाहर छोड़कर काञ्चीपुर में अपने घर में मन्त्री चला गया। अभयमति ने पूछा - पिताजी आप अकेले ही गए और अकेले ही आये हो? मन्त्री ने कहा - बेटी आते हुए रूपवान किन्तु मूर्ख छोकरा मिला वह बाहर बैठा है। उसने पूछा यह मूर्ख कैसे है? मन्त्री ने कहा कि मेरे कन्धे पर बैठो और मुझको अपने कन्धे पर बिठा लो इस प्रकार बातें करता हुआ आया है। यह सुनकर अभयमति ने एक पुरुष के हाथ थोड़ा तेल और तेल की खली भेजी। तेल और तेल की खली को सौंपकर दो बर्तन में उसे माँगा। श्रेणिक ने कीचड़ के बीच दो गड्ढों में दोनों चीजें रखी और चल दिए। आते हुए कीचड़ में फँस गया और दोनों पैरों के कीचड़ साफ करने के लिए थोड़ा-सा जल दिया। श्रेणिक ने बाँस की छक्कल से कीचड़ साफ कर लिया तथा टेड़े मोती के मुँह में धागा पिरोवाया श्रेणिक ने पिरो दिया। जिससे अभयमति श्रेणिक की चतुरता से संतुष्ट हुई। श्रेणिक ने अभयमति से विवाह किया, वह श्रेणिक की प्रिय रानी बनी। जिनदत्त और वसुमित्र श्रावक के पास में रोते हुए जिस सोमशर्मा ब्राह्मण ने धर्म सुना, वह संन्यास से मरणकर सौधर्म स्वर्ग में देव हुआ। वह स्वर्ग से आकर अभयमति के अभयकुमार नाम का

विजययात्रां गतेनैकस्तम्भप्रासादमालोक्य काञ्च्यां सोमशर्मस्य तदर्थं लेखः प्रेषितः। स च तं कारयितुमजानन् व्याकुलोऽभूत्। श्रेणिकेन स विशिष्टतरः कारितः। आगतेन राज्ञा तमालोक्य तुष्टेन वसुमित्रा निजपुत्री श्रेणिकाय दत्ता। अथ राजगृहपुरे प्रश्रेणिकश्चिलातपुत्रस्य राज्यं समर्प्य निर्विण्णः प्राव्राजीत्। चिलातपुत्रे सर्वान्यायरते प्रधानैः श्रेणिकस्य विनयपत्रिका प्रेषिता। सोऽपि तामालोक्य राजगृहपुरे पाण्डुरकुटीमागच्छेति वसुमित्राभयमती भणित्वा आगत्य चिलातपुत्रं निर्द्धाट्य राजा जातः। एकदाभयकुमारेण पृष्टा माता- क्व मे पिता। कथितं तया मगधदेशे राजगृहपुरे पाण्डुरकुट्यां तिष्ठति। एतदाकर्ण्य विकल्प्य च सो ऽप्येकाकी तं नन्दग्रामं मयाहारमायातः। तत्र च श्रेणिकेन पूर्वनिःसरणदोषरुष्टेन नन्दग्रामं ग्रहीतुं कामेन दोषं स्थापयितुमिच्छता राजादेशः प्रेषितो यथा- बहुविद्यापारगाः ब्राह्मणाः भो मृष्टजलं वटकूपं शीघ्रं मे प्रेषयथ अन्यथा निग्रहं करोमि। तेन कारणेन व्याकुला ब्राह्मणा अभयकुमारेण कारणं पृष्टाः। तैर्यथार्थे कथिते धारितास्तेन भोजनादिकं कुरुत [इति] तद्वचने शिक्षां दत्वा द्वौ ब्राह्मणौ श्रेणिकपार्श्वं प्रेषितौ। ताभ्यां विज्ञप्तः- देव स कूपो भणितो ऽस्माभिर्न चागच्छति। रुष्टो ग्रामबाहिरे स्थितः। तत्रापि भणितो नागच्छति। पुरुषस्य स्त्रीवशीकरणमतो देव निजपुरस्थामुदुम्बरकूपिकां प्रेषय तस्याः पृष्टलग्नो येनागच्छतीतीव तं मत्वा राजा मौनम्। तथा गजे पलसंख्यार्थं प्रेषिते जलेन वा हस्तिप्रमाण- पाषाणपलानि 2। यथा स वटकूपः पूर्वदिशि स्थितः पश्चिमदिशि कर्तव्यः ग्रामः पूर्वदिशि कृतः 3। मेषः प्रेषितो न दुर्बलो न बलवान् अतिचारयित्वा वृकसमीपे ध्रियते 4। गर्गरीमध्यस्थं पाण्डुरकूष्माण्डं प्रेषयथ। तत्रैव संवर्ध्य

पुत्र हुआ। वसुपाल राजा ने जो कि विजय यात्रा के लिए गए थे, उन्होंने एक खम्भे पर महल खड़ा देखा, जिसे देखकर काञ्ची में सोमशर्मा को ऐसा ही भवन बनवाने के लिए एक लेख भेजा। सोमशर्मा उसके बारे कुछ जानता नहीं था इसलिए आकुल व्याकुल हो गया। श्रेणिक ने उसे बहुत अच्छा बनवा दिया। राजा जब वापस आये तो वह महल देखकर बहुत प्रसन्न हुए और अपनी पुत्री वसुमित्रा श्रेणिक के लिए दे दी। इधर राजगृह नगर में श्रेणिक ने चिलात पुत्र को राज्य सौंपकर उदासीन भाव धारण कर दीक्षा ले ली। चिलात पुत्र सारी जनता पर अन्याय करने में रत रहता, जिससे प्रधान ने श्रेणिक को विनय पत्र भेजा। श्रेणिक ने भी चिलात पुत्र को इस प्रकार अत्याचार करते देखा तो राजगृह नगर की पाण्डुर कुटी में आया हूँ, इस प्रकार वसुमित्रा और अभयमति को बता दिया और जाकर चिलात पुत्र को राज्य से हटा दिया और स्वयं राजा हो गया। एक बार अभयकुमार ने पूछा मेरे पिता कहाँ हैं? माँ ने कहा बेटा मगध देश के राजगृह नगर में पाण्डुर कुटी में रहते हैं। यह सुनकर और विचार कर अभयकुमार अकेले ही उस नन्द ग्राम में आ पहुँचे। पूर्व में नन्द ग्राम में जब श्रेणिक आये तो गाँव के लोगों ने उन्हें बाहर निकाल दिया था। इसलिए नन्द ग्राम को ग्रहण करने की इच्छा से क्रोधित हो दोष लगाने की भावना रखते हुए श्रेणिक ने वहाँ के राजा को एक आदेश भेजा अरे! बहुत विद्याओं के पारगामी ब्राह्मणो! मेरे लिए शीघ्र ही एक मीठे जल का कुँआ भेजो अन्यथा मैं तुम्हें दण्ड दूँगा। इस कारण से व्याकुल ब्राह्मणों से अभयकुमार ने कारण पूछा। तब उन्होंने यथार्थ बात बता दी और आश्वासन दिया और कहा आप लोग बिना चिन्ता किए भोजन आदि करें। अभयकुमार ने उनके कहे अनुसार दो ब्राह्मणों को शिक्षा देकर श्रेणिक के पास भेजा। उन्होंने श्रेणिक से कहा - प्रभो! वह कुँआ हमारे कहने से तो आता नहीं और रूठ कर ग्राम के बाहर बैठ गया। वहाँ पर भी हम लोगों ने कहा किन्तु फिर भी नहीं आता है। पुरुष को स्त्री ही वश में कर सकती है, इसलिए प्रभो! अपने नगर से एक उदुम्बर कुँई भेज दो, उसके पीछे लगा हुआ यह कुँआ भी आ जायेगा। इस प्रकार जानकर राजा चुप रह गया। दूसरी बार श्रेणिक ने हाथी का वजन तोलने के लिए भेजा तो अभयकुमार ने हाथी के बराबर पत्थर तोल

प्रेषितम् 5। समसारकाष्ठस्य जले अधोमूलम् 6। रजोदेवरिकायां प्रतिच्छन्दं याचितम् 7। इत्यादिकृते स देशिक आगच्छतु न दिने न रात्रौ न भूमौ नाकाशे न मार्गे नामार्गे। संध्यायां शकटैकभागेनागतः। भण्डं सिंहासनस्थं त्यक्त्वा अङ्गरक्षमध्यस्थो राजा जनानन्दं दृष्ट्वा ज्ञात्वा न तद्दृष्ट्वा श्रेणिकेन संतोषान्मम पुत्रो ऽयं लोकानां कथिते महोत्सवः कृतः अभयमतिवसुमित्रे आनयिते इदानीमन्यत्कथान्तरम्॥

सिन्धुदेशे विशालीपुर्यां राजा कौशिकः, पुत्री यशस्वती, पुत्रश्चेटकमहाराजः, सुभद्रा प्रियकारिणी सुप्रभावती मृगावती सुज्येष्ठा चेलिनी चन्दना एताः सप्त पुत्र्यः। तद्रूपालेखार्थं सुचित्रकारं गवेषयति चेटकः। काकसवर्धकिना यतः स्त्रीयन्त्रं कृतं तेन परीक्ष्यन्ते चित्रकाराः। पद्मावत्या अनुविद्धरूपलब्धवरश्चित्रभूतिनामा चित्रकरो देशादागत्य अन्यचित्रकरगृहे प्रविष्टः काकसेन चेटकराजस्य दर्शितः। गौरवभोजनादिकं दत्तम्। रात्रौ राजकुले तां यन्त्रस्त्रियं सहसा भङ्क्त्वा भीतचित्तः साक्षादिवात्मानमवलम्बिकादिकं कुड्ये प्रदर्श्यादृश्यो बभूव। तमतिशयमालोक्य राज्ञा तस्याभयदानं दत्तम्। चेटकसुभद्राप्रियकारिण्यादीनामनुविद्धरूपं लिखितम्। तेन नित्यं राजा विलोकते। चेलिन्या रूपं नागच्छति। तस्या गुह्यदेशे लिखिन्यामपि [?] बिन्दुपाते रूपानुविद्धतायां राजरोषं

के भिजवा दिया। तीसरी बार श्रेणिक ने कहा जो वह कुँआ पूर्व दिशा में स्थित है, उसे पश्चिम दिशा में करना है तो गाँव को ही पूर्व दिशा में कर दिया (जिससे कुँआ पश्चिम दिशा में हो गया)। चौथी बार एक मेंढ़ा भेजा कि यह न दुर्बल हो और न बलवान बने, इस प्रकार व्यवस्था करने के लिए उसे खूब खिला कर सिंह के सामने बाँध देते (जिससे वह वैसा का वैसा ही रहा)। पाँचवी बार श्रेणिक ने कहा कि घड़े में रखकर एक पीले कद्दू को भेजो। उसने उसी में बढ़ाकर बड़ा किया और भेज दिया। छठवीं बार समान सार वाली लकड़ी का मूल जल में नीचे होने से मालूम कर लिया। सातवीं बार बालू की रस्सी मँगायी तो उसी प्रकार की बनाने के लिए एक वैसी ही रस्सी मँगायी। इस प्रकार करने के बाद उस देश में आये व्यक्ति को बुलाया और कहा कि वह न दिन में आये और न रात में, न धरती पे आये न आकाश से आये, न मार्ग से आये और न अमार्ग से। अभयकुमार संध्या के समय गाड़ी के एक किनारे बैठकर आये। सिंहासन पर एक मसखरी व्यक्ति बैठा था। श्रेणिक सिंहासन छोड़कर अंग रक्षकों के बीच बैठ गए और राजा तथा लोगों के आनन्द को देखकर वह नहीं जान पाये किन्तु अभयकुमार को देखकर श्रेणिक ने संतोष किया कि यह मेरा पुत्र है और सभी लोगों को कहा, फिर महोत्सव किया। अभयमति और वसुमित्र को बुला लिया। यहाँ पर दूसरी कथा इस प्रकार है –

सिन्धु देश के विशालीपुरी के राजा कौशिक थे। उनकी पुत्री यशस्वती थी और पुत्र चेटक महाराज। चेटक महाराज की सुभद्रा, प्रियकारिणी, सुप्रभावती, मृगावती, सुज्येष्ठा, चेलिनी, चन्दना ऐसी सात पुत्रियाँ थीं। चेटक ने पुत्रियों के चित्रों को ज्यों का त्यों बनाने के लिए चित्रकार की खोज की। काकस नाम के बढ़ई ने एक स्त्री यन्त्र बनाया उसने चित्रकारों की परीक्षा की जाती। पद्मावती का हूबहू रूप बनाकर जिसने श्रेष्ठता प्राप्त की, ऐसा चित्रभूति नाम का चित्रकार अपने देश से आकर अन्य चित्रकार के घर में पहुँचा। काकस ने उस चित्रकार को चेटक राजा को दिखाया। उन्हें अच्छा सम्मान और भोजन आदि कराया गया। रात्रि में राजकुल में उस यन्त्र स्त्रियों को अचानक तोड़कर और भयभीत चित्त होता हुआ चित्रकार ने साक्षात् ही मानों वे स्त्रियाँ हों ऐसा प्रदर्शन दीवाल पर करके अदृश्य हो गया। इस अतिशय को देखकर राजा ने उसको अभयदान दिया। उसने चेटक, सुभद्रा, प्रियकारिणी आदि का जैसा का तैसा रूप बनाया। राजा उस चित्र को रोज देखता किन्तु चेलनी का रूप नहीं बनता। उसके बनाते हुए गुह्य स्थान पर एक रंग का बिन्दु गिर पड़ता। उसके गुह्य स्थान पर भी वैसा ही चिह्न

ज्ञात्वा चेलिनीरूपं तेनानीय राजगृहनगरे श्रेणिकराजस्य दर्शितम्। तस्य कामासक्तिः। तदर्थमभयकुमारो बहुभाण्डं गृहीत्वा गन्धवादवणिक्सार्थवाहो भूत्वा विशालीं गतः। राजानं दृष्ट्वा राजकुलसमीपे समर्थ्यं क्रियाणकं दत्वा कन्यायां चेटिकागमनसमये श्रेणिकरूपस्य पूजनं प्रशंसनं करोति। चेटिकाः कन्यानां कथयन्ति। ताश्च द्रष्टुं समायाताः। सुज्येष्ठाचेलिनीभ्यां रूपासक्ताभ्यां एकान्ते स भणितः- आवां गृहीत्वा गच्छ त्वम्। सुरङ्गाद्वारे निर्गमनकाले चेलिन्या सुज्येष्ठा अतीर्षयाभरणव्याजेव वञ्चिता। ततः प्रभाते चेटकराजस्य या भगिनी यशस्वती कन्तिका तत्पार्श्वे अर्जिका जाता। चेलिनी च तेनानीता श्रेणिकेन परिणीता। तस्याः पुत्रो वारिषेणः धारिण्यः पूत्र कूणिकः। अथ श्रेणिकचेलिन्योर्नित्यं विवादो विष्णुधर्मो जिनधर्म एव । भणिता श्रेणिकेन- भर्तारं देवता नारीति लौकिकवचनात् तवाहमेव देवः, मम ये देवगुरवः तवापि देवगुरवः। एतदाकर्ण्य तया भणितम्-भगवतो भोजनं ददामि। निमन्त्र्यानीय गौरवेण महामण्डपे धृताः। अस्माकं ध्यानस्थितानामात्मा विष्णुपदे तिष्ठतीत्युक्त्वा तेषां ध्यानस्थितानां तया स मण्डपो दाहितः। ते च नष्टाः। रुष्टेन राज्ञा सा भणिता। यदि भक्तिर्नास्ति तदा किं मारणं तेषां चिन्त्यते तस्य रोषोपशमनार्थं तया कथा कथिता। वत्सदेशे कौशाम्बीनगर्यां राजा प्रजापालो, राज्ञी यशस्विनी, श्रेष्ठी सागरदत्तो, वसुमती कलत्रम्। द्वितीयः श्रेष्ठी समुद्रदत्तः। प्रीतिवर्धनार्थं सागरदत्तेनोक्तम्-भो समुद्रदत्त, यदि तव पुत्री तदा यो मम पुत्रो भविष्यति तदा तस्य दातव्या। अथवा मे पुत्री तदा तव पुत्रस्य। एवं सागदत्तवसुमत्योः

है, यह राजा के क्रोध का कारण बन गया। चित्रकार ने चेलिनी का रूप लाकर राजगृह नगर में श्रेणिक राजा को दिखाया। जिससे श्रेणिक को उसमें कामासक्ति हो गयी। इसके लिए अभयकुमार बहुत बर्तनों को लेकर गन्धवाद वाणिज्य व्यापारी का रूप बनाकर विशाली में गए। राजा को देखकर राजकुल के समीप में योग्य क्रय करने वाली वस्तुओं को देकर (कथाओं में) चेटिका के आगमन के समय श्रेणिक के रूप की पूजा प्रशंसा करता था। चेटिका ने कन्याओं को कहा। उन्हें देखने के लिए बुलाया। सुज्येष्ठा और चेलिनी उसके रूप में आसक्त हो गयी। उन्होंने अभयकुमार से एकान्त में कहा हम दोनों को लेकर तुम चलो। सुरंग द्वार पे निकलने के समय चेलिनी ने सुज्येष्ठा को अत्यन्त ईर्ष्या से आभरण ले आने के बहाने भेज दिया। जब उसे इस छल का पता पड़ा तो सुबह चेटक राजा की जो बहिन यशस्वती आर्यिका थी, उसी के पास जाकर वह सुज्येष्ठा आर्यिका हो गयी। चेलिनी को अभयकुमार ले आया और श्रेणिक से विवाह दिया। चेलिनी का पुत्र वारिषेण था और धारिणी का कूर्णिक। श्रेणिक और चेलिनी में रोज विष्णु धर्म और जिनधर्म को लेकर विवाद होता। श्रेणिक ने कहा - नारी का पति ही उसका देवता होता है, यह लौकिक उक्ति है। इसलिए हम आपके देव हुए और मेरे ये देव गुरु हैं, इसलिए तुम्हारे भी ये देव गुरु हुए। यह सुनकर चेलिनी ने कहा ठीक है मैं उन भगवत् साधुओं को भोजन कराऊँगी। निमन्त्रण करके सम्मान के साथ उन्हें महामण्डप में बिठाया। जब वह ध्यान में बैठे थे तो उन्होंने कहा हम जब ध्यान में बैठते हैं तो मेरी आत्मा विष्णु पद में जाकर ठहर जाती है, इसलिए उनके ध्यान के मण्डप में उसने आग लगवा दी। वे सब भाग गए। राजा ने क्रोध से कहा - यदि भक्ति नहीं है तो उनके मारने का उपाय क्यों किया। श्रेणिक के क्रोध को शान्त करने के लिए उसने उनकी कही हुई बात सुना दी। वत्स देश में कौशाम्बी नगरी के राजा प्रजापाल और रानी यशस्विनी थी। वहीं सेठ सागरदत्त और पत्नी वसुमती रहते थे। एक दूसरे सेठ समुद्रदत्त थे। स्नेह बढ़ाने के लिए सागरदत्त ने कहा - हे समुद्रदत्त! यदि तुम्हारे पुत्री हो और मेरे पुत्र हो तो हम लोग आपस में विवाह देंगे। अथवा मेरे पुत्री हो तुम्हारे पुत्र हो तो भी ऐसा ही करेंगे। इस प्रकार सागरदत्त और वसुमित्र के पुत्र

पुत्रः सर्पो वसुमित्रनामा जातः। समुद्रदत्तासमुद्रदत्तयोः पुत्री नागदत्ता। झकटके सति सर्पेण परिणीता नागदत्ता। भोगानुभवने शरीरविकारमालोक्य जने विरूपकं वदति सति जनन्या पृष्टा-पुत्रि कीदृशस्तव भर्ता। कथितं तया-दिवा सर्पो रात्रौ नवयौवनो रुपवान् पुरुषः। अनुभूय दिवा पुनः सर्पः पिट्टारके तिष्ठति। एतत्प्रच्छन्नया दृष्ट्वा मन्त्रयित्वा समुद्रदत्तया रात्रौ पिट्टारके दग्धे निराश्रयः स पुरुष एव स्थितः। भवद्गुरूणामप्येव जीवो विष्णुपदे तिष्ठत्विति न मया चिन्तितम्। इत्याकर्ण्य चित्तस्थकोपेन पापर्द्धिं च गतः श्रेणिक आतापनस्थं यशोधरमुनिमालोक्यामुं पापर्द्धिर्विघ्नकारिणं मारयामीति संचिन्त्य से पञ्चशतकुक्कुरा मुक्ता मुनेः प्रदक्षिणां कृत्वा प्रणताः। बाणाश्च पुष्पमाला ज़ाताः। तदा तेन सप्तमनरके त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमायुर्बद्धम्। कुक्कुरबाणाभ्यां तमतिशयमालोक्य पूर्णयोगं तं मुनिं प्रणम्य तत्त्वमाकर्ण्योपशमसम्यक्त्वं गृहीत्वा प्रथमनरके चतुरशीतिवर्षसहस्रमात्रमायुः कृतम्। त्रिगुप्तमुनीनां समीपे क्षायोपशमिकसम्यक्त्वं वर्धमानतीर्थकरसमीपे क्षायिकसम्यक्त्वमित्यग्रे।

90 *32. सा समत्था जिणभत्ती

एया वि सा समत्था जिणभत्ती दुग्गइं णिवारेदुं।
पुण्णाणि य पूरेदुं आसिद्धिपरंपरसुहाणं ॥ 746 ॥

अत्र करकण्डुमहाराजस्य कथा -

वसुमित्र हुआ, जो सर्प हो जाता था। समुद्रदत्त और समुद्रदत्ता के पुत्री हुई नागदत्ता। दोनों में विवाद होने पर भी नागदत्ता को सर्प वसुमित्र के साथ ब्याह दिया। भोग-भोगकर वह सर्प हो जाता, इस प्रकार देखकर लोगों में उसकी कुत्सिता की चर्चा होने पर माँ ने पूछा पुत्री तेरा पति कैसा है? उसने कहा - माँ दिन में वह सर्प हो जाता हैं किन्तु रात्रि में नव यौवन युक्त रूपवान पुरुष हो जाते हैं। भोग-भोगकर फिर सुबह सर्प की पिटारी में बैठ जाते हैं। यह जानकर गुप्त रूप से सलाह कर रात्रि में समुद्रदत्ता ने पिटारी को जला दिया। अब वह पुरुष निराश्रित होकर रह गया। इसी प्रकार आपके गुरुओं की भी आत्मा विष्णु पद में ही रह जाये, इस प्रकार सोचकर मैंने उन्हें जलाना चाहा। इस प्रकार चित्त में क्रोध धारण कर वह श्रेणिक शिकार के लिए गया। श्रेणिक ने आतापन योग धारण किए यशोधर मुनिराज को देखकर मेरे शिकार में यह विघ्न करने वाले हैं, अतः मैं इन्हें मारता हूँ, ऐसा सोचकर पाँच सौ कुत्ते छोड़ दिए। वह कुत्ते मुनिराज की प्रदक्षिणा लगाकर बैठ गए और नमस्कार किया। फिर श्रेणिक ने मुनिराज पर बाण छोड़ा जो फूल माला हो गयी, तभी श्रेणिक ने सातवें नरक की तैंतीस सागरोपम की आयु बाँध ली। कुत्ते और बाणों का यह अतिशय देखकर पूर्ण योग धारण किए उन मुनिराज को प्रणाम कर तत्त्व श्रवण कर उपशम सम्यग्दर्शन ग्रहण कर प्रथम नरक की चौरासी हजार वर्ष की आयु रह गयी। बाद में त्रिगुप्ति मुनि के पास क्षायोपशमिक सम्यक्त्व प्राप्त किया और वर्धमान स्वामी तीर्थंकर के निकट क्षायिक सम्यग्दर्शन प्राप्त किया। इस प्रकार आगे वह तीर्थंकर बनेंगे।

90 *32. जिनेन्द्र भक्ति-कामधेनु है

अर्थ : अकेली जिनभक्ति ही दुर्गति का नाश करने में समर्थ है। इससे विपुल पुण्य की प्राप्ति होती है और जब तक सिद्धि की प्राप्ति नहीं होती तब तक यह भक्ति परम्परा से सभी सुखों को देने वाली होती है।

अब है करकण्डु महाराज की कथा -

गोपो विवेकविकलो मलिनो ऽशुचिश्च राजा बभूव सगुणः करकण्डुनामा।
इष्ट्वा जिनं भवहरं स सरोजकेन नित्यं ततो हि जिनपं विभुमर्चयामि॥

अस्य वृत्तस्य कथा। तद्यथा- श्रेणिकस्य गौतमस्वामिना यथा कथिताचार्यपरम्परयागता सा संक्षेपेण कथ्यते ! अत्रैवार्यखण्डे कुन्तलविषये तेरपुरे राजानौ नीलमहानीलौ जातौ। श्रेष्ठी वसुमित्रो, भार्या वसुमती, तद्गोपालो धनदत्तः। तेनैकदाटव्यां भ्रमता सरसि सहस्रदलकमलं दृष्टं गृहीतं च, तदा नागकन्या प्रगटीभूय तं वदति- सर्वाधिकस्येदं प्रयच्छेति। तदनु सकमलेन स्वगृहमागत्य श्रेष्ठिनस्तद्वृत्तान्तं निरूपितवान्। तेन राज्ञो भाषितम्। राज्ञा गोपालेन श्रेष्ठिना च सहस्रकूटजिनालयं गत्वा जिनमभिवन्द्य सुगुप्तमुनिं च। ततो राज्ञा पृष्टो मुनिः- कः सर्वोत्कृष्टः इति। तेन जिनो निरूपितः। श्रुत्वा गोपालो जिनाग्रे स्थित्वा हे सर्वोत्कृष्ट, कमलं गृहाणेति देवस्योपरि निक्षिप्य गतः॥

अत्रापरवृत्तान्तः। तथा हि- श्रावस्तिपुर्यां श्रेष्ठी नागदत्तो, भार्या नागदत्ता। द्विजसोमशर्मणो ऽनुरक्तां तां ज्ञात्वा श्रेष्ठी दीक्षितो दिवं गतः। तस्मादागत्याङ्गदेशचम्पायां राजा वसुपालो, देवी वसुमती, तयोः पुत्रो दन्तिवाहननामा जातः। एवं स वसुपालो यावत्सुखेनास्ते तावत्कलिङ्गदेशे सोमशर्मा द्विजो मृत्वा नर्मदातिलकनामा हस्ती जातो धृत्वा वसुपालाय प्रेषितः। स तत्र तिष्ठति। सा नागदत्ता मृत्वा च तामलिप्तनगर्यां वणिग्वसुदत्तस्य

''एक ग्वाला जो विवेक रहित, मलिन और अशुचि था। वह करकण्डु नाम का गुणवान राजा हुआ, वह राजा एक फूल से संसार का हरण करने वाले जिनेन्द्र भगवान् की पूजा कर इच्छित फल को प्राप्त हुआ। इसलिए हमेशा हम लोगों को जिनेन्द्र भगवान् की अर्चना पूजा करनी चाहिए।'' उसके चारित्र की कथा इस प्रकार है -

गौतम स्वामी ने राजा श्रेणिक को जैसी कही और आचार्य परम्परा से जो आ रही है, वही कथा संक्षेप से यहाँ कहते हैं। यहाँ ही आर्यखण्ड में कुन्तल देश के तेरपुर नगर में राजा नील और महानील हुए। वहीं एक सेठ वसुमित्र, उनकी पत्नी वसुमती थी। उनका एक गोपाल था धनदत्त। उसने एक बार जंगल में भ्रमण करते हुए तालाब में हजार पत्तों वाला एक सहस्र कमल देखा और उसे तोड़ लिया। तभी एक नाग कन्या प्रकट हुई, उसने गोपाल को कहा - जो सर्वश्रेष्ठ हो, तुम इस कमल को उन्हें सौंप देना।

उसके अनुसार वह कमल लिए हुए अपने घर आया और सेठ को सारी बात बतायी। उसने राजा को कहा। राजा, गोपाल और सेठ सहस्रकूट जिनालय गए। वहाँ जिनेन्द्र भगवान् की वन्दना कर सुगुप्ति मुनि को प्रणाम किया। फिर मुनिराज से राजा ने पूछा - भगवन्! सर्वोत्कृष्ट कौन है? मुनिराज ने कहा - जिनेन्द्र भगवान्। यह सुनकर गोपाल ने जिनेन्द्र प्रभु के समक्ष खड़े होकर कहा हे सर्वोष्कृष्ट! इस कमल को ग्रहण करो और देव के ऊपर रखकर चला गया।

अब दूसरी कथा - श्रावस्ती नगरी में सेठ नागदत्त और उनकी पत्नी नागदत्ता ब्राह्मण सोमशर्मा में अनुरक्त रहती थी। यह जानकर सेठ ने दीक्षा ले ली और स्वर्ग चले गए। स्वर्ग से आकर अंग देश की चम्पानगरी में राजा वसुपाल और देवी वसुमती के वह दन्तिवाहन नाम के पुत्र हुए। इस प्रकार वह वसुपाल जब तक सुख से रहे तब तक कलिंग देश में सोमशर्मा ब्राह्मण मरकर नर्मदातिलक नाम का हाथी हुआ। उसे पकड़ कर वसुपाल के लिए पहुँचा दिया। वह वहाँ पर रहने लगा। वह नागदत्ता मरकर तामलिप्त नगरी में व्यापारी वसुदत्त की पत्नी नागदत्ता

भार्या नागदत्ता जाता। सा द्वे सुते लेभे धनवतीं धनश्रियं च। धनवती नागानन्दपुरे वैश्यधनदत्तधनमित्रयोः पुत्रेण धनपालेन परिणीता। धनश्रीर्वत्सदेशे कौशाम्बीपुरे वसुपालवसुमत्योः श्रेष्ठीवसुमित्रेण परिणीता। तत्संसर्गेण जैनी बभूव। नागदत्ता पुत्रीमोहेन धनश्रीसमीपं गता। तया मुनिसमीपं नीता। अणुव्रतानि गृहीतानि। ततो बृहत्पुत्री समीपं गता तया बौद्धसक्ता कृता। लघ्व्या वारत्रयमणुव्रतानि ग्राहिता। धनवत्या नाशितानि। चतुर्थे वारे दृढा बभूव। कालान्तरे मृत्वा तत्कौशाम्बीवसुपालवसुमत्योः पुत्री जाता। कुदिने जातेति मञ्जूषायां स्वनामाङ्कितमुद्रिकादि-भिर्निक्षिप्य यमुनायां प्रवाहिता। गङ्गां मिलित्वा पद्मद्रहे पतिता। कुसुमपुरे कुसुमदत्तमालाकारेण दृष्ट्वा स्वगृहमानीय स्ववनिताकुसुममालायाः समर्पिता। तया च पद्मद्रहे लब्धेति पद्मावतीसंज्ञया वर्धिता। युवतिर्जाता। केनचिद्वन्तिवाहनस्य तत्स्वरूपं कथितम्। तेन तत्र गत्वा तद्रूपं दृष्ट्वा मालाकारः पृष्टः- सत्यं कथय कस्येयं पुत्रीति। तेन तदग्रे निक्षिप्ता मञ्जूषा। तत्रस्थितनामाङ्कितमुद्रादिकं वीक्ष्य तज्जातिं ज्ञात्वा परिणीता। स्वपुरमानीता वल्लभा जाता। कियति काले गते तत्पिता स्वशिरसि पलितमालोक्य तस्मै राज्यं दत्वा तपसा दिवं गतः। पद्मावती चतुर्थस्नानानन्तरं स्ववल्लभेन सुप्ता स्वप्ने सिंहगजादित्यानद्राक्षीत्। राज्ञः स्वप्ने निरूपिते तेनोक्तम्- सिंहदर्शनात्प्रतापी गजदर्शनात् क्षत्रियमुख्यो रविदर्शनात्प्रजाम्भोजसुखकरः पुत्रो भविष्यतीति संतुष्टा सुखेन स्थिता। इतस्तेरपुरे स गोपालः सेवालद्रहे तरीतुं प्रविष्टः सेवालेन वेष्टितो मृत्वा पद्मावतीगर्भे स्थितः। तन्मृतिं परिज्ञाय संस्कार्य श्रेष्ठी

हुई। उसके दो सन्तान हुई धनवती और धनश्री। धनवती नागानन्द पुर के वैश्य धनदत्त और धनमित्रा के पुत्र धनपाल से ब्याही गयी तथा धनश्री वत्स देश में कौशाम्बी नगरी के वसुपाल और वसुमति के सेठ पुत्र वसुमित्र से ब्याही गयी और उनके संसर्ग से वह जैनी हो गयी। नागदत्ता पुत्री के मोह से धनश्री के पास गयी उसे वहाँ मुनि के पास ले गयी और अणुव्रत ग्रहण करा दिए। इसके बाद बड़ी पुत्री के पास गयी तो पुत्री ने उसे बौद्ध धर्म में आसक्त कर लिया। इस प्रकार जैनधर्म को ग्रहण कर तीन बार अणुव्रत लिए किन्तु धनवती ने तीनों बार व्रतों को छुड़वा दिया। चौथी बार वह जैनधर्म में व्रत लेकर दृढ़ हो गयी। कालान्तर में मरण कर कौशाम्बी में वसुपाल और वसुमति के पुत्री हुई। बुरे दिन में इसका जन्म हुआ इसलिए राजा ने एक सन्दूक में अपना नाम लिखी मुद्रिका आदि रखकर उसे यमुना में छोड़ दिया। गंगा में मिलकर वह पद्म तालाब में गिरी। कुसुमपुर में कुसुमदत्त माली ने देख लिया और उसे अपने घर ले आया तथा अपनी स्त्री कुसुममाला को सौंप दिया। वह पद्म तालाब में प्राप्त हुई इसलिए पद्मावती नाम रखकर पालन-पोषण किया। अब वह युवती हो गयी। किसी ने दन्तिवाहन को उसका हाल बता दिया। दन्तिवाहन वहाँ गया और उसके रूप को देखकर मालाकार से पूछा सत्य बताओ, यह किसकी पुत्री है। उसने सन्दूक को दन्तिवाहन के सामने लाकर रख दिया। उसमें रखी हुई मुद्रा पर नाम आदि देखकर उसकी जाति को जानकर उसे ब्याह लिया। उसे अपनी नगरी में लाये और अत्यन्त प्रिय बनाया। कुछ समय बाद दन्तिवाहन के पिता ने अपने शिर पर सफेद बाल देखा तो वैराग्य को प्राप्त हुए और दन्तिवाहन को राज्य सौंपकर दीक्षा ले ली और मरण कर स्वर्ग गए। पद्मावती चौथे स्नान के बाद अपने प्रिय के साथ सोयी थी तभी स्वप्न में शेर, हाथी, सूर्य आदि देखे। राजा दन्तिवाहन को स्वप्न के बारे में पूछा, राजा ने कहा - सिंह के देखने से तुम्हारा पुत्र सिंह के समान प्रतापी होगा, हाथी के देखने से वह क्षत्रियों में मुख्य होगा तथा सूर्य के दर्शन से प्रजा रूपी कमल को खिलाने वाला और सुख देने वाला होगा। जिससे रानी संतुष्ट हुई और सुख पूर्वक रहने लगी। इधर तेरपुर का वह गोपाल एक सेवाल (काई) के तालाब में तैरने के लिए घुस गया और काई में फँसकर मर गया

सुगुप्तमुनिनिकटे तपसा दिवं गतः। इतः पद्मावत्या दोहलको जातः। कथम्। मेघाडम्बरे चपलाकुले वृष्टौ सत्यां स्वयमङ्कुशं गृहीत्वा पुरुषवेषेण द्विपं चटित्वा पृष्ठे राजानं कृत्वा पत्तनाद्बहिर्भ्रमाव इति। तत्स्वरूपे राज्ञः कथिते तेन स्वमित्रवायुवेगखेचरेण मेघाडम्बरादिकं कारयित्वा नर्मदातिलकं द्विपमलंकृत्वा राज्ञी स्वयं च समारुह्य परिजनेन पुरान्निर्गतः। स च गजाङ्कुशमुल्लङ्घ्य पवनवेगेन गन्तुं लग्नः। सर्वोऽपि जनः स्थितः। महाटव्यां वृक्षशाखामादाय राजा स्थितः। स्वपुरमागत्य हा पद्मावति तव किमभूदिति महाशोकं कृतवान्। विबुधैः संबोधितः। इतः स हस्तो नानाजनपदानुल्लङ्घ्य दक्षिणं गत्वा श्रान्तो महासरसि प्रविष्टः। जलदेवतया समुत्तार्य तटे उपवेशिता सा। अत्रावसरे तत्रागतेन भटनाममालाकारेण रुदन्ती संबोधिता। हे भगिनि एहि मद्गृहमित्युक्ते तयोक्तम्- कस्त्वम्। तेनोक्तम्- मालिको ऽहमिति। ततो हस्तिनागपुरे स्वगृहे मद्भगिनीयमिति स्थापिता। तस्मिन् क्वापि गते तद्वनितया मारिदत्तया निर्धाटिता पितृवने पुत्रं प्रसूता। तदा मातङ्गेन तस्या प्रणम्योक्तम्-मत्स्वामिनी त्वमिति। तयोक्तम्- कस्त्वम्। स आह-अत्रैव विजयार्धे दक्षिणश्रेण्यां विद्युत्प्रभपुरेशविद्युत्प्रभविद्युल्लेखयोः सुतो ऽहं बालदेवः। स्ववनिताकनकमालया दक्षिणक्रीडार्थं गच्छतो मम रामगिरौ वीरभट्टारकस्योपरि न गतं विमानम्। क्रुद्धेन मया तस्योपसर्गः कृतः। पद्मावत्या तं निवार्य मम विद्याच्छेदः कृतः। तदनु मया सा प्रणम्योपशान्तिं नीता। ततो हे स्वामिनि, मम विद्याप्रसादं कुर्वित्युक्ते तयोक्तम्-हस्तिनागपुरे पितृवने यद्रक्षसि बालं तद्राज्ये तव विद्याः सेत्स्यन्ति

तथा इसी पद्मावती के गर्भ में आया। गोपाल की मृत्यु का समाचार जान सेठ ने उसे संस्कारित किया और स्वयं सुगुप्ति मुनि के समीप दीक्षा ग्रहण की और स्वर्ग गए। इधर पद्मावती को दोहला हुआ। कैसा दोहला? मेघों के घिरे होने पर, चंचल वर्षा हो रही हो तब मैं स्वयं हाथी पर पुरुष वेष में चढ़कर, लगाम पकड़कर और राजा को पीछे करके नगर के बाहर भ्रमण करूँ। दोहले का स्वरूप राजा से कहा तो राजा ने अपने मित्र वायुवेग विद्याधर द्वारा कृत्रिम मेघ आडम्बर आदि कार्य करा के नर्मदातिलक नामक हाथी पर रानी को सजा-धजा कर और स्वयं भी हाथी पर आरूढ़ हो, परिवार सहित नगर के बाहर निकले। वह हाथी अंकुश छोड़कर पवन वेग से दौड़ने लगा। सभी लोग रुक गए और राजा उस भयंकर जंगल में वृक्ष की शाखा को पकड़ कर लटक गए। अपने नगर में आकर हाय! पद्मावती तुम्हारे साथ यह क्या हुआ? इस प्रकार अत्यन्त शोक युक्त राजा को बहुत से सज्जन पुरुषों ने समझाया। इधर वह हाथी बहुत से जनपदों को लाँघ-लाँघ कर दक्षिण में पहुँच कर एक तालाब में घुस गया। जलदेव ने रानी को उतार कर तट पर बिठा दिया। इसी अवसर पर वहाँ आये भट नाम के मालाकार ने रोती हुई पद्मावती को सम्बोधित किया, हे बहिन! मेरे घर चलो। ऐसा कहने पर उसने कहा तुम कौन हो? उसने कहा मैं माली हूँ। तब हस्तिनागपुर में अपने घर में यह मेरी बहिन है, ऐसा कहकर ले आया और वहीं रखा। कुछ समय वहीं रहने के बाद माली की स्त्री मारिदत्ता ने उसे घर से निकाल दिया। रानी ने श्मशान में पहुँच कर पुत्र को जन्म दिया। तभी एक चाण्डाल ने प्रणाम कर कहा - आप मेरी स्वामिनी हैं। रानी ने पूछा - तुम कौन हो? उसने कहा - यहाँ विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में विद्युत्प्रभ नगरी के स्वामी विद्युत्प्रभ और विद्युल्लेखा का पुत्र मैं बाल देव हूँ। मैं अपनी स्त्री कनकमाला के साथ दक्षिण दिशा में क्रीड़ा के लिए जा रहा था। रास्ते में रामगिरि पर्वत पर वीर भट्टारक के ऊपर से विमान नहीं गया तो मैंने क्रोध से उनके ऊपर उपसर्ग किया। पद्मावती ने उस उपसर्ग का निवारण कर मेरी विद्या छीन ली। जिससे मेरी मति ठिकाने आ गयी और मैंने उसे प्रणाम किया और शान्त होकर कहा हे स्वामिनि! मुझे विद्या देने की कृपा करो। देवी ने कहा - हस्तिनागपुर के श्मशान में तुम जिस बालक की

याहीत्युक्ते सोऽहं मातङ्गवेषेणेदं रक्षन् स्थित इति। तदनु संतुष्टया तस्य बालः समर्पितः। त्वं वर्धयैनमिति। ततस्तेन काञ्चनमालायाः समर्पितः। सा च करयोः कण्डूयुक्त इति करकण्डूनामा पालयितुं लग्ना। सा पद्मावती गान्धारी या ब्रह्मचारिणी तामाश्रिता। तया सह गत्वा समाधिगुप्तमुनिं दीक्षां याचितवती। तेनाभाणि– न दीक्षाकालः प्रवर्तते। पूर्वं वारत्रयं यद्व्रतं खण्डितं तत्फलेन त्रिर्दुःखमासीत्तदुपशमे पुत्रराज्यं वीक्ष्य तेन सह तपो भविष्यतीत्युक्ते संतुष्टा पुत्रं विलोक्य ब्रह्मचारिणीनिकटे स्थिता। स बालस्तेन सर्वकलासु कुशलः कृतः। तौ खेचरकरकण्डू पितृवने यावत्तिष्ठतस्तावज्जयभद्रवीरभद्रावाचार्यौ समागतौ। तत्र नरकपालमुखे लोचनयोश्च वेणुत्रयमुत्पन्नमालोक्य केनचिद्यतिनोक्तम् आचार्यं प्रति – हे नाथ किमिदं कौतुकम्। आचार्योऽवदत्। योऽत्र राजा भविष्यति तस्याङ्कुशच्छत्रदण्डाः स्युरिति। श्रुत्वा केनचिद्विप्रेणोन्मूलितास्तस्मात्करकण्डुना गृहीताः। कियद्दिनेषु तत्र बलवाहनो राजाऽपुत्रको मृतः। परिवारेण विधिना हस्ती राज्ञोऽन्वेषणार्थं प्रेषितः। तेन च करकण्डुरभिषिच्य स्वशिरसि व्यवस्थापितः। ततः परिजनेन राजा कृतो बालदेवस्य विद्यासिद्धिरभूत्स तं नत्वा तस्य तन्मातरं समर्प्य विजयार्धं गतः। करकण्डुः प्रतिकूलानुन्मूल्य राज्यं कुर्वन् स्थितः। तत्प्रतापं श्रुत्वा दन्तिवाहनेन तदन्तिकं दूतः प्रेषितः। स गत्वा तं विज्ञप्तवान्–त्वया मत्स्वामिनो दन्तवाहनस्य भृत्यभावेन राज्यं कर्तव्यमिति। कुपित्वा करकण्डुनोक्तम्– रणे यद्भवति तद्भवतु याहीति विसर्जितः। स स्वयं प्रयाणं दत्वा चम्पाबाह्ये स्थितः। दन्तिवाहनोऽप्यतिकौतुकेन

रक्षा करोगे उसके राज्य के समय तुमको सब विद्यायें सद्ध होंगी। ऐसा ही करूँगा ऐसा कहकर मैं उस विद्याधर चाण्डाल के वेष में रक्षा करने के लिए रुका हूँ। उसके इस प्रकार कहने पर पद्मावती ने संतुष्ट हो उसको बालक सौंप दिया। तुम इसका पालन–पोषण करो। तब विद्याधर ने काञ्चनमाला को वह बालक सौंप दिया। काञ्चनमाला ने उसके हाथों में खुजली देख बालक का नाम करकण्डू रखा और पालन–पोषण करने लगी। जो गान्धारी ब्रह्मचारिणी थी, उसके आश्रय में वह पद्मावती रही। गान्धारी के साथ जाकर समाधिगुप्ति मुनि से दीक्षा की प्रार्थना की। मुनिराज ने कहा – तुम्हारे लिए यह दीक्षा का समय नहीं है क्योंकि पहले तुमने तीन बार व्रत लेकर छोड़ा है उसके फल से तीसरी बार का यह दुःख है। इसके उपशम हो जाने पर अपने पुत्र के राज्य को देखकर उसके साथ तुम्हारी दीक्षा होगी। इस प्रकार कहने पर वह संतुष्ट हो गयी और पुत्र देखकर ब्रह्मचारिणी के पास रही। उस बालक को विद्याधर ने सब कलाओं में निपुण कर दिया। श्मशान में जब विद्याधर और करकण्डू बैठे थे तभी जयभद्र और वीरभद्र आचार्य आ पहुँचे। वहाँ एक नर कपाल पड़ा था, उसके मुख और दोनों आँखों में तीन बाँस उग रहे थे, यह देखकर किसी यति ने आचार्य महाराज से पूछा – हे भगवन्! यह कौतुक क्या है? आचार्य ने कहा – जो यहाँ राजा होगा उसके लिए लगाम, छत्र, दण्ड ये तीनों बाँस होंगे। यह सुनकर किसी ब्राह्मण ने वो बाँस उखाड़ लिए। उससे करकण्डू ने ले लिए। कुछ दिनों के बाद वहाँ का बलवाहन राजा जो बिना पुत्र का था, मर गया। परिवार वालों ने विधि पूर्वक एक हाथी को राजा को खोजने के लिए भेजा। हाथी ने करकण्डू का अभिषेक कर अपने शिर पर बिठा लिया। तब सब लोगों ने करकण्डू को राजा बनाया और बालदेव को विद्या सिद्ध हो गयी, विद्याधर बालदेव उन्हें नमस्कार कर राजा को उनकी माँ को सौंपकर विजयार्ध की ओर चला गया। करकण्डू विरोधी राजाओं का नाशकर राज्य करने लगे। उसके प्रताप को सुनकर दन्तिवाहन ने उनके पास दूत भेजा। दूत ने जाकर उनको कहा – मेरे महाराज दन्तिवाहन ने कहा है कि आपको उनकी आधीनता स्वीकार कर राज्य करना होगा। करकण्डू ने क्रोधित होकर कहा – रणांगण में जैसा होगा मैं वैसा ही करूँगा, जाओ और दूत को छोड़ दिया। करकण्डू स्वयं प्रस्थान कर चम्पा के बाहर रुक गए। दन्तिवाहन भी बड़े कौतुक से सारी सेना

सर्वबलान्वितो निर्गतः। उभयबले संनद्धे व्यूहप्रतिव्यूहक्रमेण स्थिते तदवसरे पद्मावती गत्वा स्वभर्तुः स्वरूपं निरूपितवती। ततो गजादुत्तीर्य संमुखमागतः पिता पुत्रोऽपि। उभयोर्दर्शनं नमस्काराशीर्वाददानं च जातम्। मातापितृभ्यां जगदाश्चर्यविभूत्या पुरं प्रविष्टः। पित्राष्टसहस्रकन्याभिः विवाहं स्थापितः। तस्मै राज्यं समर्प्य पद्मावत्या भोगाननुभवन् स्थितो दन्तिवाहनः। राज्यं कुर्वतस्तस्य मन्त्रिभिरुक्तम्-देव त्वया चेरमपाण्ड्यचोलाः साधनीया इति। ततस्तेषामुपरि स्थित्वा तदन्तिकं दूतं प्रेषितवान्। तेन गत्वागतेन तदौद्धत्ये विज्ञप्ते रोषात्तत्र गत्वा युद्धावनौ स्थितः। तेऽपि मिलित्वागत्य महायुद्धं चक्रुः। दिनावसाने उभयबलं स्वस्थाने स्थितम्। द्वितीयदिने ऽतिरौद्रे संग्रामे जाते स्वबलभङ्गं वीक्ष्य कोपेन करकण्डुर्महायुद्धं कृत्वा त्रीनपि बबन्ध। तन्मकुटे पदं न्यसन् तत्र जिनबिम्बानि विलोक्य 'तस्स मिच्छामि दुक्कडं' इति भणित्वा यूयं जैना इत्युक्ते तैरोमिति भणिते हा हा निकृष्टो ऽहं जैनानामुपसर्गं कृतवानिति पश्चात्तापं कृत्वा क्षमां कारितः। स्वदेशं गच्छंस्तेरसमीपे सैन्यं विमुच्य स्थितः। तत्र दौवारिकैरन्तःप्रवेशिताभ्यां धाराशिवभिल्लाभ्यां विज्ञप्तो राजा-देवास्माद्दक्षिणस्यां दिशि गव्यूत्यन्तरे पर्वतस्योपरि धाराशिवं नाम पुरं तिष्ठति। सहस्रस्तम्भं जिनलयणं च तस्योपरि पर्वतमस्तके वल्मीकम्। तद्धेतोः हस्ती पुष्करेण जलं कमलं च गृहीत्वागत्य त्रिःप्रदक्षिणीकृत्य जलेन सीत्कारबिन्दुभिः पूजयित्वा प्रणमति। ताभ्यां तुष्टिं दत्वा तत्र गत्वा जिनं समर्च्य वल्मीकं पूजयन्तं हस्तिनं वीक्ष्य तत्खानितम्। तत्स्थितमञ्जूषामुद्घाट्य रत्नमयीं पार्श्वनाथप्रतिमां वीक्ष्य हृष्टः।

के साथ निकल आये। दोनों राजाओं का आमना-सामना हुआ, दोनों तरफ व्यूह रचना हो गयी। उसी समय पद्मावती ने जाकर अपने पति को सारी बात बता दी। तब पिता हाथी से उतरकर अपने पुत्र के सामने आये और पुत्र भी आया। पुत्र ने पिता को देखकर नमस्कार किया पिता ने आशीर्वाद आदि दिया। इस प्रकार माता-पिता के साथ करकण्डू राजा का संसार को आश्चर्य में डालने वाले वैभव के साथ नगर प्रवेश हुआ। पिता ने आठ हजार कन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया। राज्य भार पुत्र को सौंपकर दन्तिवाहन पद्मावती के साथ भोग अनुभव करते हुए सुख से रहने लगे। राज्य करते हुए राजा के मन्त्री ने उनसे कहा - प्रभो! आपको चेरम, पाण्डय, चोलों को जीतना होगा। तब उनके ऊपर चढ़ाई कर उनके पास दूत भेजा। वह जाकर वापस लौट आया और उनकी बड़ी हुई उद्धतता को राजा से कहा। करकण्डू राजा क्रोध में आ युद्ध भूमि में खड़े हो गए। वे भी सब मिलकर आ गए और महायुद्ध छिड़ गया। दिन डूब जाने पर दोनों सेनाओं में अपने सेना के बल को कमजोर होता देख करकण्डू को गुस्सा आया और महायुद्ध करके तीनों को बाँध लिया। राजा के चरणों में अपने मुकुटों को रखा तो उसमें जिनबिम्बों को लगा देख, करकण्डू राजा ने कहा - हा! मेरा यह कृत्य मिथ्या हो, आप सब जैन हैं, ऐसा पूछा तो उन राजाओं ने ओम् ऐसा कहा। जिससे राजा ने अपनी खूब निन्दा की हा! हा! में कितना निकृष्ट हूँ कि मैंने जैनों पर इतना उपद्रव किया। इस प्रकार पश्चात्ताप कर उनसे क्षमा माँगी। अपने देश में जाते हुए तेर के निकट सेना को छोड़कर रुक गए। वहीं अन्तःपुर में प्रवेश करते हुए धाराशिव के भीलों का समाचार द्वारपाल ने राजा को दिया कि प्रभो! यहाँ से दक्षिण दिशा में एक कोश की दूरी पर पर्वत के ऊपर एक धाराशिव नाम का नगर है। वहाँ हजार खम्भे हैं, उनके बीच एक जिनालय है, उसके ऊपर पर्वत के शिखर पर एक बामी है, जिससे एक हाथी तालाब से जल और कमल लेकर आता है और तीन प्रदक्षिणा लगाकर जल से ठंडी बूँदों द्वारा पूजा कर और प्रणाम करता है। उन भीलों को संतुष्ट कर करकण्डू राजा वहाँ पहुँचे। जिनेन्द्रदेव की पूजा कर बामी की पूजा करते हुए हस्ती को देखा और उस बामी को खुदवाया। उसमें एक सन्दूक निकला जिसे खोलकर रत्नमयी पार्श्वनाथ की प्रतिमा देखकर अति प्रसन्न हुए। उसे वहीं स्थित जिनमन्दिर में स्थापित कराया और उस गुफा

तल्लयणमगालदेवसंज्ञया स्थापितवांश्च। मूलप्रतिमाग्रे ग्रन्थिं विलोक्य विरूपका दृश्यते इति शिलाकर्मिणं बभाणेमां स्फोटयेति। तेनोक्तम्। जलसिरेयं जलपूरो निःसरिष्यतीति। तथापि स्फोटिता। तदनु निर्गतं जलम्। राजादीनां निर्गमने संदेहोऽभूत्। ततो राजा दर्भशय्यायां द्विविधसंन्यासेन स्थितः। नागकुमारः प्रत्यक्षीभूय वक्तुं लग्नः- कालमाहात्म्येन रत्नमयप्रतिमा रक्षितुं न शक्यत इति मया जलपूर्णं लयणं कृतम्। ततस्त्वया जलापनयनाग्रहो न कर्तव्य इति महताग्रहेण दर्भशय्याया उत्थापितो राजा। ततस्तं पृच्छति स्म- केनेदं लयणं कारितं, तथा वल्मीकमध्ये प्रतिमा केन स्थापितेति। नागकुमारः प्राह- अत्रैव विजयार्धे उत्तरश्रेण्यां नभस्तिलकपुरे राजानावमितवेगसुवेगौ। अत्रैवार्यखण्डजिनालयान् वन्दितुमागतौ मलयगिरौ रावणकृतजिनगृहानपश्यताम्। वन्दित्वा तत्र परिभ्रमन्तौ पार्श्वनाथप्रतिमां लुलोकाते। मञ्जूषायां निक्षिप्य गृहीत्वेमां पर्वतमध्ये अत्र मञ्जूषां व्यवस्थाप्य क्वापि गतौ। आगत्य यावदुत्थापयतस्तावन्नोत्तिष्ठति मञ्जूषा। गत्वा तेरपुरे ऽवधिबोधं महामुनिं पृष्टवन्तौ- मञ्जूषा किमिति नोत्तिष्ठतीति। तैरवादीयं मञ्जूषा लयणस्योपरिलयणं कथयति। अयं सुवेगो आर्तध्यानेन मृत्वा गजो भूत्वा तां मञ्जूषां पूजयित्वा यदा करकण्डुभूपस्तामुत्पाटयिष्यति तदा गजः संन्यासेन दिवं यास्यतीति। प्रतिमास्थिरत्वमवधार्येदं लयणं केन कारितमिति पृष्टो मुनिः कथयति। विजयार्धदक्षिणश्रेण्यां रथनूपुरपुरे राजानौ नीलमहानीलौ जातौ। संग्रामे शत्रुभिः कृतविद्याच्छेदावत्रोषितौ। ताविदं कारितवन्तौ। विद्याः प्राप्य विजयार्धं गतौ। तपसा दिवं गताविति

मन्दिर का नाम अगाल देव रखा। मूल प्रतिमा के सामने गाँठ को देखा जो भट्टी-सी दिखाई देती थी, इसलिए शिल्पकार को कहा - इस गाँठ को प्रतिमा से हटा दो। शिल्पकार ने कहा महाराज यह किसी जल का स्रोत है, यदि हटा दिया तो जल का पूर निकलेगा फिर भी राजा ने उसे हटवाया। उसके कहे अनुसार उसमें से जल निकला। वह जल इतना हो गया कि राजा आदि लोगों को निकलना मुश्किल हो गया। तब वह दर्भशय्या पर दोनों प्रकार का संन्यास धारण कर बैठ गया। नागकुमार प्रकट हुए और कहने लगे कि काल की महिमा से रत्नमय प्रतिमा की रक्षा करने के लिए कोई समर्थ नहीं है इसलिए मैंने मन्दिर को जल से पूर्ण कर दिया है इसलिए आप जल को हटाने का आग्रह छोड़ दें, इस प्रकार बहुत आग्रह करने से राजा दर्भशय्या से उठ खड़े हुए। फिर राजा ने पूछा किसने यह मन्दिर बनवाया तथा बामी के बीच में प्रतिमा किसने स्थापित की। नागकुमार ने कहा - इसी विजयार्ध की उत्तर श्रेणी में अभस्तिलक नगर में अमित वेग और सुवेग नाम के दो राजा थे। इसी आर्यखण्ड के जिनालयों की वन्दना करने के लिए वे दोनों आये। मलयगिरि पर रावण के बनाये हुए जिनालयों को देखा। वहाँ की वन्दना कर परिभ्रमण करते हुए पार्श्वनाथ की प्रतिमा को देखा। उस प्रतिमा को एक सन्दूक में रखकर और लेकर इस पर्वत के बीच सन्दूक को रखकर कहीं चले गए। जब वापस आये तो सन्दूक को उठाने पर भी सन्दूक नहीं उठा। तेरपुर में जाकर अवधिज्ञान के धारक महामुनिराज को देखकर पूछा - सन्दूक में ऐसा क्या है? जो उठता नहीं है। मुनिराज ने कहा - यह सन्दूक लयण के ऊपर लयण कहता है। यह सुवेग आर्तध्यान से मरकर हाथी होकर उस सन्दूक की पूजा करेगा। तब करकण्डू राजा उसे खोलेगा तभी हाथी संन्यास से मरण कर देव गति को प्राप्त होगा। प्रतिमा की स्थिरता को मन में अवधारित कर पूछा - प्रभो! यह लयण किसने बनाया तो मुनिराज ने कहा - विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में रथनूपुर में राजा नील और महानील हुए। युद्ध में शत्रुओं के द्वारा उनकी सिद्ध की हुई विद्यायें छीन ली, तब वे यहाँ बस गए। उन दोनों ने ही उसे बनवाया है। विद्या को प्राप्त कर वे विजयार्ध पर चले गए। बाद में दीक्षा लेकर देवगति को प्राप्त हुए। इस प्रकार जानकर दोनों भाई दीक्षित हुए

निशम्य तौ दीक्षितौ। ज्येष्ठो ब्रह्मोत्तरं गत इतर आर्तेन हस्ती जातस्तेन देवेन संबोधितः। स जातिस्मरो भूत्वा सम्यक्त्वं व्रतानि चादाय तां पूजयितुं लग्नः। यदा कश्चिदिमां खनति तदा संन्यासं गृह्णीया इति प्रतिपाद्य देवो दिवं गतः। त्वयोत्पाटितेति स हस्ती संन्यासेन तिष्ठति। त्वं पूर्वमत्रैव गोपालो जिनपूजया राजा जातो ऽसि। इति संबोध्य नागकुमारो नागवापिकां गतः। तृतीयदिने गत्वा राज्ञा तस्य हस्तिनो धर्मश्रवणं कृतम्। सम्यक्त्वपरिणामेन तनुं विसृज्य सहस्रारं गतो हस्ती। करकण्डुः स्वस्य मातुर्बालदेवस्य च नाम्ना लयणत्रयं कारयित्वा प्रतिष्ठां च तत्रैव स्वतनुजवसुपालाय स्वपदं वितीर्य स्वपित्रा चेरमादिक्षत्रियैश्च दीक्षां बभार। पद्मावत्यपि। करकण्डुर्विशिष्टं तपो विधायायुरन्ते संन्यासेन वितनुर्भूत्वा सहस्रारं गतः। दन्तिवाहनादयः स्वस्य पुण्यानुरूपं स्वर्गलोकं गताः। इति जिनपूजया गोपो ऽप्येवंविधो जज्ञेऽन्यः किं न स्यादिति।

सुकोमलैः सर्वसुखावबोधैः पदैः प्रभाचन्द्रकृतः प्रबन्धः।
कल्याणकाले ऽथ जिनेश्वराणां सुरेन्द्रदन्तीव विराजतेऽसौ ॥

इति भट्टारकश्रीप्रभाचन्द्र कृतः कथाकोशः समाप्तः॥

[संवत् 1638 वर्षे श्रावणशुदि 3 रवौ श्री मूलसंघे सरस्वतीगच्छे बलात्कारगणे श्री कुन्दकुन्दाचार्यान्वये भट्टारकश्रीपद्मनन्दिदेवास्तत्पट्टे भ0 श्री सकलकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भ0 श्रीभुवनकीर्तिदेवास्तत्पट्टेभ0 श्रीज्ञानभूषण-देवास्तत्पट्टे भ0 श्रीविजयकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ0 श्रीशुभचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ0 श्रीसुमतिकीर्तिदेवास्तत्पट्टे भट्टारकश्रीगुणकीर्तिगुरूपदेशात् स्वात्मपठनार्थं लिख्यापितः।

थे। जो बड़ा भाई था वह ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में गया और दूसरा दुःख से हाथी हुआ तब उसे बड़े भाई के जीव देव ने उसे सम्बोधा। उसको जातिस्मरण हुआ। सम्यक्त्व और व्रतों को ग्रहण कर वह उस प्रतिमा को पूजने में लग गया। जब कोई इसे खोदेगा तब तुम संन्यास लेना, इस प्रकार प्रतिपादन कर वह देव स्वर्ग चले गए। तुमने वह प्रतिमा खोदकर निकाल दी। वह हाथी अब संन्यास लिए बैठा है। तुम पहले यहाँ गोपाल थे, जिनेन्द्र भगवान् की पूजा से तुम राजा हुए हो। इस प्रकार सम्बोधन कर नागकुमार नाग वापी में चला गया। तीसरे दिन राजा ने वहाँ जाकर उस हाथी को धर्मश्रवण कराया। सम्यक्त्व परिणाम से शरीर छोड़कर वह हाथी सहस्रार स्वर्ग में देव हुआ। करकण्डू ने अपनी माँ और बालदेव के नाम से तीन लयण (गुफा मन्दिर) बनवाये और प्रतिष्ठा करायी। और वहीं अपने पुत्र वसुपाल के लिए अपना राज्य भार सौंपकर अपने पिता और चेरम आदि क्षत्रिय राजाओं के साथ दीक्षा ग्रहण कर ली तथा पद्मावति ने भी दीक्षा ग्रहण की। करकण्डू विशिष्ट तप करते हुए आयु के अन्त में संन्यास से शरीर छोड़कर सहस्रार स्वर्ग को गए। दन्तिवाहन आदि अपने-अपने पुण्य के अनुसार स्वर्ग लोक गए। इस प्रकार जिनपूजा से गोपाल भी जब इस प्रकार राजा होकर पूज्य हो सकता है तो दूसरों को क्या सभी प्रयोजनों की प्राप्ति नहीं होगी? अवश्य होगी, इस प्रकार जानकर सभी बन्धुओं को जिनेन्द्र प्रभु की पूजा में संलग्न रहना चाहिए।

सुकोमल और सबको सुख तथा ज्ञान देने वाले पदों के द्वारा प्रभाचन्द्र ने यह कथा प्रबन्ध बनाया है। जिनेश्वरों के कल्याण के समय भी यह सुरेन्द्र के ऐरावत हाथी के समान सुशोभित रहे। इस प्रकार भट्टारक श्रीप्रभाचन्द्र द्वारा रचित कथाकोश समाप्त हुआ।

अनुवादकस्य भावना

श्रीज्ञानवाटिकान्तैकं विद्यापुष्पं विजृम्भितम्।
चञ्चरीकोऽहमासक्तस्तत्परागे गुणान्वितम्॥ 1॥

श्री ज्ञानसागर आचार्य की वाटिका में एक विद्यासागर रूपी फूल खिला है, जो अनेक गुणों से युक्त है। उस पुष्प की पराग में आसक्त मैं भ्रमर हूँ।

कायगन्धाघगन्धाब्दे वीरनिर्वाणसंज्ञके।
मासे च मार्गशीर्षाख्ये चैकादश्यां तिथौ सिते॥ 2॥
क्षेत्रे सिद्धादये रम्ये नर्मदातीरसंस्थिते।
टीकेयं सुकृता शान्त्यै प्रणम्यमुनिना मया॥ 3॥

वीरनिर्वाण संवत् 2526, ई. सन् 1999 में मार्गशीर्ष मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि में नर्मदा तीर पर स्थित रम्य सिद्धोदय क्षेत्र पर मुझ प्रणम्यसागर मुनि ने यह हिन्दी टीका (अनुवाद) आत्म शान्ति के लिए की है।

समस्तभुवि भूतेषु सौहार्द्यञ्च परस्परम्।
गोवत्सवृद्धि वात्सल्य- मात्मौपम्येन निश्छलम्॥ 4॥
गृहस्थस्तु गुणग्राही त्यक्ताग्रहा विपश्चितः।
वीतकामो भवेत् साधु-र्ममेत्थं भावना भृशम्॥ 5॥

समस्त पृथ्वी पर प्राणियों में परस्पर सौहार्द हो, अपने समान सबको मानते हुए गोवत्स की तरह निश्छल वात्सल्य हो, गृहस्थ गुणग्राही हों, विद्वान् आग्रह रहित हों, साधु निष्काम हों, मेरी यही उत्कृष्ट भावना है।

प्रमादो यत्क्वचित् किञ्चित् लेखने यदि सम्भवेत्।
शोधयन् तं विना रोषं दधन्नपि क्षमां पठेत्॥ 6॥

इस लेखन में यदि कहीं कुछ प्रमाद हुआ हो तो बिना रोष के, क्षमाधारण करते हुए शुद्धिपूर्वक पढ़ें।

उद्धृतपद्यानां सूची
(Quotions other than those from the Bhagavati Aradhana found in Prabandha)

	पृ.	तुलनार्थम्
अकालचर्यां	41	बृ. क., 32.28
अण्णत्थ किं	50	
अन्यथानुपपन्नत्वं	2	
अम्हादो णत्थि भयं	50	
आलोचनैः गर्हण	132	बृ. क., 15.16
काञ्च्यां नग्नाटकोऽहं	14	
किं जंपिएण बहुणा	133	बृ. क., 33.38
गवाशनानां स गिरः	146	
गोपो विवेकविकलो	166	स्वा. का. शुभचन्द्रस्य टीका, पृ. 30
तुव जणणी	123	स्वा. का. शुभचन्द्रस्य टीका, पृ. 30
तुह पियरो	124	
धम्मो जयवसियरणं	133	
नाहंकारवशीकृतेन	08	
पूर्वं पाटलिपुत्र	15	
प्रणम्य मोक्षप्रदं	01	
बालय णिसुणसि	124	स्वा. का. शुभचन्द्रस्य टीका, पृ. 30
मइलकुचेली दुम्मणी	31	
माताप्येका पिताप्येको	146	बृ. क., 33.37
यैराराध्य चतुर्विधां	130	
शूद्रान्नं शूद्रशुश्रुषा	144	बृ. क., 31.13
षडङ्गानि चतुर्वेदा	99	
सर्वे वेदा न तत्कुर्युः	133	
सुकोमलैः सर्व	172	

INDEX OF PROPER NAMES

(Only one reference is given, and references are to the Nos. of Stories)

[अ]

अकम्पनाचार्य 12
अकलङ्क 2
अगन्धन 5,11
अगालदेव 90*32
अग्नि 73
अग्निभूति 11, 63, 84, 90 *4
अग्निमन्दर 63
अग्निला 6
अङ्ग (देश) 7,23, 60, 90*19, 90*27, 90*32
अङ्गवती 7
अङ्गार 34
अङ्गारदेव 46
अज 27
अजितसेना 61
अजितावर्त 51
अञ्जनचोर 6
अञ्जनसुन्दरी 6
अतिदारुण 5
अतिबल 63
अतिमुक्तक 49
अतिवेग 5
अनन्तमती 7
अनन्तवीर्य 3, 90*22
अनिष्टसेन 78
अन्ध्रदेश 19, 90*14, 90*22
अपरविदेह 59
अपराजित 5, 65
अभयकुमार 41, 90*25
अभयघोष 74
अभयमती 23, 74, 76, 90*31
अभयवाहन 48
अभव्यसेन 9
अभीर (देश) 75
अमरगुरु 51
अमरावती 13
अमित 37
अमितप्रभ 6
अमितवेग 90*32
अम्बिका 4
अयोध्या 7, 27, 32, 35, 52, 53, 59, 61, 62, 64, 71, 84, 90* 3, 90*12, 90*21/1, 90*21/3, 90*21/7
अरिष्टनेमि 58, 65, 78, 90*14, 90*17, 90*20
अर्जुन 90*21/7
अर्हदास 5, 90*22
अर्हद्दासी 23
अलका 5,49
अवघ्या 5
अवनिपाल 1
अवन्ती 12, 63, 90*10, 90*12, 90*15, 90*21/6, 90*23, 90*26
अवसीर (पर्वत) 90*25
अशोक 39, 78, 90*9

अशोका 39
अश्वदेवी 49
अष्टापदगिरि 37
अस्थनि (अटवी) 90*5
अहिच्छत्र (नगर) 1, 13, 29, 90*8
अहिमार 89
अंशुमती 71
अंशुमान् 71

[आ]

आकाशगामिनीं (विद्या) 6
आदर्शक 5
आदित्यप्रभ 5
आदित्याभ 5
आनन्द 34
आनन्दपुर 46
आभीर 57
आमलकण्ठ 78
आराधना 4
आराधना-प्रबन्ध 90

[इ]

इन्द्रदत्त 63,69
इन्द्रधनु 90*19
इभ 56
इला 71
इलावर्धन 71

[ई]

ईर्ष्यावती 83

[उ]

उग्रसेन 49, 90*22
उज्जयिनी 12,14, 25, 30, 37, 46, 63, 68, 72, 84, 86, 90 *10, 90*12, 90*15, 90*21/6, 90*23, 90*25, 90 *26
उड्र 4
उत्तरकुरु 90*29
उत्तरभूति 30
उत्तरमथुरा 9
उत्तरापथ 4, 90*11, 90*25
उदीर्णबलवाहन 30
उदुम्बरकुथित 8
उद्वायन 8
उद्भगमुनि 70
उर्विला 13
उलूखल (देश) 37

[उ]

उशिरावर्त 37
उष्ट्रग्रीव (पर्वत) 58

[ऊ]

ऊड्रविषय 90*19
ऊर्जयन्त 58, 90*14

[ए]

एकरथ्य 44
एकाश्चर्य 90*21/4

[औ]

औद्र 24

[क]

कच्छ 8
कडारपिङ्ग 31
कनकनगर 13
कनकप्रभा 90*2

कनकमाला 90*32
कनकरथ 41
कनकश्री 5
कनका 6
कन्तिका 41
कपिल 76,80
कपिलाक्षेत्र 44, 76
कमल 84
कमलश्री 7, 46, 90*22
कमला 84
करकण्ड 42
करकण्डू 90 *32
करवती 5
करहाटक 4
कलकल 90*19
कलकलेश्वर 63
कलिङ्ग (देश) 2, 90*32
कलिङ्गसेना 37
कंस 49
काकदेवी 49
काकन्दी 74, 90*21/7
काकस 90*31
काञ्चनमाला 42, 90*32
काञ्ची 4
काञ्चीपुर 77, 90*31
काणा 50
काणादेवी 90*14
कामधेनु 62
कामसेना 7
काम्पिल्य 20, 31, 47, 55, 90*19, 90*28
कायसुन्दरी 30
कार्तवीर्य 62,83
कार्तिकपुर 73
कार्तिकेय 73
कालप्रिय (पत्तन) 42
कालमेघ 90*26
कालसंदीव 90*10
कालिदेव 90*29
कालिराक्षस 90*29
कालीनागदेवी 49
का (क)वि 80
काशी 90*2, 90*9, 90*22
काश्यपी 38, 63, 84
किन्नरपुर 7
किमचल 89
किंजल्पनामा (पक्षी) 31
कुणालपुर 81
कुण्डलमण्डित 7
कुण्डिनपुर 50
कुबेरदत्त 31,46
कुम्भकारकट 79
कुम्भपुर 12
कुरुजाङ्गल 6, 12, 90*1, 90*13
कुरुवंश्य 49
कुलघोष 4
कुलाल 30
कुसुमदत्त 90*32
कुसुमपुर 90*32
कुसुममाला 90*32
कुसुमवती 5

कुन्तलविषय 90*32
कूचवार 39
कृत्तिका 73
कृमिरागकम्बल 46
कृष्ण 90*17, 90*20
केसरवती 5
कैलास 59
कोटितीर्थ 90*4
कोटी 68
कोट्टपुर 90*4
कोणिकः 90*31
कोणिका 24
कोंशल (देश) 87
कोशल (पुर) 87
कोसलगिरि 87
कौशाम्बी 14, 15, 17, 21, 38, 44, 45, 46, 49, 63, 69, 72, 90*7, 90*15, 90 18, 90*31, 90*32
कौशिक 16, 90*31
क्रौञ्च 73
क्रौञ्चपुर 80

[ख]

क्षीरकदम्ब 27
खण्डकमुनि 79
खेटग्राम 72

[ग]

गङ्गदेव 42
गङ्गभट 40, 49
गङ्गा 46, 67, 70, 90*6
गजकुमार 65
गणधरमुनि 41
गणधराचार्य 63
गन्धमालिनी 5
गन्धमित्र 53
गन्धर्वदत्त 54
गन्धवती 49, 63
गन्धार (देश) 41
गन्धिला 5
गन्धोदक-वर्ष 63
गर्दभ 24
गरुड 13
गरुडदत्त 48
गरुडशास्त्र 90*15
गर्ग 90*12
गलगोद्रह 90*30
गान्धर्वदत्ता 54
गान्धर्वसेना 54, 65
गान्धर्वानीक 46
गान्धारी 90*32
गिरिनगर (पुर) 90*14
गुणमाला 6
गुणवती 63
गुप्ताचार्य 9
गुरुदत्त 76
गोकर्ण (पर्वत) 41
गोपवती 33
गोपायन 17
गोभृङ्ग 5
गोवर्धनगिरि 49
गोवर्धनमुनि 68

गोविन्द (नट) 42
गौड 10
गौतम 90*10
गौतमस्वामिन् 90*32
गौरसंदीप 30
गौरी 9
[च]
चक्रपुर 5
चक्रायुध 5
चक्रेश्वरी 2
चण्डप्रद्योतन 90*10
चण्डवेग 74
चतुर्दश विद्या 63
चतुर्मुखमुनि 59
चन्दना 41, 90*31
चन्द्र 18
चन्द्रकीर्ति 76
चन्द्रगुप्तराजा 68
चन्द्रगुहा 90*14
चन्द्रचूल 5
चन्द्रपुरी 76
चन्द्रप्रभ 9
चन्द्रभूति 87
चन्द्रवाहन 63
चन्द्रवेगा 5
चन्द्रलेखा 76
चन्द्रवेध 56
चन्द्रशेखर 9
चन्द्रश्री 87
चम्पा 7, 22, 23, 37, 46, 48, 51, 63, 70, 90*19, 90*27, 90*32
चाणाक्य 80
चाणूर मल्लदेवी 49
चामीकरवती 5
चामुण्डा 75
चारणमुनि 90*22
चारित्रभूषणमुनि 1
चारुदत्त 37
चित्रगुप्त 21
चित्रभूति 90*31
चित्रमाला 5
चिलातपुत्र 90*31
चिल्लातपुत्र 77
चेटक 41, 90*31
चेरम 90*32
चेलनी 11
चेलिनी 21, 41, 90*31
चोल 90*32
[ज]
जनमेजय 90*19
जमदग्नि 6, 62
जम्बूद्वीप 59
जय 27
जयचन्द्रा 90*19
जयन्त 5
जयन्तगिरि 90*14
जयपाल 17
जयपाली 28
जयश्री 13
जयसिंह 90

जयसेन 53, 59, 89
जयसेनकुमार 32
जयसेना 59
जयावती 64, 75
जरासन्ध 49
जलस्तम्भिनी (विद्या) 90*7
जितशत्रु 30, 46, 71, 75, 90*21/3
जिनकल्पिक 14
जिनकल्पित 90*15
जिनदत्त 6, 46, 47, 49, 84, 90*15, 90*25, 90*29, 90*30
जिनदत्ता 5, 72, 90*15, 90*22, 90*30
जिनदास 90*1, 90*29
जिनदासी 90*29
जिनपाल 14, 72
जिनपालकुमार 90*15
जिनभद्र 84
जिनमति 90*30
जिनमतिका 84
जीवक 90*17
जीवद्यशा 49
जीवामारि 26
जैनी 38
ज्येष्ठा 41

[ट]

टक्क 4

[त]

तलिकाराष्ट्र (देश) 90*16
तामलिप्त 37, 75, 90*32
तामलिप्ति 10
ताराभगवती 2
तिलकावतीं 77, 90*31
तुङ्कारी 46
तुङ्गभद्रा 90*22
तुङ्गी 58
तेरपुर 90*32
त्रिगुप्तमुनि 3, 90*31

[द]

दक्षिणकाञ्ची 4
दक्षिणमथुरा 9
दक्षिणश्रेणी 90*32
दक्षिणापथ 68, 75, 79, 80, 81, 87, 90*10, 90*22, 90*31
दण्डक 79
दत्त 34
दत्तमुनि 77
दत्ताचार्य 61
दन्तिवाहन 90*32
दन्तुरा 90*14
दमधर 14, 37, 42, 87, 88, 90*16
दमधराचार्य 29, 32,44
दरिद्रा 13
दशपुरनगर 4
दशार्णदेश 44
दारुण 5
दिग्नागाचार्य 2
दिवाकरदेव 5,13
दीपायन 30
दीर्घ 24
दुर्मुख 42

दुर्मुखराज 13
दुर्योधन 90*3
दृढ़शूर्प 25
देवकी 49
देवकुमार 3,66
देवगुरु 85
देवदत्ता 56
देवदारु 41
देवदास 41
देवरति 32, 42, 85
देवागम 1
देविला 80
देवीकोट्टपुरु 90*4
द्रविडदेश 77, 90*31
द्रुपद 90*21/7
द्रोणाचार्य 56
द्रोणीपर्वत 76
द्रोणीमति 76, 90*30
द्रौपदी 90*21/7
द्वारवती 58, 65, 90*17, 90*20
द्वीपायन 58

[ध]

धनचन्द्र 46
धनदत्त 19, 25, 37, 44, 45, 46, 90*22, 90*32
धनदत्ता 44, 46
धनदेब 44, 46, 84
धनदेवी 49
धनपति 88
धनपाल 15, 25, 90*18, 90*32
धनमित्र 5, 34, 44, 45, 46
धनमित्रा 44, 90*32
धनराज 90*22
धनवती 24, 25, 90*32
धनवर्मा 90*26
धनश्री 31, 56, 88, 90*7, 90*22, 90*26, 90*32
धनसेन 90*7
धनसेना 42
धनुर्वेद 56
धन्य 78
धन्वन्तरि 6,22, 90*27
धरणितिलक 5
धरणिभूषण 6, 12
धरणेन्द्र 5
धरसेनाचार्य 90*14
धर्म 26
धर्मकीर्ति 7
धर्मघोष 70
धर्मरुचि 35
धर्मनगर 24
धर्मपाल 90*23
धर्मश्री 13, 90*23
धर्मसिंहराजा 87
धर्मसेना 46
धातुरस 37
धान्यकनक 19
धान्यकर 90*22
धारा 90
धाराशिव 90* 32
धारिणी 34

धूमसिंह 37
धृतिषेण 59, 90*10

[न]

नग्नकि 42
नद 90*21/8
नदीमती 78
नन्द 49, 57, 80, 90, 90*31
नन्दा 90*9
नन्दीश्वरयात्रा 6
नन्दीश्वराष्टदिन 13
नन्दीश्वराष्टमी 2
नभस्तलवल्लभ 5
नभस्तिलकपुर 90*32
नमि 42
नमुचि 12
नयंधर 64
नरपाल 6
नरसिंह 31
नर्मदा 50, 90*17
नर्मदातिलक 90*32
नागकुमार 90*32
नागदत्त 14, 48, 90*15, 90*23, 90*30, 90*32
नागदत्ता 14, 21, 57, 90*15, 90*30, 90*31, 90*32
नागधर्म 14, 90*15, 90*31
नागधर्मा 90*26
नागपाश 5
नागवती 90*19
नागवसु 48
नागश्री 14, 63, 90*15
नागसेन 90*23
नागानन्द 90*32
नाभिगिरि 13
नारद 27, 63
नासिक्य 57
निपुणमतिविलासिनी 28
निर्लक्षणनामा 90*21/4
निष्कलङ्क 2
नील 6, 90*32
नृवाहन 23

[प]

पञ्चनमस्कार 2
पञ्चाग्निसाधन 49
पणिक 67
पणिका 67
पणीश्वर 67
पद्म 12, 90*27
पद्ममण्डल 12
पद्मरथ 22, 42, 46
पद्मश्री 90*22
पद्मषण्डपत्तन 28
पद्मावती 1, 2, 62, 90*22, 90*32
पद्मिनीखेट (ग्राम) 33
परकच्छपत्तन 90*16
परथ: 68
परशु 62
परशुराम 62
पर्णलघ्वी (विद्या) 7
पर्वत 27

पवनवेगा 13
पलाशकुट 11, 90*9
पलाश (ग्राम) 33
पल्लर 90*22
पाकशासन 26
पाञ्चाल 54
पाटलिपुत्र 4, 10, 16, 39, 54, 80, 88, 90, 90*29
पाटवर्धन (हस्ती) 49
पाण्ड्य 90*32
पात्रकेसरिन् 1
पादौषध मुनि 90*1
पारसकुलराज 46
पाराशर मुनि 40
पांसुल 65
पिण्याकगन्ध 6,47
पिप्पल 47
पुङ्खपरम्पराविधि 56
पुङ्गल 90*26
पुण्डरीका 48
पुण्ड्रनगर 4
पुण्ड्रवर्धन 68
पुरन्दरदेव 13
पुरुषोत्तम मन्त्री 2
पुष्कर 7
पुष्पचूल 51
पुष्पडाल 11
पुष्पदत्ता 51
पुष्पदन्त 12, 90*14
पूतना (विद्या) 49
पूतिगन्धः 13
पूतिमुखा 13
पूतिमुखी 51
पूर्णचन्द्र 5
पूर्णभद्र 15, 90*18
पूर्वमालव 90*16
पृथिवीपुर 89
पृथ्वी 46
पोदनपुर 49, 54, 65, 90*11, 90*13
प्रजापाल 6, 14, 16, 21, 64, 67, 86, 90*15, 90*21/3, 90*31
प्रद्योत 63, 72
प्रभाचन्द्र 90, 90*32
प्रभावती 8, 29, 41
प्रमाणपल्ली 90*21/3
प्रह्लाद 12
प्रश्रेणिक 77
प्रज्ञप्तिविद्या 13
प्रियकारिणी 5, 41, 90*31
प्रियङ्गु 5
प्रियङ्गुश्री 90*23
प्रियङ्गुसुन्दरी 31
प्रियदत्त 7
प्रियदत्ता 90*15
प्रियदमधर 90*15
प्रियधर्म 14, 90*15
प्रियधर्मा 14
प्रियमित्र 14, 90*15
प्रियसेन 87
प्रिया 90*3

प्रियङ्कर 29
प्रियङ्गुलता 49
प्रियंवद 90*22
फाल्गुनाष्टमी 2

[ब]

बलभद्र 49,58
बलराज 13
बलवाहन 90*32
बलि 12
बृहदारण्यक शास्त्र 27
बृहस्पति 12
ब्रह्मदत्त 8, 20, 90*21/1, 90*28
ब्रह्मरथ 20, 90*28
ब्रह्मा 9, 43
ब्रह्मिला 51
बालक 79
बालदेव 90*32
बिलवति 90*25
बिभीषण 5
बुद्धदास 72
बुद्धश्री 19
बुद्धिमती 2, 90*19

[भ]

भगीरथ 59
भट 90*32
भट्टा 46
भण्ड 79
भद्रबाहु 68
भद्रमहिष 61
भद्रवट 68
भद्रिलपुर 49, 56
भरत 52, 76
भरत (ग्राम)60
भर्तृमित्र 56,77
भवसेन 9
भव्यश्री 5
भव्यसेनाचार्य 9
भानु 37
भीम 7, 55, 59
भीमदास 55
भीष्म 50
भूतबलि 90*14
भूतरमण 5
भूतिलक (नगर) 5
भूमिगृह (नगर) 34
भूमितिलक 6
भृगुकच्छ 50
भेरुण्ड 37

[म]

मगध 1, 6, 11, 14, 16, 21, 22, 50, 64, 90*11, 90*15, 90*21/2, 90*21/3, 90*31
मगधसुन्दरी 11
मङ्गलपुर 32
मणिकेतु 59
मणिचन्द्र 46
मणिभद्रा 15
मणिमाली 3
मणिवत 46
मथुरा 13, 49
मदनकेतु 3

मदनवेगा 29
मदनसुन्दरी 2
मदनावली 90*12
मधु बिन्दु 36
मनोरमा 23, 41, 85
मरिचि 52
मरुदेश 42
मलयगिरि 90*32
मलयावती 90*10
महाकर्मप्रकृतिप्राभृत 90*14
महाकाल 63, 90*26
महानील 90*32
महापद्म 12, 90*13
महापद्माचार्य 90
महारुत 59
महीधर 80, 90*19
महेन्द्रराम 62
महेश्वरपुर 41
माघमास 90*7
माणिभद्रा 90*18
मान्याखेटनगर 2
मारिदत्ता 90*32
मालव 4
मालवर (पर्वत) 90*25
मित्रवती 34, 37, 90*16
मिथिला 12, 22, 42, 75, 85, 90*27
मुण्डराज 90*22
मुण्डीरस्वामिपत्तन 42
मूलस्थान 42
मूलाराधना 4
मृगध्वज 61
मृगावती 41, 90*31
मृगी 5
मृत्तिकावती 49
मेखलपुर 55
मेघकूट 9
मेघदेवी 49
मेघनिचय 41
मेघनिनाद 41
मेघनिबद्ध 41
मेघपुर 56
मेघमाला 56
मेघवती 56
मेघसेन 56
मेदज (मुनि) 46
मेरुक 42
मोरीयवंश 90*22
मौद्गिल्लगिरि 64

[य]

यतिवृषभ 89
यम 24
यमदण्ड 17, 26, 75, 90*31
यमदण्डराज 77
यमपाल 26
यमपाश 25, 75
यमलार्जुना 49
यमुना 32, 49, 69, 75, 78, 86, 90*7
यमुनाचक्र 78
यवनलिपि 90*10
यशस्वती 50, 80, 90*31

संजयन्त 5
संवरीपुर 78, 86
साकेतपुर 84, 90*24
सागरदत्त 13, 17, 21, 29, 42, 45, 47, 51, 57, 67, 90*21/5, 90*23, 90*31
सागरदत्ता 17
सागरसेन 53
सात्यकि 41
सिद्धपुर 90*13
सिद्धार्थ 61, 64, 90*1
सिन्धु 4
सिन्धुतट 90*19
सिन्धुदेवी 90*19
सिन्धुदेश 41, 90*19, 90*31
सिन्धुनद 90*19
सिन्धुमती 90*19
सिन्धुविषय 48
सिन्धुसागर 48
सिंह 60, 90*11
सिंहचन्द्र 5
सिंहध्वज 90*19
सिंहपुर 5, 28
सिंहबल 12, 33
सिंहयश 37
सिंहरथ 49, 90*11
सिंहरथा 90*11
सिंहराज 7
सिंहलद्वीप 37, 90*16
सिंहवती 5
सिंहसेन 5, 28, 33, 42
सीता 3
सीमन्धर 61
सीमा 5
सुकान्त 23
सुकुमाल 63
सुकेतु 84
सुकोशल 64
सुगुप्तमुनि 90*32
सुघोष 5
सुज्येष्ठा 90*31
सुदत्त 84
सुदर्शन 23, 90*21/7
सुदृष्टि 86
सुधर्म 22, 24, 63
सुधर्माचार्य 5
सुनन्द 6
सुनन्दा 6, 64, 90*9
सुन्दर 37
सुन्दरी 5, 47
सुप्रतिष्ठा 90*7
सुप्रभा 41, 84, 86, 90*31
सुप्रभावती 90*31
सुबन्धु 80
सुभद्र 63, 84
सुभद्रा 33, 37, 41, 47, 77, 84, 90*23, 90*31
सुभूति 13
सुभौम 83, 90*21/7
सुमति 31, 89
सुमित्र 5, 28, 90*24
सुमित्रराज 80

सुमित्रा 5, 15, 28, 90*21/1
सुमित्राचार्य 13
सुरक्ता 27
सुरत 35
सुरपतिनामा 65
सुरम्य (देश) 90*11
सुरावर्त 5
सुराष्ट्र (देश) 90*14, 90*17, 90*20
सुरेन्द्रदत्त 63
सुलक्ष्मणा 5
सुवर्णखुर 90*22
सुवर्णभद्र 76
सुवर्णवर्मा 90*24
सुवर्णश्री 90*24
सुवीर 10
सुवेग 56, 90*32
सुव्रत 5, 9, 90*17
सुव्रता 5, 79, 84
सुसीमा 10
सुंसुमार (ह्रद) 26
सुरचन्द्र 90*16
सूरदत्त 14, 90*15, 90*16
सूरदत्ता 90*16
सूरदेव 11
सूरमित्र 90*16
सूर्यनामा 10
सूर्यमित्र 47, 63
सूर्याभ 5
सूर्योदयपुर 90*19
सोमक 17
सोमदत्त 6, 13
सोमदत्ता 63
सोमदेव 50
सोमभूति 84
सोमशर्मा 6, 29, 38, 46, 63, 68, 84, 90*4, 90*10, 90*11, 90*22, 90*25, 90*31, 90*32
सोमश्री 55, 90*31
सोमा 17, 90*10
सोमिल्ला 11, 38, 46, 90*(Before) 5
सौराष्ट्र 10
स्वयंभूरमण 82, 90*21/8
स्वस्तिमती 27

[ह]

हतवात (पर्वत) 72
हरिचन्द्र 5
हरिणश्रृङ्ग 5
हरिवंश 90*17
हरिषेण 90* 19
हल्ल 90*21/6
हस्तिनागपुर 6, 12, 13, 40, 46, 66, 76, 90*1, 90*32
हिमशीतल (राजा) 2
ह्रीमन्त (पर्वत) 13